# नल दमन

प्रधान संपादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद



संपादक

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

श्री दौलतराम जुयाल

क० मु० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

प्रकाशक
संचालक,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय आगरा।

प्रथम संस्करण १९६१ ई०
मूल्य ७)

मुद्रक:
हरिकृष्ण कपूर
आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस
आगरा।

# नलदमन

अनुक्रमणिका

# प्राक्कथन

संस्कृत के नैषध महाकाव्य में कोसलदेश के राजा नल और निषधदेश के राजा की कन्या दमयन्ती की कथा जिस विस्तार और लालित्य के साथ वर्णित है उसका जोड़ नहीं । यों नल-दमयन्ती का आख्यान भारत में अनेक रूपों में इतना अधिक प्रचलित है कि साधारण से साधारण जन भी नल की कथा को कहने-सुनने में रस लेता है ।* नैषध की कथा-माधुरी से आकर्षित होकर ही फैजी ने उसका फारसी में अनुवाद किया था । फैजी का नल-दमयन्ती-चरित अपने समय में बड़े चाव से पढ़ा सुना जाता था । काल-प्रवाह के साथ उसकी चर्चा भी नाम शेष रह गई है । फैजी की धारा पर आगे चलकर लखनऊ के सूरदास ने नल-दमन नामक काव्य की रचना पूरबी भाषा† में की ।

अपने देश में न जाने कब से यह परिपाटी चली आ रही है कि जहाँ नेत्रों की ज्योति गई कि 'सूरदास' की उपाधि मिली । और फिर जितने भी सूरदास मिलें, यदि उनके नाम से कोई रचना मिलती है तो बिना किसी सोच-विचार के वह तुरंत प्रसिद्ध अष्टछापी सूरदास के साथ जोड़ दी जाती है । यही कारण है कि इस समय सूरसागर के रचयिता भक्त शिरोमणि सूरदास की जीवनी का सही रूप खोज निकालना दुरूह हो गया है ।

यही घटना इस ग्रंथ के लेखक सूरदास के साथ भी घटी । इनका ग्रंथ तो लोगों के सामने आया नहीं । ग्रंथ की नाममात्र की चर्चा से लोगों ने यही समझा कि उन्हीं विख्यात सूरदास ने नल दमन नामक ग्रंथ की रचना की है । इसी आकर्षण के वश गोलोकवासी भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने कविवचनसुधा नामक पत्र में इस ग्रंथ को खोज निकालनेवाले को एक हजार रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा कर दी थी । परन्तु किसी भी प्रकार उस समय इस ग्रंथ का पता नहीं चल सका । किंवदन्ती के आधार पर स्वर्गीय श्री राधाकृष्णदास जी ने अपने सूरदास के जीवनचरित में लिख दिया कि "सूरदास जी ने नल-दमयन्ती नाम का एक काव्य ग्रंथ भी बनाया था पर वह अप्राप्य है ।" यह किंवदन्ती कोरे भ्रम पर ही अवलंबित थी जो कमोबेश अभी तक चला आ रहा है । उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है डा० प्रेमनारायण टंडन का शोध प्रबंध 'सूर की भाषा' (हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ, सन् १९५७ ई०) पृष्ठ १११ । इस भ्रम का निराकरण प्रथम प्रथम तब हुआ जब कि सं० १९७३ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४१, भाग १९ अंक २ में प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम बंबई के संग्रहाध्यक्ष डा० मोतीचन्द्र ने सूरदास के नलदमन की नस्तालीक अक्षरों में लिखी प्रति का विवरण प्रकाशित किया ।

---

* इस प्रदेश में ढोला नाम से जिस लोक कथा-गीत का प्रचलन है, उसमें वस्तुतः नल की कथा ही पाई जाती है ।

† "जिस कारन यह प्रेम कहानी पूरब की भाषा बिच आनी ।"

इस ग्रंथ की रचना लखनऊ के सूरदास ने सन् १०६८ हि० = १६५७ ई० में की थी। ग्रंथ में उन्होंने अपना और शाहेवक्त का पूरा परिचय दिया है तथा सूफियों की मसनवी पद्धति का पूरा निर्वाह करते हुए इश्क हकीकी का बड़ी बारीकी के साथ कथन किया है। काव्य-सौंदर्य तो जैसे उनकी कलम से चू चू पड़ता है, जिसकी बानगी रसज्ञ पाठक स्वयं स्थान-स्थान पर पायेंगे। मैं अपनी ओर से उसके आस्वादन में व्यवधान उपस्थित करना उचित नहीं समझता।

ग्रंथ की प्रतियों और काव्यगत विशेषताओं की चर्चा सुविज्ञ सम्पादकों ने अपने कथन में विशद रूप से किया है। मैं समझता हूँ कि उनकी इस भूमिका से पाठकों को रचना का पूरा मर्म समझने में किंचित् भी कठिनाई नहीं होगी। उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियों के लिखित रूप को स्पष्ट करने के लिए दोनों प्रतियों के आदि और अन्त के पन्नों के फोटो इसमें प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिससे उनका वास्तविक रूप सामने आ सकेगा।

ग्रंथ का परिचय तो सम्पादकों ने दिया ही है। मेरा कर्तव्य उन लोगों का धन्यवाद करना है जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सामग्री देकर हमें इस ग्रंथ के प्रकाशन का अवसर दिया है। उनमें सर्व प्रथम हम डा० मोतीचन्द्र के प्रति अपनी ओर से तथा समस्त हिंदी जगत् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं, जिन्होंने न सिर्फ अपनी शोधित प्रति और बंबई संग्रहालय की प्रति की प्रतिलिपि प्रदान की है वरन् मूल के दो पृष्ठों को प्रकाशित करने की अनुमति भी दी है। इसके अतिरिक्त मुनि कान्तिसागर जी ने अपने द्वारा संगृहीत बहुमूल्य हस्तलिखित प्रति को विद्यापीठ को देकर जिस उदारता का परिचय दिया है, उसके लिए हम उनके बहुत ही आभारी हैं। यह अब तक की प्राप्त सूचना के अनुसार नागरी अक्षरों में लिखी हुई एकमात्र प्रति है।

विद्वद्वर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस समस्त सामग्री का उपयोग करके श्री दौलतराम जुयाल के साहाय्य से इस ग्रंथ को सम्पादित किया है जिससे एक चिरकालिक अभाव की पूर्ति हुई है। इसके लिए वे भूरि भूरि धन्यवाद के पात्र हैं।

आगरा मंडल इस समय अष्टछापी सूरदास की जयन्ती का आयोजन कर रहा है। आयोजकों के अनुसार उनका जन्मस्थान यहीं आगरे के आस पास का साही गाँव है। अतएव इस अवसर पर विद्यापीठ इन लखनवी सूरदास की यह रचना प्रकाशित करके उक्त आयोजन में अपना सक्रिय योगदान दे रहा है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से सूरदास के नाम पर भटकने वाले शोध-कर्त्ताओं को सही मार्ग-दर्शन होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय आगरा।
अक्षय तृतीया सं० २०१८ वि०

विश्वनाथ प्रसाद
संचालक

॥ई०॥स्वस्तिश्रीसर्वज्ञायनमः॥अथनलद
मनसूरदासकृतमारसपूत॥सुमरूं आदिअ
नादजुकोई॥आदिअंतिपुनिएकैसोई॥१॥
जाहिनबरननिरूपनरेषा॥अबगतिगति
असेषबहुभेषा॥२॥सिथलनचपलनम्हा
नछोटा॥तरुणनबूढालघानमोटा॥बहु
तनथोडासचानफूटा॥मिलानबिछरजु
रानदूटा॥४॥ज्यौकुछत्योकानांवबता
वूं॥नांवजुधरैधरैतिहिनाउं॥५॥नाउंअ
तिबिनसकरगुणहोई॥जोनिर्गुणतिहिनां
वेनकोई॥६॥नाउंएहीजोकहेंसकनाउं
॥ईहूकहितपरराषतनाउ॥७॥वोहजु
रूपवाकोअनकह्यो॥बचननेंचसैतहं
थकिरह्यो॥८॥जहांबचनकहिगवननन
होई॥तहांकोणबिधबसैकोई॥९॥होह
रा॥आपनबनानबनैबिनाआपनबनांव
नाव॥ज्योसबनात्योंहीबनाकहितनब
नैबनाव॥१०॥जद्यपिज्योंत्योंकैजुजाइ॥पेघ
टऔघटरह्यासमाई॥जहांनवोहिसोठौर
नकोई॥ठौरठौरमेएकैसोई॥औपुनछेद

मुनि कान्तिसागर की प्रति का प्रथम पृष्ठ

मुनि कान्तिसागर की प्रति का अन्तिम पृष्ठ



प्रिंस आफ् वेल्स म्यूज़ियम बम्बई की प्रति का अंतिम पृष्ठ

# ग्रन्थ की प्रतियाँ

प्रस्तुत सम्पादन ग्रंथ की दो प्रतियों के आधार पर हुआ है। प्रथम ति सभा (काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी) की है जिसका संकेत 'स०' है र दूसरी प्रति जयपुर के श्री मुनि कांतिसागर जी की है जिसका संकेत 'कां०' है। ०' प्रति बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम की फारसी प्रति की नागरी अक्षरों में गई नकल है और यह टंकित है। उक्त म्यूजियम के क्यूरेटर डा० श्री मोतीचन्द्रजी प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में 'कवि सूरदास कृत नलदमन काव्य' शीर्षक से नागरी चारिणी पत्रिका (वर्ष ४१-सं० १९९६, नवीन संस्करण भाग १९—अंक २) में ख छपाया। उक्त लेख में फारसी प्रति के संबंध में उन्होंने इस प्रकार लिखा है —

'इधर जब से मैं बंबई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम का क्यूरेटर नियुक्त हुआ, मुझे वहाँ की संगृहीत फारसी पुस्तकों की विस्तृत सूची बनाने का अवसर मिला। न पुस्तकों में 'नलदमन' नामक एक सचित्र पुस्तक भी थी जिसे पहले की सूची में सूचीकार ने फैजी कृत 'नलदमन' की पदवी दे रखी थी। पहले तो मैंने समझा कि शायद फैजी कृत नलदमयंती-चरित्र का यह फारसी अनुवाद हो क्योंकि अकबर के दरबारी कवि फैजी का बनाया 'नलदमन' प्रख्यात है। पर म्यूजियम के नलदमन काव्य के एक दो पन्ने उलटते ही मुझे पता लग गया कि यह नलदमन नाम का प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में सूरदास नामक कवि का लिखा हुआ है। इन सूरदास का संबंध सूरसागर के रचयिता सूरदास से कुछ भी नहीं, ऐसा साफ पता लगता। जान पड़ता है, सूरदास के नाम-साम्य के कारण नलदमन की रचना सूरसागर के सूरदास के जिम्मे कर दी गई।

१—प्रस्तुत पुस्तक फारसी लिपि में लिखी हुई है। इस पुस्तक में १६१ डबल पृष्ठ हैं। जिन पर चित्र नहीं बने हैं उन पृष्ठों पर १२ सतरें हैं। पूरे पृष्ठ की नाप ९¾ × ५¾ तथा लिखित भाग की नाप ७¾ × ४" है। कातिब ने पृष्ठ-संख्याएँ नहीं दी हैं, बाद में किसी ने पेंसिल से भर दी हैं। बहुधा चित्र पूरे पेज के नहीं हैं। ये पृष्ठों के बीच में या निचले भाग में एक दूसरे कागज पर लिखकर चपका दिए गए हैं।

२—पुस्तक फारसी के सुन्दर नस्तालीक अक्षरों में लिखी हुई है। पृष्ठ के दोनों बीच हाशिया छूटा हुआ है जिसके दोनों ओर पाठ अंकित हैं। पाठ की हर सुन्दर लाल काले नीले तथा सुनहरे धागों से बांध दी गई है। दोहे सुनहरे अक्षरों में बीच में पड़ी पट्टियों में, लिखे हुए हैं। पुस्तक औरंगाबादी कमखाब की जिल्द में बंधी हुई है।

'पुस्तक के अंत में इस प्रति के लेखक का नाम आकुल्ला वल्द मुहम्मद ब… दिया हुआ है। इस प्रति की नकल हिजरी सन् १११० यानी बादशाह औरंगजेब राज्यकाल के ४१वें वर्ष में समाप्त हुई। यह प्रति मियाँ विसर खाँ नामक किसी सरदा(र) के लिए तैयार की गई थी। ये विसर खाँ कौन थे इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ये औरंगजेब के प्रसिद्ध सिपहसालार दिलेर खाँ नहीं हो सकते क्योंकि इनकी मृत्यु सन् १६८२ यानी इस किताब के लिखे जाने के सोलह वर्ष पहले हो चुकी थी। लिपि की शैली से यह पुस्तक हैदराबाद की लिखी मालूम होती है और शायद मियाँ दिसेर खाँ वहीं के कोई उमरा या रईस रहे होंगे।

'पुस्तक का प्रारंभिक पृष्ठ सुन्दर उन्नाब और सोने के चुकारे से अलंकृत है। तीन तरफ हाशियों में बादाम की बेलें हरे नीले लाल तथा गुलाबी रंगों से बनी हैं। ग्रंथारंभ बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम से होता है। बाद में ईश प्रार्थना शुरू होती है—।

सभा की टंकित प्रति फुलस्केप आकार के आधुनिक सफेद कागज पर है। आकार है—११३ × ८२। ऊपर से इस पर खाकी जिल्द बँधी है। इसमें ग्रंथारंभ का अंश 'बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम' है। पुष्पिका टंकित नहीं हुई है। मूल प्रति के अलंकृत होने की सूचना अवश्य दी गई है। इसमें समस्त १६१ पत्र हैं। प्रथम पत्र में २१ पंक्तियाँ हैं और अंत के पन्ने में ४ पंक्तियाँ। शेष पन्नों में किसी में १७ पंक्तियाँ हैं और किसी में २६। इसमें दोहे की संख्या ३८१ है तथा प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्धालियाँ हैं। प्रति कब टंकित हुई इसका उल्लेख नहीं किया गया है पर 'अठारहवें खोज विवरण' (का० ना० प्र० स०) के आधार पर यह सन् १९४१ के लगभग टंकित हुई जान पड़ती है। उक्त खोज विवरण (पृष्ठ ९) में इसका उल्लेख है।

'का० प्रति नागरी अक्षरों में है और यह पुराने देसी कागज पर लिखी हुई है। इसमें समस्त १२४ पन्ने अंकित हैं परन्तु गिनने पर १२१ निकलते हैं। यह सजिल्द है जिस पर लाल कपड़ा लगा है। जिल्द अब अलग हो गई है। ऐसा विदित होता है कि इसकी दो बार जिल्दबंदी हुई। दूसरी बार जिल्द से अलग हुए पत्रों को ठीक किया गया। पत्रों का आकार ८३ × ६१ है। लिखित अंश का आकार ६६ × ४३ है। लिखित अंश उसके दोनों ओर (दाहिने और बाएँ) हाशिया छोड़ कर लाल स्याही की दो-दो रेखाओं से मर्यादित है। प्रत्येक पत्र के पृष्ठ के नीचे दाहिनी ओर हाशिए पर पत्र संख्याएँ अंकित हैं। प्रति पृष्ठ में २१ पंक्तियाँ हैं। इसमें समस्त १६७ दोहे हैं और 'स० प्रति की भाँति प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्धालियाँ हैं। दोहे और चौपाइयों को संख्यांकित करने का क्रम हो रहा था, पर यह प्रथम दोहे तक ही सीमित रहा। आगे उसका निर्वाह न हो सका। प्रति संवत १८१५ की लिखी हुई है। ग्रंथारंभ का अंश इस प्रकार है —

॥६०॥ स्वस्ति श्री सर्वनाथ नम ॥ अथ नल दमन सूरदास कृत आरम्भते ॥
सुमरु आदि अनादि जु सोई। आदि अंत जुग एकै सोई ॥१॥
जाहि न बर्न न रूप न रेखा। सबपति पति अलख यहु लेखा ॥२॥

पुष्पिका निम्नलिखित रूप में है—

'संवत १८१५ तत्र वर्षे माहा मांगल्य मासे । कत मासे सुक्ल पखे तिथी १२ गुरु दिन लि० मिश्र चेतराम लिपाव स्यों पुन्य आत्मा ऋषि जी शुभ मस्तु मंगल ददातुः पुस्तक लिपि लिखायतं जोग पठेते ।।

यह प्रति भी किसी फ़ारसी प्रति की नकल है अथवा उसकी नकलों की परंपरा में है। अनेक शब्द फ़ारसी लिपि के कारण शुद्ध रूप में नहीं हैं। कहीं कहीं तो कुछ के कुछ हो गए हैं जिनके शुद्ध रूप का पता लगाना ही कठिन हो जाता है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं —

१—सिथिल न चपल बड़ा न छोटा । तरुण न बूढ़ा लघा न मोटा ।।
—दोहा ।।१।।

इसमें 'चपल' को 'चंचल' होना चाहिए। इससे चौपाई की मात्राएं पूरी १६ हो जाती हैं। कहना नहीं होगा कि फ़ारसी प्रति में 'चंचल' के 'नून' अक्षर को ठीक ठीक पढ़ने में भ्रम न हो सका और लाम 'चे' अक्षर को पे पढ़ लिया गया। इससे अर्थ तो ठीक बैठा, पर मात्राएं गड़बड़ हो गईं।

२—बहुत न थोड़ा सखा न रूठा । मिलत न बिघरा बुरा न छूटा ।।४।।
—वही

इसमें 'सखा' शब्द कोई अर्थ नहीं रखता। होना चाहिए, 'सचा' लिखने वाले ने 'जीम' को 'खे' पढ़ लिया और लिख दिया 'सखा'। इसी प्रकार 'बिछुरा' को 'बिघरा' कर दिया; क्योंकि 'पेश' चिह्न का पता न लगा।

३—राता बिरह करै दिन पाता । ढूंढनि पात करै बहु राता ।।
—दोहा ।।६।।

यहाँ उत्तर पद होना चाहिए—ऊँठ निपात करै बहु राता ।।

४—जो रसना सत होतिहि रूपा । जिहि सो गुन सब होतिहि लपा ।।
भुम्म अकास कागर सम होई । तरवर थी मिस सागर सोई ।।
लंबन अस तरवर तिन डारा । तो गु लिखिन जाइ बिस्तारा ।।
—दोहा ।।११।।

रेखांकित पद फ़ारसी लिपि के कारण अशुद्ध पढ़ लिए गए। ये चौपाइयाँ शुद्ध रूप में इस प्रकार हैं—

जो रसना सब होहिं कथंपा । जहँ मी कर सब होंहि लिखंपा ।।
भुईं अकास कागर सब होई । तरवर थी सागर मसि सोई ।।
लेखनि सब तरवर तिन डारा । तऊ सो लिखि न जाइ बिसतारा ।।

विषय स्पष्ट करने के लिये इतने ही उदाहरण बहुत हैं। कहने का तात्पर्य य कि प्रति इस प्रकार की अशुद्धियों से भरी पड़ी है जिससे उसके फ़ारसी प्रति की ना होने का पूरा प्रमाण मिलता है।

## प्रतियों में भेद

प्रस्तुत प्रतियों में भेद है। 'का०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसका प्रचार रचयिता द्वारा रचना समाप्त होते ही हो गया। 'स०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसमें रचयिता अपने जीवनपर्यंत संशोधन परिवर्द्धन करता रहा। इसलिये यह संशोधित-परिवर्धित रूप में है यद्यपि फ़ारसी प्रति की नकल होने के कारण इस पाठों की भी वही दशा है जो 'का' प्रति के पाठों की है। प्रस्तुत संपादन में इसके परिवर्धित अंश यथास्थान पाद टिप्पणियों में दे दिए गए हैं। वे प्रक्षिप्त नहीं हैं।

## प्रतियाँ एक दूसरे की पूरक

दोनों प्रतियाँ एक दूसरे की बहुत कुछ पूरक के रूप में हैं। यदि इनमें से एक ही प्रति के आधार पर संपादन किया जाता तो वह निश्चित रूप से असफल सिद्ध होता। इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्रस्तुत संपादन सब तरह से शुद्ध है और उसमें भूलें नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि एक प्रति में जो पाठ अशुद्ध निकला वह साधारणतया दूसरी प्रति में या तो शुद्ध पाठ के रूप में प्राप्त हुआ अथवा उसके पाठ मूल के अधिक निकट पाया गया जिससे सुसंगत पाठ निश्चित करने में सहायता मिली। यहाँ थोड़े से उदाहरण 'का० स० और सं०' (प्रस्तुत संपादन) के क्रम से दिए जाते हैं जो दोहों के अनुसार हैं —

दो० ॥२॥

थो पुन धंद भेद कछु नाहीं । सिमट समाय रहा सब माहीं ॥ (का०)
रू बिन धंद हुद कछ नाहीं । समत समाय रहा सब माँही ॥ (स०)
सौ पुनि धंद भेद कछु नाहीं । सिमिट समाइ रहा सब माँहीं ॥ (सं०)

दोहा ॥३॥

तिहि चेतन बिन कछु न होई । वै करतूत न लागै कोई ॥ (का०)
निगह किरदे बिन कुछी न होई । वै करतूत न सावै कोई ॥ (स०)
तिहि चेतन बिन कछु न होई । वै करतूत न लावै कोई ॥ (सं०)

दो० ॥८॥

कमक धंध हुइ रहा अनका । कारण टट एक को एका ॥ (का०)
एक कनक होइ रहा अनका । कार्ई टूट एक को एका ॥ (स०)
एक कनक होइ रहा अनका । कारण टूट एक को एका ॥ (सं०)

दो०।।१७ (स०)।। १६ (का०)

जे मंगल मोहन के मांगा । तिन्ह पन फिर भ्रातिनि सपि मांगा ।। (का०)
ए मंगल मूरत के मांगा । तिन्ह पन फिरहि रतनम मांगा ।। (स०)
जे मंगल मोहन के मांगा । तिन्ह पन भरहि रतन नग मांगा ।। (सं०)

दो० ।।वही।।

जे मंगल पन घर घर होसें । सो घर पग हुरे बिन होसें ।। (का०)
जा मंगल पन घर घर होसें । सो घर पग न धरें बिन होसें ।। (सं०)
जा मंगल पन घर घर होसें । सो घर पग न धरें बिन होसें ।। (सं०)

दो० ।।२१ (स०)।। २० (का०)

कं जीव महेश गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुने अवर टूटी ।। (का०)
कहा जीव मोह गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हित अंवर टूटी ।। (स०)
कं जीव महत गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुत अवरि टूटी ।। (सं०)

उक्त दोहा इस प्रकार है

माया मोहि मिलाप सों जीव भयो दधि जीव ।
सति गुरु फेरि मथान मन काढ़ि दिखायो पीव ।।२०।। (का)
माया मही मिलाप ज्यों पिव को भयो दधि जीव ।
संकर फेरि मथान मन काढ़ि देखा यह पीव ।। (स०)
माया मही मिलाप ज्यों पिउ न भयउ दधि जीव ।
सतगुरु फेरि मथानि मन काढ़ि दिखायो पीव ।। (स०)

## ग्रंथ की ज्ञात प्रतियाँ

संप्रति ग्रंथ की चार प्रतियाँ ज्ञात हैं । इनमें से एक तो बंबई प्रिंस आफ-वेल्स म्यूजियम की फारसी प्रति है और दो (दूसरी-तीसरी) उसी की नागरी अक्षरों में की गई प्रतियाँ हैं जिनमें से एक काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित 'स०' प्रति (टंकित) है तथा दूसरी उक्त म्यूजियम के क्यूरेटर डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति है । चौथी 'का०' प्रति श्री मुनि कांतिसागर जी की प्राचीन हस्तलिखित देवनागरी प्रति है । डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति का भी थोड़ा बहुत उपयोग किया गया है ।

## आभार प्रदर्शन

जैसा कि आरंभ में लिखा जा चुका है नलदमन के संबंध में सब प्रथम हिंदी-जगत को सूचना देने का श्रेय श्री० डा० मोतीचंद जी को है । उन्होंने ग्रंथ के विषय में एक लेख भी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में छपवाया । इस लेख से प्रस्तुत संपादन में सहायता न लेना

अस्वाभाविक बात होती। अतएव उस के कुछ अंश का इस संस्करण में उद्धरण सहित उपयोग किया गया है। उनकी लिखी नकल की हुई प्रति से भी थोड़ी बहुत सहायता ली गई है। इसके लिये हम उनके विशेष अनुगृहीत हैं। श्रीमुनि कांतिसागर जी की तो महती कृपा हुई कि उन्होंने नलदमन की अपनी प्रति अपेक्षित समय तक के लिये प्रदान कर दी। वास्तव में इस प्रति के मिल जाने से ही प्रस्तुत संपादन संभव हुआ है। इसके लिये हम उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं। इस प्रति को सर्वप्रथम श्री वासुदेवशरण जी ने जयपुर में श्री मुनि कान्ति सागर जी के पास देखा था और तभी यह इच्छा प्रकट की थी कि इसके आधार पर 'नलदमन' का सम्पादन हो जाना चाहिए। श्री मुनिजी ने उदारतापूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपनी प्रति न केवल सम्पादन कार्य के लिये ही सुलभ कर दी बल्कि अग्रवाल जी के अनुरोध को स्वीकार करते हुए उस प्रति को आगरा हिन्दी विद्यापीठ के संग्रहालय के लिये प्रदान कर दिया। अब सम्पादन कार्य के समाप्त हो जाने पर यह प्रति हिन्दी विद्यापीठ आगरा में श्री मुनि कान्ति सागर जी की ओर से धन्यवाद पूर्वक सुरक्षित कर दी जाएगी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का सधन्यवाद उल्लेख करते हुए उसके प्रधान मंत्री डा० श्री राजबली जी पांडेय और पुस्तकाध्यक्ष श्री विश्वेश्वर जी शास्त्री के प्रति आभारी हैं जिन्होंने सभा में सुरक्षित ग्रंथ की प्रति देकर इस कार्य में हमारी बड़ी सहायता की।

## कवि परिचय

पहले यह जन-श्रुति थी कि महाकवि सूरदास (सूर सागर के रचयिता) ने 'नल दमयंती' नाम से भी काव्य रचना की। श्री राधाकृष्णदास ने उक्त जनश्रुति का उल्लेख महाकवि सूरदास की जीवनी में किया और भारतेंदु बाबू श्री हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' में काव्य की खोज निकालने के निमित्त एक हजार रुपए पारितोषिक की घोषणा की। परन्तु काव्य का पता न चला। जन श्रुति का कुछ न कुछ आधार होता अवश्य है; इस बात को ध्यान में रखते हुए अब यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'नलदमन' काव्य ने ही उक्त जनश्रुति को जन्म दिया। इसके रचयिता सूरदास को भ्रम से महाकवि सूरदास समझ लिया गया। वास्तव में ये सूरदास महाकवि सूरदास से नितांत भिन्न सूफी विचारधारा से प्रभावित कवि हैं। अब तक केवल दो हिन्दू कवि ऐसे विदित हुए हैं, जिन्होंने सूफी विचारों से प्रभावित होकर प्रेमाख्यानक काव्य रचे। इनमें से एक हैं दुखहरन जिन्होंने सं० १७२९ में "पुहुपावति"[1] की रचना की और दूसरे हैं प्रस्तुत कवि सूरदास। प्रस्तुत कवि सूरदास ने अपना जो वृत्त दिया है उसके अनुसार इनके पिता का नाम गोवर्द्धनदास (गोरधनदास) था। ये कंबो गोत्रीय और माछिल (मूधस?) जाति के थे। इनके पुरखे कलानौर (गुरुदासपुर पंजाब) में रहते थे वहीं से इनके पिता पूरब की ओर चले गए और बहुत समय तक उधर ही रहे। इनका जन्म लखनऊ में हुआ जिसको इन्होंने बैकुंठ के समान सुंदर बताया है। कलानौर ये कभी नहीं गए। यद्यपि ये परदेश में ही रहते थे तो भी कलानौर का नित्य प्रति स्मरण करते थे। संभवतः स्मरण माहात्म्य के अनुसार इन्हें विश्वास था कि भगवान् कभी न कभी इनको कलानौर

---

१—देखिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित खोज विवरण (सन् १९४१-४३ में संख्या, १०५)। पुस्तक की एक जीर्ण प्रति सभा में है।

देखने की अभिलाषा पूरी करेंगे । यह आशा इनकी आगे पूरी हुई कि नहीं यह जानने का कोई सूत्र इस समय उपलब्ध नहीं —

सूरदास निज नाऊँ बताऊँ । गोरधनदास पिताकर नाऊँ ।।
कंपू पोत माथिम तासु । कलानूर पुरखन कर बासु ।।
तात हमार वहाँ सों आया । पूरब दिसा कोऊ दिन छाया ।।
नगर लखनऊ बड़ा सो धामू । रुचिर ठौर बकुंठ समानू ।।
मेरो जनम यही ठां भयऊ । कलानूर कबहूँ नहि गयऊ ।।१।।
जदपि हौं अबहूँ परदेसा । पै नित प्रति सुमिरौं सो देसा ।।
जैसे पंथी बस सराई । यहूं बिदेस रहौं तिन्ह नाई ।।
आदि ठौर बिसरा मैं नाहीं । सोई सदा रहै मन माहीं ।।
सुमिरन करौं नाम हर स्वासा । मकु जो बिधि पुरवै सो आसा ।।

दो०

दिन दिन दया दयाल के, देस न पहुँचा जाय ।
जब लग सोई बाँह गहि सोइ न देइ पहुँचाय ।।२४।।

पंथ और गुरु परंपरा

इन्होंने अचित पंथ का उल्लेख किया है जिसके ये अनुयायी थे —
गुरु अचित को पंथ जग बहु जन तरली नाव ।।
पहुँचन हार जो पारको, सो रासे तहँ पाँव ।।
गुरु परंपरा इस प्रकार है —

अचित प्रभु > रंगबिहारी > स्यामदयाल > सूरदास

रंगबिहारी का बड़ा ही विलक्षण विवरण दिया है। उन्हें अचित प्रभु सिद्ध पुरुष के रूप में मिले थे। अतएव पंथ के वास्तविक प्रवर्तक वही (रंगबिहारी) थे। वे लाहौर के रहने वाले थे। जाति के कक्कड़ थे। वे चार भाई थे जिनमें वही सबसे बड़े थे। लड़कपन से ही वे भिक्षाकाम पुरुष थे और साधु सिद्धों की सेवा में अधिक मन लगाते थे। परन्तु वे दुखी और बड़े दयावंत थे। प्रति दिन सूर्योदय होते ही नदी में स्नान करते और कुछ समय तक अखाड़े में बालकों की कुश्ती (लड़ी) देखकर मन बहलाते थे। नित्य प्रति बालकों को दिरम* खाने को देते थे। बालक दिरम पाकर बहुत प्रसन्न रहते और अधिकाधिक कौतुक दिखाकर उन्हें भी सदा प्रसन्न रखते। एक दिन जब

*यह देशज शब्द मूलतः 'घूस' है। अवधी में जिसका अर्थ होता है चने की भिगोई हुई दाल। [illegible]

वे बालकों का खेल देख रहे थे तो उन्हें एक सिद्ध पुरुष आते दिखाई दिए। सिद्ध पुरुष का अद्भुत भेष था। न सूफी ही थे और न सेवड़ा ही। सन्यासी भी नहीं कहे जा सकते थे। ब्रह्मचारियों की जैसी वृत्ति भी नहीं पाई जाती थी। जंगम और जोगियों में से भी व कोई नहीं थे। षट दर्शनी अथवा वियोगी जैसों का भेष भी नहीं था। माथे पर तिलक और हाथ में जपमाला थी तथा गले में सींगी एवं कांधे पर मृगछाला पड़ी थी। पलकें नहीं लगती थीं, शरीर पर मक्खियां नहीं बैठती थीं, अंग की परिछाईं भी नहीं पड़ती थी और धरती से ऊपर (अधर में) ही पाँव रहते थे। उन्होंने देखते ही सिद्ध पुरुष को जान लिया। सिद्ध पुरुष के प्रति उनके हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई और गोद से विजन (भीगे हुए चने) निकाल कर सिद्ध पुरुष को दिए। सिद्ध पुरुष ने हँसकर विजन से लिए कुछ अपने मुंह में रखे और जो बचे उन्हें उनके मुँह में डाल दिया। सिद्ध पुरुष का हाथ उनके मुंह में पड़ते ही उनकी बुद्धि के कपाट खुल गए। जैसे ही सिद्ध पुरुष जाने लगे वैसे ही वे भी पीछे-पीछे चल दिए। नाम पूछने पर सिद्ध पुरुष ने अपना नाम अलखित बताया और उनका नाम 'बहोरा' (घरेलू नाम) के बजाय रंगविहारी रखा। तत्पश्चात् सिद्ध पुरुष वहीं के वहीं लुप्त हो गए। अस्तु रंगविहारी को सिद्ध पुरुष का गुरु के रूप में इतना ही साक्षात्कार प्राप्त हुआ। परन्तु आत्मज्ञान की उन्हें उसी समय उपलब्धि होगई और पीछे सिद्ध महात्मा के रूप में भी प्रसिद्ध हुए:—

अब गुरुदेव केर गुन गाऊँ। रंगविहारी जिनकर नाऊँ।
× × × ×

आदि नगर लहौर जिहि नाऊँ। जनम भूमि उन्ह कै तिहि ठाऊँ॥
छत्री कक्कड़ जात कहाए। मैय्या वारहि भले दिखाए॥
पहले कहियत नाँव बहोरा। कलम बहोरे नाँव बहोरा॥
धोरी भैंस बहुत मति घर। सिद्ध साधु कै सेवा कर॥
क्षमावंत दुखी नर दुखो। देख न सकै आत्मा भूखी॥
धरमी करम पंथ पग धारे। कथा वारता सुनै विचारे॥
रहैं पवित भजन सों कामू। सुमिरन करै सदा हरि नामू॥

साथ सिद्ध संगत कर साधुन सों ब्योहार।
गुन न तर्कहिं समुझा यह आतम रूप विचार॥

नित प्रति प्रात उठै जस भानू। जाइ सलिल जस कर असनानू॥
बालक तहाँ सरो पुनि खेलें। छिपकहिं भिरहिं संग मिलि पेलें॥
तिन्ह कौतुक प्रिय मन बिहुरावहिं। नित प्रति तिन्ह देखन जिमावहिं॥
देखन पाइ बालक सुख पावें। अपिको कौतुक करि दिखरावें॥
इक दिन देखत हुते तमासा। सिद्ध एक आया उन पासा॥
अद्भुत भेष धर अपगाती। सूफी औ न सेवड़ा जाती॥
सन्यासी पुनि कहा न जाई। ब्रह्मचरज गति जाइ न पाई॥
जंगम रहा न जाइ न जोगी। षट दरसन सौं भेष वियोगी॥

माथे तिलक हाथ जपमाला । सींगी परे कांध मृगछाला ॥
मन के मूरति पिउ सों लागी । भ्रम मिटि गा संका सब भागी ॥

धसक न साम भोजिन, मावे निकट न जाइ ।
जो न प्रेम परिछाँहिन्हें, अमर मुई सों पाइ ॥

इन यह पुरुष विविध महँ आना । देखत सिद्ध पुरुष पहिचाना ॥
सिद्ध पुरुष इन्ह सब पुनि पेखा । भई परस्पर वैसी देखा ॥
तब इन विरस पोर सों काढ़ । लै ताके सनमुख भए ठाढ़े ॥
हँस कै पुरुष हाथ गह लीन्हे । लै रंचक अपने मुख दीन्हे ॥
कर जो यह इनके मुख डारे । डारत बुद्धि विचार उघारे ॥
क देसा जस भय गुरु आगे । ये गुरु के पीछे उठि लागे ॥
पूछी वचन जो भक्त पाऊँ । कही कहो तुम आपन नाऊँ ॥
कहा भक्ति नाम सुन मोरा । रंग बिहारी राखौं तोरा ॥
कह सो वचन पुनि दिस्टि न आवा । पुरुष जहाँ कर तहाँ समावा ॥

उनहीं परी कृपा भई, दया करी मन देव ।
आतम रूप भला प्रगट रहा न अंतर भेव ॥

× × ×

जामति कला भई जगजागी । रंगबिहारी सिद्ध बखानो ॥
सिद्ध वचन जो कहै सो होई । अविचल वचन न विचल कोई ॥

× × ×

अब यद्यपि ते आप समाने । छिमट जोति मिलि अपटि हिराम ॥
पै गुरु रूप तिन्ह की जो बानी । बीज मन ठहराइ समानी ॥
सो गुन संत पंथ में आवै । जो आवै सो अमर पद पावै ॥
पंथ प्रतापवंत उजियारा । जिन्ह गहा सो रहा न बारा ॥

गुरु भक्ति को पंथ जग बहु जन तरनी नाव ।
पहुँचनहार जा पार को सो राखे तह पाँव ॥

श्यामदयाल जाति के भटनागर कायस्थ थे । उन्हें शैशवावस्था में ही जब वे गोद में थे, रंगबिहारी का गुरु मंत्र प्राप्त हुआ। साथ ही साथ उन्हें भक्त होने का आशीर्वाद भी मिला—

तिन्ह के सिष्य कायथ भटनागर । स्यामदयाल ग्यान गुन सागर ॥
गोद हुते जब बाल अयान । तबही सों सिष्या महँ आने ॥
माथे हाथ धरा गुरु देवा । क अति कृपा लगाई सेवा ॥
आयसु भा यहि सिष्य हमारा । होइ है भक्त जगत उजियारा ॥
ते अब महापुरुष बिख्यातो । गुन उदार ग्यान निधि जानो ॥
जिन्ह को नाम लिएँ दुख जाहीं । दरसन किएँ तजि पाप पराहीं ॥

जो काहू कर सबद सुनावै । ताहि तेहि छिन प्रगट लखावै ॥
मोहि तिन्हीं यह पंथ लखावा । कृपा कीन्ह गुरु आप सिखावा ॥
भूले भटके बाँह गहि, मारग दियो लखाइ ॥
लोहा कंचन कै लियो, पारस पग परसाइ ॥

यह निश्चित पता नहीं चलता कि स्यामदयाल कहाँ के रहने वाले थे। फिर भी अनुमान से जान पड़ता है कि वे पूरब के हों—लखनऊ या उसके आस पास कहीं के निवासी थे। सूरदास लखनऊ में ही रहते थे पंजाब की ओर जाने का उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया, इसलिये बहुत कुछ संभावना इसी बात की है कि उन्हें लखनऊ में ही स्यामदयाल से गुरु मंत्र प्राप्त हुआ।

सूरदास ने 'नलदमन' की रचना शाहजहाँ बादशाह के राज्यकाल (सं० १६८५-१७१५ वि) की समाप्ति के एक वर्ष पूर्व संवत् १७१४ वि० (सन् १०६७ हिजरी) में आरंभ की—

एक सहस सतसठ सन अहा । संवत सतरह सै चौदहा ॥
कै अरंभ तब कथा बखानी । कीन्हीं प्रगट प्रेम निधि बानी ॥

## बादशाह की प्रशंसा

शाहजहाँ की इन्होंने बड़ी प्रशंसा की है। उसके तेज, यश बल-विक्रम वैभव प्रभाव दानशीलता करुणा तथा न्याय प्रियता राजनीति और युद्ध संचालन आदि का ओजपूर्ण भाषा में बड़ा ही भव्य वर्णन है। कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

साह जहाँ सुलतान बखता । भानु समान राज इक छत्ता ॥
दिल्ली उदा सुरज उजियारा । चहूँ ओर जस किरन पसारा ॥
राजन के मुख रहा न पानी । भनी बेलि रवि तेज मुरझानी ॥
हुते जो गढ़ मेरु ज्यों ठाढ़े । डार नवाइ नीर जे काढ़े ॥
किये मसान सबै अभिमानी । मान छोड़ सब करहिं किसानी ॥
सीरा नवाइ रहा सो बाँचा । जो उकसा सो काल मुख खाँचा ॥
रहा न कतहूँ युद्ध कर नामू । यत थिर होइ बैठा सुलतानू ॥
छत्री छत्रधार जो कहाए । ते जुहार कौं बार न पाए ॥
खंड खंड के राजा राऊ । ठाढ़े रहत जोर कर पाऊ ॥

जे राजा तरवार कर कटक देत हैं तार ।
तोर तोर तरवार तिन्ह फार गड़ाए फार ।

साज काज जब करै चढ़ाई । महि मंडल हय मय होइ जाई ॥
चलहिं मयंद ठाठ चहुँ ओरा । मेघन घनी कीन्ह मनु जोरा ॥
धन बिन सेन न बार न पाए । महि पाई सहि न जाइ सो भाए ॥
काँपै धरनि मेरु धस जाई । कमठहि आनि बनी कठिनाई ॥
बासुकि कुमै होई कलमली । पर पताल लोक खलबली ॥

परबत चूर चूर होइ जाहीं । भसम मसल होइ धूर उड़ाहीं ॥
इह लोक पहुँचै सो धूरी । अंधकार उपजै तिहि पूरी ॥
सूरज प्रकास न देइ दिखाई । बासर माझ रैन होइ जाई ॥
बन खंड रूख जेह मिल जाहीं । सरवर सागर सलिल सुखाहीं ॥

अगने उगमम जल गिरै पिछने रखवर लागि ।
ता पिछले कूपा खने तब पावें ते पानि ॥

स्याम बीज जो पुरातन गाई । सो पृथ्वीपति कै बिसराई ॥
गऊ सिंघ एक घाट पियाए । राम एक सर के बिचराए ॥

× × × × ×

दसता कहियत एकै सोई । ता सरवर कहूँ और न कोई ॥
एक बार तिहि सों जिन माँगा । पुनि अर जनम न काहू माँगा ॥
जे ममत ढूँढन क माँगा । तिन्ह धन-फिरैं रतन भय माँगा ॥
जा मंगल धन घर घर डोलै । सो घर धन न घर बिन डोलै ।

× × × × ×

सायरहीं करतार कर धरै पतार दुराइ ।
हरि मुक्ता लौ ना लख कि ब्याह लुटाइ ॥

## भाषा विवाद

'सं०' प्रति (का० ना० प्र० स० में सुरक्षित) से विदित होता है कि 'नलदमन' की भाषा के संबंध में कुछ विवाद चल पड़ा था। यह विवाद पंजाबी और अवधी को लेकर उठा था। सूरदास पंजाबी थे अतः अवधवासियों का उनके प्रति विनय रोष रहा होगा। हो सकता है यह भाषा विवाद गंभीर रूप में प्रांतीयता को लेकर न रहा हो, परंतु इसमें तीव्रता थी अवश्य। इसलिए सूरदास को कहना पड़ा—

'इश्क फिराक' (प्रेम विरह) के कारण पूरबी भाषा (मझिमा) में मेरी आँख खुल रो पड़ी है। परन्तु इसे पूरबी बतकहा (बतहा) मात्र न जानो। भले ही इसका वेश पूरब है पर इसमें व्यक्त किया गया मन (मनहा) पंजाबी ही है। मुझे अपनी भाषा का भय अवश्य है और मैं उसे मुक्ता-मणता करके पहचानता हूँ। भाषा के बीच-बीच में अने सोर आ सकते हैं पर मेरी आँखें 'इश्क हकीकी' में रंगी हुई हैं (इसलिए दूसरी भाषा के द्वार रसन की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई)। इस प्रकार अपनी भाषा और जबान में (यह कृति) बनी तो गया है पर उसे स्वीकार करने में विलास संकेत (पूरब की भाषा में है) किया जाता है। जब उसमें निहित अव्यक्त ध्वनि को पूछते हैं तो उसका मर्म (महरम) ही जो देते हैं। इस प्रकार जमे तने उससे भी नहीं बचा जाता। (वे) पंजाबी छोड़कर और भाषा नहीं जानते। रत्नों का पारखी ही रत्नों को जान सकता है। अपर सब कोई भाषा (पूरबी भाषा अवधी) के मरम (महरम) हैं। (उनमें से) जो कोई पढ़ेगा। वही मतलब समझेगा। इसलिये यह ग्रन्थ पुरानी पूरब की भाषा में लिखी गई है।

बाग बगीचा वही अच्छा होता है जिसमें सबका साझा हो। इसी तरह वाणी भी वही सोहनी लगती है जिसे सब कोई समझ सकें—

या रोचा यह काहु न भखिया । अरज फिराक पूरबी भखिया ॥
मत जानहु यह पूरब मतहा । पूरब देस पंजाबी मतहा ॥
हौं अपने भाषा मन जानो । मुक्ता मुकतर सब पहिचानो ॥
पारसि भाषा सब तार घनेरी । अरक हकीकत आँखें मेरी ॥
अस अपनी भाषा न बखानी । बनी भली पै कोष सकरानी ॥
कोप भरमहु जन जो पूछें । जस जस तासों जाय न बूझे ॥
जब पंजाबी होय न जानी । रतन पारखी रतन सयानी ॥
उत भाषा महरम सब कोई । पढ़ जो मतलब समझ लोई ॥
तिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरब की भाषा बिच आनी ॥

बाग बगीचा सो भला जो सबही सांझा होइ ।
बानी तस भाखे भली जिन्ह समझें सब कोई ॥

सूरदास को संभवत स्वप्न में भी इसका भान नहीं था कि उनकी कृति को लेकर भाषा विवाद भी उठेगा। उनकी आँखें तो 'इश्क हकीकी' में रंगी थीं। समदर्शी पुरुष थे। उन्हें अपना 'इश्क हकीकी' व्यक्त करना था जिसके लिये किसी उपयुक्त भाषा चुनने का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। जन्म से ही अवधी प्रांत में रहने के कारण अवधी उनकी अपनी भाषा थी। इसलिए अवधी में रचना करना उनके लिये स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त अवधी के वह मर्मज्ञ थे। 'उत भाषा महरम सब कोई' से यह स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से उनका दृष्टिकोण पक्षपात रहित और संतोषित था। फिर भी अवधी में लिखने के लिये उनकी सूफी विचारधारा ने भी उन्हें प्रेरित किया ऐसा माना जा सकता है। उनके समय तक रचे गए सभी सूफी काव्य अवधी में थे। अवधी में सूफी काव्य रचनाओं की विशिष्ट परंपरा ही चल निकली थी। अतएव सूरदास उस परंपरा से विछिन्न नहीं हो सकते थे। फलतः उन्होंने अपना प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में रचा।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है भाषा संबंधी इस विवाद का उल्लेख केवल स० प्रति में है। वह भी उसके अंत में। यह प्रति प्रस्तुत संपादन में संशोधित परिवर्धित का... में मानी गई है। इससे विदित होता है कि भाषा विवाद का सामना सूरदास को पीछे करना पड़ा जब उनकी इस कृति का प्रचार हो गया। उन्हें संशोधन परिवर्द्धन करते समय इस विवाद के निराकरण करने की सूझी। अतएव उपयुक्त वक्तव्य दिया और साथ ही साथ यह दिखाने के लिये कि उनके हृदय में पंजाबी के प्रति पूर्ण सम्मान है उक्त वक्तव्य में पंजाबी की पुट भी देदी—

जिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरब की भाषा बिच आनी ।

# काव्य-कथा

जैसा पीछे लिखा जा चुका है नलदमन सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी रचना अवधी भाषा में अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के अनुकरण पर हुई है। इसमें भी बिना सर्गों या अध्यायों के उपशीर्ष दिए कथा का वर्णन है। ग्रन्थारंभ में परमात्मा की स्तुति की गई है फिर समकालीन शासक शाहजहाँ बादशाह की प्रशंसा है और तत्पश्चात् गुरु और कवि परिचय वर्णित है। शासक और गुरु का सविस्तर उल्लेख 'कवि परिचय' स्तंभ में हो चुका है। कथा का आधार महाभारत बताते हुए काव्य रचने का कारण इस प्रकार प्रकट किया है —

एक दिवस मोरे मन आई। भारत पढ़ै लाग चित लाई॥
तेहि के परब पढ़त जब आवा। नल की कथा सोंच हिय लावा॥
सुना जो नर नारी कर पेमू। बिसरा देह गेह कुल नेमू॥
सुनि मन डार पात जस आवा। बिरह बृच्छ उपजन जनु लावा॥
बिकल भयौं तन छूट कमाई। बिखधर डस लहर जनु आई॥
मन मोरें तन कै सुध खोई। नींद आइ अन्तें पर सोई॥
तृसा निरास न भाव नीरा। भूख अपाइ बैठ होइ तीरा॥
पावक पुंज भयौ तन मोरा। पेम पौन पर पर झकझोरा॥
बिरह कै पेम कथा न आरा। मन तै बिरह अकेली सो न्यारा॥

कथा अगिनि होइ हिय परी बरै दई ज्यौं देह।
जो अस मन न डारते भई हुती जरि खेह॥२१॥

रचना का कारण —

प्रेम बैन मन म पुनि आई। कहो अगिनि यह दोहूँ अघाई॥
पेम उमाह पौन सो बाढ़ै। जार बिरह बाती घृत डाढ़ै॥
प्रगट करौं ज्वाला जग जानै। जो प्रेमी सुनि के सुख मानै॥
पेम बीज लै बीज लगाऊँ। रक्त सींचि जसधारि जमाऊँ॥
पल्लव बरन पुहुप उपजाऊँ। प्रति पेमी जन तिन्हहिं रिझाऊँ॥
एहि बिधि पेम लाग हिय खोभूँ। अमिय अमोल बोल मय तोभूँ॥
बिरह बैद जानो मम पानू। सानि प्रेम सौं पेम बखानू॥
जौ उर भाठी मद पेम चुआऊँ। नल कै कथा सुनत कै साऊ॥
ऐसा पेम भयौ मधु ढारी। जानौं दिया पेम मद बारी॥

जा तन लागि जान परि सोई । मन जानत कौं दुख न होई ।।
जिन्ह के बात भाव उपजावैं । जो छन कहँ सो जग कहि होई जाय ।।

पेम पीउजहार के जानत जिन सुकि जाहिं ।
एक पियाला फिरि पियैं दूसर देहि उंचाहि ।।२६।।

बीज रूप में कथा का वर्णन यों है —

नल दमन का पेम बखाना । भया मिलाप सोमेसर ठाना ।।
कलजुग नल सौं जुआ खेलाया । मन हराइ बनवास देवाया ।।
औ बन मैं बिछुरे नर नारी । पुनि मिलाप हू भए एक ठारी ।।
जुआ खेल जीता पुनि राजू । आइ पुरा सब कहँ समाजू ।।
भारथ में जो कथा बखानी । ब्यासि पंस बानी महँ मानी ।।
बात मास में कुमति बनाई । कथा पुरान मय कै बिचराई ।।

सूफी मर्म (प्रकटार्थ के साथ-साथ गूढार्थ) के प्रति भी संकेत किया है —

बहुत ठौर जिन मरम दुरावा । सब काहू पै जाइ न पावा ।।

बहुत लोग बोहित चढ़े बणि पर भावें जाहिं ।
मुकता पावैं मरजिया जसि खोजैं ता माहिं ।।२७।।

कथा इस प्रकार है :—

राजा नल उज्जैन में राज्य करता था । वह छत्रपति राजा था । अनेक राजे राव सिर नवाकर उसकी आज्ञा का पालन करते थे । उसका तेज सूर्य के समान था । सत्य और शांति उसमें विराजमान रहती थी । राजकाज करते समय सत्य और धर्म का पूरा विचार रखता था । धर्म की रक्षा तो प्राणपण से करता था । वह बड़ा बुद्धिमान, पंडित, धर्मात्मा सर्वगुण संपन्न, शूरवीर और तेज एवं दया का सरोवर था । वह रूप में भी अप्रतिम था । संसार में कोई उसके रूप की होड़ करने वाला नहीं था । उसके स्वभाव और वाणी से प्रेम छलकता था । सदैव प्रेम मार्ग का अनुसरण करता था । किसी को प्रेम में दुखी देख स्वयं भी बड़ा दुखी होता था । लोग उसके प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहार से मुग्ध हो जाते थे । राग रंग की ओर वह अधिक रुचि रखता था । रात दिन गुणियों की चरचा करता था । एक गुणी जाता तो दूसरा आता था । उसकी सभा विद्वानों कवियों, संगीतज्ञों, ज्ञानियों और अन्य अनेक गुणियों से भरी रहती थी । उसमें सदा शृंगार और धर्म पर विचार विमर्श चला करता था । एक दिन राजा जब सभा में बैठा हुआ था और गुणी लोग अपने-अपने गुणों का प्रदर्शन कर रहे थे तो अकस्मात् प्रेम की चर्चा चल निकली जिसके फलस्वरूप रूप पर विवाद छिड़ पड़ा । प्रश्न हुआ 'सोलह कला पूर्ण उज्ज्वल रूप किस स्त्री में होता है और वह कहाँ पाई जाती है ? सबने एक स्वर से उत्तर दिया कि ऐसा रूप पद्मिनी स्त्रियों में ही संभव है और पद्मिनी स्त्रियाँ सिंघल द्वीप में होती हैं । वैसे राजा और रंक में कोई भेद नहीं इसलिये घर घर की स्त्रियों को भी पद्मिनी सदृश ही समझना

हिए; उनका रूप भी अनुपम है। सभा में एक मालिन भी कहीं से आकर बैठी थी। वह गायन में निपुण (चतुर) और अनुप थी। वह भी उठकर विनयपूर्वक बोली— महाराज ! यह सत्य है कि सिंघल द्वीप में ही पद्मिनी स्त्रियां होती हैं। परंतु भगवान् की लीला अपरंपार है; वह चाहे तो ताल तलैया में भी मोती उत्पन्न कर सकता है। जंबूद्वीप में भी पद्मिनी स्त्री विद्यमान है। यह बात मैं सुनी हुई नहीं, देखी हुई कहती हूं। पहले मैंने भी सुना ही था और उस पर विश्वास नहीं किया था। परंतु अब आंखों से देखा तब विश्वास हुआ। विदर्भ देश में वह कन्या के रूप में है। संयोग से उसके योग्य अभीतक कोई वर नहीं मिला। वहां कुंडनपुर नाम का अनुपम नगर है। मैं समस्त जंबूद्वीप में फिर चुकी हूं और उसके देश देश और नगर नगर से अच्छी तरह परिचित हूं परन्तु उस जैसा नगर मैंने कहीं नहीं पाया। वैकुंठ के विषय में जैसा सुना जाता है, वह नगर सचमुच वैसा ही रमणीक है। वहां के राजा का नाम भीमसेन है। वह छत्रपति राजा है और उसके समान उस मंडल में और कोई राजा नहीं। उसी राजा की पुत्री पद्मिनी है। एक सिद्ध पुरुष के वरदान से उसका जन्म हुआ। उसमें एक विशेष बात यह है कि पद्मिनी से वह एक कला बढ़कर है। उसकी हाथ की उंगलियों में अमृत है। उन्हें धोकर मृतक के मुख में देने से वह तत्काल जी उठता है। विधाता ने मानो उसे ही अमृत में सान कर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो। उसकी मुख की ज्योति के विषय में तो कुछ कहते ही नहीं बनता। शरद पूर्णिमा की चंद्रकांति से भी कहीं उज्ज्वल ज्योतिर्पुंज के समान वह ज्योति है। महाराज सचमुच वह पद्मिनी आश्चर्यजनक है वैसी अभी कहीं मेरे सुनने में नहीं आई है। उसकी सुवास तीनों लोकों में भर गई है और सारा संसार भौंरा बनकर उसकी आशा से मंडरा रहा है। उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है। न जाने वह किस भाग्यशाली के हाथ लगती है।" यह सुनते ही राजा की उत्कंठा बढ़ी और उसने मालिन से कुंडनपुर नगर, भीमसेन राजा और राजपुत्री के जन्म आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन करने के लिए कहा। मालिन ने तदनुसार पहले नगर के वृक्ष फुलवारी पक्षी ताल सरोवर कुआ बावड़ी, मन्दिर, भवन, अट्टालिका स्त्री पुरुष नगर से दूर बस्ती, हाट, बाजार, चौक, व्यापार, व्यवसाय, ठग पाखंडी, वेदपाठी ब्राह्मण ज्योतिषी, स्वांग-नृत्य नाच वाद्य जड़ी-बूटी छीप, चितेरा चित्रकार, वाजा-भाग, वैद्य और विविध जातियों का विस्तृत वर्णन किया। तत्पश्चात् राज दुर्ग, हाथी, घोड़े राजद्वार, राजसभा और राजा भीमसेन तथा उनकी पटरानी राजमती का वर्णन करते हुए अन्त में राजपुत्री का सविस्तर मनोमुग्धकारी वर्णन कर राजा को सुनाया। राजपुत्री के जन्म के विषय में बताया कि —राजा भीमसेन के कोई संतान नहीं थी जिसके लिए वे सर्वदा चिंतित रहते थे। एक दिन दमन ऋषि उनके राज्य में आकर तपस्या करने लगे। राजा ने सुना तो उनके दर्शन के निमित्त गए। ऋषि ने प्रसन्न होकर रानी को खिलाने के लिये राजा को चार पके फल दिए और कहा कि उनके प्रभाव से उनकी इच्छा की पूर्ति होगी। निदान समय पाने पर उनकी रानी राजमती के गर्भ से चार संतानें—क्रमशः तीन पुत्र और एक पुत्री—उत्पन्न हुए। वे सब बड़े भाग्यशाली बुद्धिमान साधु, सुशील और धर्मज्ञ हैं। पुत्री स्त्रियों में श्रेष्ठ पद्मिनी के समान है और उसका नाम दमंती (दमयन्ती) है। राजा यह सुनते ही मन से वश में होगया। वह उदास

रहने लगा। न दिन को राजकाज में मन लगता और न रात को नींद आती। रसरंग से भी चित्त उचड़ गया। उसे कहीं भी कल नहीं पड़ने लगी। हर समय व्याकुल रहने लगा। अपने मन का भेद भी किसी को नहीं बताता। उसकी भूख प्यास दोनों जाती रही। वह प्रेम विरह में घुलने लगा। देह दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगी जिससे वह पीला पड़ गया। भाई-बन्धु उसकी यह दशा देख बहुत दुखी हुए। वे उससे रोग पूछने लगे; परन्तु वह कुछ नहीं बताता। इससे सब हैरान हुए। फिर भी उपचार आरम्भ हुआ और पाप शांति के निमित्त पुराण पढ़े जाने लगे। वैद्य और ओझा भी बुलाए गए। उनसे अपनी-अपनी समझ के अनुसार रोग पहचानते हुए राजा की व्याकुलता शांत करने के निमित्त उपचार करने के लिये कहा गया। पहले वैद्य ही रोग परीक्षा के लिए गया। उसने राजा की नाड़ी देखी तो उससे रोग का निदान कुछ न हो सका। दूसरी बार नाड़ी पकड़ने बढ़ा तो राजा रुष्ट हो गया। उसने वैद्य से स्पष्ट कह दिया कि वह प्रेम का रोगी है, अन्य रोग उसे कुछ नहीं। वैद्य लौट गया और उसने सबको राजा का यथार्थ रोग बता दिया तथा उस सम्बन्ध में शीघ्र से शीघ्र उपाय करने के लिए कहा। यह जानकर राज्य प्रधान प्रभुतसेन तुरन्त राजा के पास आया और राजा को धैर्य बँधाते हुए उसके प्रेम के विषय में पूछा। राजा ने भी अपने प्रेम का मर्म सब खोल दिया और कहा कि यदि शीघ्र ही प्रिय मिलन न हुआ तो उसका जीवित रहना अत्यन्त कठिन हो जाएगा। मंत्री ने विनय की 'महाराज! वियोग दुःख में धैर्य धारण करना प्रथम कर्तव्य है। प्रेम में स्वयं भगवान् सहायक होते हैं। सच्चा प्रेम एक ही ओर नहीं रहता वरन् वहाँ भी पहुँचता है जिससे प्रेम होता है। जब प्रेम अन्तिम अवस्था तक पहुँच जाता है तो इसमें सन्देह नहीं कि वह परीक्षा की घड़ी होती है। ऐसा कौन है जो प्रेमी को दुःख में देख उसकी सुधि न ले। इस प्रकार मन्त्री ने राजा को धर्म बँधाने का प्रयत्न किया परन्तु राजा को शांति नहीं हुई। उसे वियोग दुगुने वेग से सताने लगा। धैर्य की बातें उसे पीड़ा देने लगीं। अन्त में उसका प्रेम प्रलाप और उन्माद की अवस्था तक पहुँच गया। कुटुम्बीजन, इष्ट मित्र और सभी सम्बन्धी सब आए और समझाने लगे। उन्होंने उसके प्रिय की इच्छा जानने के विषय में प्रयत्न करने का भी वचन दिया पर राजा पर उनके समझाने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। सब हार मान कर चुप हो गए। उल्टे हो राजा प्रलाप की दशा में उन्हें समझाने लगा।

इधर राजा नल की यह दशा हुई और उधर उसकी वियोगाग्नि की लपट दमयंती तक जा पहुँची। वह भी रात्रि को तड़फ तड़फ काटने लगी। उसके हृदय को मन दुःख दैन लगा जिससे उसकी निद्रा जाती रही और उसे चिंता ने आ घेरा। रातें उससे काटे न कटतीं। तारे गिनते गिनते प्रात होने लगा। एक रात उसने नल का चित्र बना डाला जिसे सखियों के सो जाने पर एक टक देखती और प्रेमाश्रु बहाती। रात दिन प्रिय के ध्यान में मग्न रहती। उसकी भूख प्यास जाती रही। रक्त कमल जैसा उसका मुख पीला पड़ गया। वह अत्यंत दुर्बल हो गई और उठने बैठने में ही उसे पसीना छूटने लगा। सखियों को अभी तक उसका यह भेद विदित नहीं हुआ। वह प्रकट में उनसे हँसने खेलने की बातें करती परन्तु मन ही मन रोती रहती। अंत

में एक दिन दमयंती का धाय उसके पास आई और उसने उसको अनुमान करके देख लिया। वह बहुत चकित हुई। उसने एकांत में दमयंती से दुर्बल होने और रोने का कारण पूछा, परंतु दमयंती ने इधर उधर की बातें मिलाकर धाय को विदा किया। धाय चतुर और अनुभवी थी। उसने दमयंती की दशा का वर्णन रानी से जाकर कर दिया। रानी यह सुनकर बहुत उद्विग्न हुई। वह तुरंत दमयंती के पास आई और उससे दुर्बल होने का कारण पूछा। साथ ही साथ यह भी पूछा कि कहीं वह स्वप्न में डरी तो नहीं। दमयंती ने माता को उत्तर दिया कि उसे न तो कोई कष्ट ही हुआ और न उसे किसी रोग का ही पता चलता है। स्वप्न में डरने की भी कोई बात नहीं क्योंकि वह आत्मा पर विश्वास करती है और हर समय आत्माराम में लीन रहती है। फिर भी, संदेह निवारणार्थ उपचार किया जा सकता है। रानी ने तत्काल वैद्य, ओझा और तंत्र मंत्र के जानकार बुलाए। सबने अपना अपना उपचार किया पर कोई लाभ नहीं हुआ। दमयंती दिन प्रति दिन वियोग में घुलने लगी। परंतु उसकी सखियाँ अब सावधानी से उसकी देख रेख करने लगीं और फलस्वरूप एक रात उनमें से एक ने उसे नल का चित्र लिये रोती देख लिया। बात उघड़ गई। दमयंती ने भी उससे अपना गुप्त भेद प्रकट कर दिया। उस सखी ने दमयंती की दयनीय दशा देख रानी को सूचित किया। रानी पहले तो अत्यंत लज्जित और क्षुब्ध हुई परंतु फिर धैर्य धारण कर दमयंती के पास गई। उसने दमयंती को बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा पुत्री! तुम्हारे पिता छत्र पति राजा हैं। चारों ओर उनका नाम है। यदि तुम्हारे प्रेम की बात कहीं बाहर फैल गई तो वह अपयश का कारण होगा। उससे उनकी प्रतिष्ठा घटेगी और जग व्यवहार बिगड़ेगा। भले ही तुम्हारा प्रेम राजा नल से हो गया है फिर भी तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिए। समय आने पर सब ठीक हो जाएगा। मैं राजा से कहकर तुम्हारा स्वयंवर रचाऊँगी। उसमें राजा नल भी आएँगे जिसे तुम इच्छानुसार पति के रूप में वरण कर सकोगी। इस प्रकार तुम्हें मनानुकूल पति मिल जाएगा और कोई बुरा भी न मानेगा। परंतु दमयंती को धैर्य नहीं बँधा। उसने माता से अपनी अशांत स्थिति का पूरा वर्णन कर दिया। दमयंती का उत्तर पाकर रानी बहुत चिंतित हुई। वह सीधे राजा के पास गई और उन्हें दमयंती का सारा समाचार सुनाया तथा शीघ्र से शीघ्र उसका स्वयंवर करने का परामर्श दिया। राजा ने स्वजन, इष्ट मित्र सब संबंधी और मंत्रियों की सम्मति लेकर दमयंती के स्वयंवर की तैयारी करने की आज्ञा दे दी। देश देश के राजाओं के पास स्वयंवर में आने का निमंत्रण भेजा गया। राजा नल को जब निमंत्रण मिला तो वे प्रसन्न चित्त हो पहु लवाजमा के साथ कुंडनपुर की ओर चले। परंतु आधे मार्ग से ही उनके मन में नये तर्क वितर्क उठने लगे। उन्हें अब इस आशंका ने घेरा कि वास्तव में दमयंती उन्हें पति के रूप में वरण करेगी या नहीं। इससे उनका चित्त फिर अशांत होने लगा और वे इसी अशांत स्थिति में कुंडनपुर पहुँचे। कुंडनपुर की सीमा देखकर उन्हें नारद का कथन सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने स्वच्छ और अगाध जलपूर्ण सरोवर किनारे डेरा डाला। दमयंती ने जब नल के आगमन का समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुई। उसका मुरझाया हुआ मुख कमल के समान खिल उठा और वह राजमहल छत पर चढ़कर नल के डेरे की ओर देखने लगी। दूर से नल को देखकर अपने मन

में 'यह मेरा प्रियतम है' ऐसा कहने लगी। उसके हृदय में नल के पास उड़कर जाने की प्रबल इच्छा हुई। वह चकोरी की तरह फिरने लगी और बिजली के समान तड़फकर गिरने की अभिलाषा करने लगी।

इसी समय देवर्षि नारद पृथ्वी के कौतुकों को देखते हुए कैलास की ओर जा रहे थे। मार्ग में इंद्र मिल गए। इंद्र के पूछने पर नारद ने भूमंडल का समाचार कह सुनाया और दमयंती के रूप सौंदर्य और उसके स्वयंवर का भी वर्णन किया। उन्होंने इंद्र को बताया कि स्वर्ग के समस्त देवता स्वयंवर देखने के लिए कुंडनपुर गए हुए हैं। इंद्र ने देखा कि सचमुच स्वर्ग में एक भी देवता नहीं दिखाई देता तो यम, कुबेर और वरुण को लेकर वे भी कुंडनपुर के लिये चल पड़े। संध्या समय चारों देवता राजा नल के डेरे की ओर निकले। राजा नल ने अभिवादन कर उनका सत्कार किया। देवता वहाँ बैठकर मुसकाने लगे। थोड़ी देर पश्चात् इंद्र ने राजा नल से दमयंती के पास जाकर उसे संदेसा देने के लिये कहा कि "वह देवताओं में से किसी को अपना पति चुने"। राजा नल ने संदेसा सुना तो भौचक्के रह गए। उनकी इच्छाओं पर मानों तुषार पात हुआ। उन्होंने हाथ जोड़ कर विनय की कि "मैं भी मन में दमयंती की मिलन-आशा धरे हुए हूँ और यदि वह संदेसा लेकर जाएगा तो उसे बहुत ही निराश होना पड़ेगा"। फिर दमयंती के दर्शन की अपनी अभिलाषा पूरी होते जान वे संदेसा लेजाने के लिये तैयार हुए केवल मार्ग की कठिनाई बाधक बताई। इंद्र ने उन्हें एक मंत्र देकर कहा "यदि तुम चाहो तो अब इस मंत्र की सहायता से दमयंती के पास निर्विघ्नता पूर्वक जा सकते हो"। राजा नल संदेसा लेकर चल पड़े और मंत्र की सहायता से राजप्रासाद में प्रवेशकर दमयंती के पास जा पहुँचे। उन्हें देखते ही दमयंती और उसकी सखियाँ बहुत लज्जित हुईं। परंतु दमयंती ने शीघ्र ही अपने को संभाला। वह अपरिचित पुरुष को देखकर विचारने लगी कि यह कौन है और कठिन पहरे के रहते यहाँ क्यों और कैसे चला आया। क्या यह मनुष्य है या सूर्य तेज वाला कोई देवता। उसने फिर राजा नल की ओर एकटक होकर देखा तो उन्हें पहचान लिया। वह दौड़ पड़ी और बेसुध होकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। राजा नल ने सिर पकड़कर दमयंती को उठाया। इस प्रथम मिलन में दोनों को अपार आनंद हुआ। हर्ष के आँसू निकल पड़े और उनका वियोग-दुःख जाता रहा। पश्चात् राजा नल ने दमयंती को इंद्र का संदेसा सुनाया। दमयंती संदेसा सुनकर आगबबूला हो गई। उसने इंद्र की बड़ी भर्त्सना की। साथ ही साथ राजा नल पर बिगड़कर बोली हे प्राणनाथ! मैं तुम्हारे प्रेम के लिये सारे संसार से उदासीन बनी हूँ। तुम्हें तन मन धन अर्पण कर चुकी हूँ। परन्तु तुम लोगों का संदेसा लेकर मेरे पास आए हो। मैं केवल तुमको छोड़ अन्य किसी को पति नहीं बना सकती। यदि तुम्हें इंद्र का संकोच हो तो मैं कल स्वयंवर में तुम्हें स्वयं ढूंढ लूँगी। उस अवसर पर इंद्र और अन्य राजाओं के सामने तुम्हें वरमाला पहना दूँगी। इससे तुम्हें कोई दोषी नहीं कहेगा और अवध्य होने के कारण इंद्र मुझे भी शाप नहीं देगा। नल को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और उनका रहा सहा संदेह जाता रहा। वह डेरे पर आया और इंद्र से दमयंती का सब समाचार ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया। इंद्र ने कुछ नहीं कहा और वह चुपचाप वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन स्वयंवर जुड़ा।

इंद्र वरुण आदि चारों देवताओं ने यह जानकर कि दमयंती नल पर आसक्त है और उसी को जयमाला पहनाएगी तो सभा में नल के पास उसी का रूप धारण कर बैठ गए। दमयंती जब नल को वरमाला पहनाने गई तो उसे कई नल बैठे दिखाई दिए। वह बड़ी दुविधा में पड़ी और सोचने लगी कि किस प्रकार राजा नल को पहचान करे। उसे यह भी चिंता हुई कि यदि सभा को उसकी दुविधा का पता चल गया तो वह उठ जाएगी और उसको नल का मिलना फिर दुर्लभ हो जाएगा। वह बहुत व्याकुल हुई। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो भगवान की शरण में गई। उसने तन्मय होकर भगवान् की स्तुति की जिसके फल स्वरूप आकाश वाणी हुई कि धैर्य पूर्वक तीन तरह से परीक्षा लेने पर नल की पहचान होजाएगी। जो नल का रूप धरे हुए हैं उनकी एक तो परछाई नहीं पड़ती, दूसरे आँखों की पलकें नहीं लगती और तीसरे उनके पाँव धरती से ऊपर अधर में रहते हैं। दमयंती ने देखा कि केवल एक पुरुष ऐसा है जिसमें आकाशवाणी के अनुसार लक्षण नहीं घटते। उसने नल को पहचान लिया और उसे वरमाला पहना दी। इस प्रकार दोनों की मनोकामनाएं पूर्ण हुई और उनके आनंद का ठिकाना न रहा। हालांकि चारों देवताओं को पहले तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि दमयंती ने नल को कैसे पहचाना पर फिर नल दमयंती के मिलन हो जाने से बड़े प्रसन्न हुए। वे राजा नल के पास गए और मधुर वचनों से उन्हें संतुष्ट किया तथा वरदान दिया। इंद्र ने अग्निहोत्र विद्या प्रदान की यम ने सौ वर्ष की आयु दी और कहा कि अग्नि सदा आज्ञाकारी बनकर रहेगी। वरुण ने इच्छा करते ही जल प्रस्तुत हो जाने का वर दिया। इस प्रकार वरदान देकर देवता विदा हुए। तत्पश्चात् नल दमयंती का विवाह हुआ। राजा नल कुछ दिन कुंडनपुर में रह फिर दमयंती को लेकर उज्जैन चले आए और उसके साथ सुख पूर्वक रहने लगे।

इंद्रादि देवता जब अपने-अपने स्थानों को जा रहे थे तो उन्हें मार्ग में द्वापर के साथ कलियुग मिला। बातचीत होने पर कलियुग को पता चला कि दमयंती ने नल को जयमाला देकर अपना पति चुन लिया। वह भी उसे पाने की इच्छा से स्वयंवर में जा रहा था इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया और तत्काल नल को शाप देना चाहा। इंद्र ने कलियुग को फटकारा और चेतावनी दी कि ऐसा करने से उसे महापाप लगेगा जिसके फलस्वरूप उसे नरक भोगना पड़ेगा। यह कह वे देवताओं सहित चले गए। कलियुग ने नल को शाप तो नहीं दिया पर द्वापर के सामने प्रतिज्ञा की कि वह नल से बैर ठानेगा और उसे घोर कष्ट देगा। उसे वह धन धान्य और राजपाट से रहित करेगा तथा वन वन घुमा अंत में दमयंती से उसको अलग कर देगा। वह चोर की तरह नल के पास गया और उसे धर्म भ्रष्ट करने की घात में रहने लगा। बारह वर्ष बाद उसे नल को धर्म भ्रष्ट करने का अवसर मिला। एक दिन संध्या काल में संध्या कर्म से निवृत्त होते ही नल को नींद आगई और वह बिना पाँव धोए सो गया। कलियुग ने इतने में ही उसके शरीर में प्रवेश कर उसकी मति को हर लिया। तत्पश्चात वह नल के भाई पुष्कर के पास गया और उसे नल के साथ जुआ खेलने के लिये उकसाया। उसने पुष्कर को अपनी सहायता का वचन दिया। फलतः नल और पुष्कर का जुआ हुआ। [illegible]

के लिये बहुत वर्जित किया पर वह नहीं माना। उनके दो बालक (पुत्र और पुत्री) थे। दमयंती ने जुए का रंग देख उन बालकों को नैहर भेज दिया। अंत में जुआ समाप्त हुआ और नल धन-संपत्ति सहित राजपाट हार गया। पुष्कर ने राज पाजाने पर नल दमयंती को राज्य से बाहर कर दिया और उन्हें आश्रय न देने के लिए राज्य भर में घोषणा कर दी। नल दमयंती वन वन घूमने लगे। पुष्कर के डर से किसी ने भी उन्हें आश्रय नहीं दिया। उन्हें भूख प्यास सताने लगी। वन में दावाग्नि लगी रहने के कारण खाद्य कण भी दुष्प्राप्य था। तीन दिन पश्चात् एक स्थान पर सोने का पक्षी दिखाई दिया जिसे पकड़ने के लिये नल ने धोती फेंकी। परंतु वह पक्षी कलियुग था धोती लेकर उड़ गया। आकाश से उसने अपनी करतूत का वर्णन किया। नल धोती के चले जाने से बहुत दुखी हुआ। उसे नई आपदा ने घेरा। दमयंती के कष्ट ने तो उसे बहुत विचलित किया। उसने दमयंती को नैहर जाने के लिये समझाया परंतु दमयंती ने उसे विपत्ति में छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। फलतः दोनों भूख प्यास सहते हुए फिरने लगे। मार्ग में कहीं फल फूल और सागपात मिल जाने पर थोड़ी बहुत क्षुधा शांत कर लेते। इस प्रकार घूमते फिरते एक नदी के तट पहुँचे। वहाँ भरपेट पानी पीकर प्यास शांत की और थोड़ी देर विश्राम किया। जब उठे तो भोजन के रूप में अनायास दो मछलियाँ पड़ी मिल गईं। नल ने उन मछलियों को उठा लिया और उन्हें दमयंती को देकर स्वयं नहाने चला गया। दमयंती ने मछलियों को छीलना प्रारंभ किया तो उसकी उंगलियों के अमृत से मछलियाँ जीवित हो गईं और हाथ से फिसल कर नदी में चली गईं। दमयंती ठगी सी रह गई। नहाकर वापस आने पर मछलियों को न देख नल ने समझा कि शायद क्षुधा से पीड़ित होकर दमयंती ने उन्हें खा लिया। अतः उसे संतोष हुआ और उसकी भूख भी जाती रही। परंतु जब वास्तविक बात विदित हुई तो भाग्य को कोसने लगा। वे फिर भूख पेट आगे बढ़े। रात्रि को एक गाँव में जाकर टिके। दमयंती के सो जाने पर नल जागता रहा। उसे महान् चिंता सताने लगी। दमयंती के कष्टों ने उसे बहुत विकल किया। विपत्तियों से शीघ्र छुटकारा पाने की भी कोई आशा नहीं दिखाई दी। उसके सामने दमयंती का कष्ट विकट समस्या के रूप में उपस्थित हुआ। वह चाहता था कि दमयंती कुछ दिन नैहर जाकर रहे पर बहुत समझाने बुझाने पर भी दमयंती ने जाना अस्वीकार किया। उसे यह भी आशा नहीं रही कि साथ रहते दमयंती कभी सुख पाएगी। अतएव बहुत सोचने विचारने के पश्चात् उसने दमयंती को वहीं सोती छोड़कर चले जाने का निश्चय किया जिसके पश्चात् दमयंती उसे न पाकर स्वतः पितृगृह चली जाएगी और उसका वन वन भटकने का कष्ट मिट जाएगा। इस निश्चयानुसार वह धीरे से उठा और दमयंती को छोड़ कर चला गया। चलते समय ओढ़ने पहनने के लिये दमयंती की साड़ी और चादर आधी आधी फाड़कर ले गया। प्रातःकाल जब दमयंती जागी तो नल को न देखकर बहुत चकित हुई। वह उसे इधर उधर ढूँढने लगी पर वह कहीं नहीं दिखाई दिया। बहुत देर हो जाने पर भी जब नल नहीं आया तब उसका ध्यान साड़ी और चादर की ओर गया। उन्हें फटे देख उसे विज्ञात हुआ कि नल उसे छोड़कर चला गया। उसका दुःख उमड़ चला। वह विलाप करती हुई रोने लगी। वह नल को खोज में वन की ओर

चल पड़ी। उसे तन बदन की कुछ सुध नहीं रही नल नल पुकारती हुई वन वन फिरने लगी। फिरते फिरते वह एक अजगर के सामने जा निकली जिसने झपट कर उसे निगल लिया। एक व्याध ने, जो दूर से देख रहा था तत्काल दौड़कर तलवार से अजगर का पेट चीर दमयंती को बाहर निकाल लिया। परंतु दमयंती के रूप को देख व्याध उस पर आसक्त हो गया और पकड़ने के लिए उसकी ओर बढ़ा। दमयंती ने व्याध की ढिठाई देख उसे शाप दिया जिससे उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। वहाँ से भागती और विलाप करती हुई दमयंती आगे बढ़ी। चलते चलते वह एक घोर बियाबान वन में पहुँची जहाँ सिंह, हाथी चीते रीछ और अनेक हिंसक पशुपक्षियों का निवास था। एक सिंह अपनी गर्जना से सारे वन को दहला रहा था। दमयंती सीधे उसके सामने गई। उसे जीवन का मोह नहीं रहा। नल के बिना उसे संसार निस्सार प्रतीत हुआ और जीवन की इच्छा के बजाय उसे मृत्यु की इच्छा हुई। परंतु उस विरहिणी की वियोगाग्नि के सामने वह सिंह सियार की तरह भाग गया। यह देख दमयंती को फिर विरह सताने लगा। वह अत्यंत व्याकुल हुई। उसके लिए न तो मृत्यु ही आती और न विरह ही उसे चैन देता। वह फिर नल का नाम ले लेकर आगे बढ़ी। रास्ते में पथिकों से नल के विषय में पूछने पर कोई कुछ न बताता। अंत में एक नदी के तीर पहुँची जहाँ उसने अनेक मुनियों को देखा। मुनियों ने दमयंती को अपने पास बुलाया और उसका परिचय पूछा। दमयंती ने उन्हें अपनी विपत्ति की सारी कहानी कह सुनाई। उन्होंने दमयंती को सांत्वना देते हुए कहा "यह विपत्ति कर्म प्रेरित है इसलिए इससे छुटकारा पाना वश की बात नहीं है। परंतु अब यह बहुत थोड़े दिनों के लिये है। पश्चात् तुझे तेरा पति मिल जाएगा और तू उसके हृदय की रानी होगी। धन संपत्ति और राजसमाज भी पहले जैसा हो जाएगा। इसलिये निश्चिंत रह चिंता न कर। तेरी सब विपदाएँ शीघ्र दूर हो जाएँगी। मुनियों की बात सुनकर दमयंती पहले तो विस्मित हुई, पर पीछे यह समझकर कि मुनि जन सत्य बोलते हैं उसे कुछ धीरज बँधा। वह वहाँ से कलपती बिलपती आगे बढ़ी। रास्ते में बनजारों का झुंड मिला। बनजारों के नायक ने परिचय पाकर उसे चेदिरी चलने के लिए कहा। उसने दमयंती को समझाया कि वन के बजाय बस्ती में पथिक रात दिन आते जाते रहते हैं। उनके द्वारा दूर दूर की खबर हवा की तरह उड़ती है इसलिये पूछताछ करते रहने पर उनसे कभी न कभी नल की खबर मिल जाएगी। दमयंती नायक से सहमत होकर उसके साथ चल दी। परंतु कुछ दिन पश्चात घने वन में निवास करते हुए अर्ध रात्रि के समय बनजारों के झुंड को जंगली हाथियों ने रौंद डाला। वे सबके सब मारे गए। केवल दमयंती और दो चार भिखारी ब्राह्मण बच रहे। दमयंती बनजारों की दशा देख अत्यंत दुखी हुई और स्वयं को मृत्यु का कारण समझ बिलख बिलख कर रोने लगी। ब्राह्मणों ने उसे समझा बुझाकर शांत किया और अपने साथ ले लिया। दमयंती उनके साथ चेदिरी पहुँची। चेदिरी में वहाँ की पटरानी ने उसे देखा और अपने पास बुलाकर उसका परिचय पूछा। उसने परिचय के विषय में केवल इतना ही कहा कि "वह दुखियों की मारी हुई है"। पटरानी ने फिर कुछ नहीं पूछा पर उसके रंग रूप से समझ

गई कि यह कोई राजरानी है। उसने उसका स्वागत सत्कार किया और वाटिका में टिकने का स्थान दिया तथा अपनी पुत्री को साथ रहने के लिये भेज दिया।

उधर नल दमयंती को छोड़कर चला तो गया पर दमयंती का विरह उसे सताने लगा। उसके बिना वह व्याकुल होकर फिरने लगा। फिरते फिरते ऐसे वन में पहुंचा जहाँ दावाग्नि लगी हुई थी। वहाँ कोई उसको पुकार पुकार कर कह रहा था —नल तुम धर्मात्मा, गुणी और ज्ञानी हो जरा मेरे पास आकर एक बात सुन लो। नल ने यह सुनकर दृष्टि दौड़ाई तो एक सर्प को जो उसका नाम पुकार रहा था—दावाग्नि में पड़ा देखा। उसकी बात मानकर वह उसके पास गया। सर्प ने कहा म पापी हूं। मुझे अपने कर्मों और ब्राह्मण के शाप से यह गति मिली है। मैंने एक ब्राह्मण को अकारण डसा था जिसने मुझे एक ही जगह पर स्थिर रहने का शाप दिया। इसलिए म हिल डुल नहीं सकता। इधर यह अग्नि काल रूप होकर मेरी ओर बढ़ रही है। आप मुझे इससे बचाइए और सुरक्षित स्थान पर ले जा कर रख दीजिए। यदि आपने इस बार मुझे बचा लिया तो मैं सदा के लिये अमर हो जाऊँगा। नल के हृदय में सर्प के प्रति दया उत्पन्न हुई और उसने उसको उठाकर अग्नि से बाहर कर दिया। जब छोड़ना चाहा तो सर्प ने दस कदम गिनते हुए चलकर छोड़ने के लिये कहा। नल ने वैसा ही किया, परंतु 'दस' कहने पर सर्प ने उसे डस लिया। सर्प के डसने से नल के सारे शरीर में विष व्याप्त गया और उसका रंग काला पड़ गया। नल ने कारण पूछा तो सर्प ने कहा 'मैंने आप के साथ धोखा नहीं किया है। इस समय आप दुर्दिनों के फेर में पड़े हैं। और यह दशा कुछ दिनों तक बनी रहेगी। आप राजा हैं और सारा संसार आपको जानता है। कोई शत्रु इस स्थिति में आपको दुःख दे सकता है। इसलिए मैंने आपके रूपको छिपा लिया है जिससे कोई आपको पहचान न सके। जब आपके कठिन दिन जाएंगे तो आपके स्मरण करने पर म प्रकट हो जाऊँगा और अपने विष का शोषण कर लूंगा। आप का रंग फिर ज्यों का त्यों हो जाएगा। इसके अतिरिक्त यह विष आपकी रक्षा करेगा। इसके प्रभाव से आपके निकट न तो कोई शत्रु आएगा और न युद्ध में कोई आपसे जीत ही सकेगा। अब आप अपना नाम बाहुक रख सीधे राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या चले जाइए। राजा ऋतुपर्ण जुआ खेलने की विद्या जानते हैं। आप उनकी सेवा करके वह विद्या प्राप्त करें। जुआ का मर्म जान लेने पर फिर उसी खेल द्वारा आप अपना गया हुआ राज्य वापस पाएंगे और यह दुःख फिर आपके लिये स्वप्न हो जाएगा। यह कहकर उसने नल को दो कंचुलियाँ यत्नपूर्वक रखने के लिये दीं और कहा कि ये अग्नि स्वरूप हैं। समय आने पर इ उसके रूप को पहन बता कर देंगे। नल सर्प के उपदेशानुसार शीघ्र अयोध्या पहुंचे और वहाँ राजा ऋतुपर्ण के सारथी बन कर रहने लगे।

कुंडनपुर में जब नल दमयंती के वनवास का समाचार पहुंचा तो राजा भीमसेन और रानी राजमती बहुत शोकाकुल हुए। उन्होंने शीघ्र ही नल दमयंती की खोज करने के लिये चारों ओर ब्राह्मणों और भाटों को भेजा। राजा नल का पता तो न चला पर सहदेव नामक ब्राह्मण ने चंदेरी के राजमहल में दमयंती को देख लिया। बात प्रकट हो

ने पर चंदेरी की रानी दमयंती से प्रेम पूर्वक मिली। उसने दमयंती को बताया कि उसकी [माता] और वह सगी बहनें हैं इसलिये वह उसकी पुत्री के समान है। वह दमयंती के दुःख [को] देखकर बहुत दुखी हुई और उसे उसकी इच्छानुसार राजा साज के साथ कुण्डनपुर [भेज] दिया। दमयंती के कुण्डनपुर पहुँच आने पर सबको बड़ा हर्ष हुआ पर दमयंती को [इ]ससे कुछ सुख नहीं मिला। वह नल के विरह में घुलने लगी। उसके दुःख को देखकर [रा]जा और रानी बहुत चिंतित हुए। उन्होंने नल को ढूंढने के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त [कि]या। ब्राह्मण पहले दमयंती से मिले। दमयंती ने उन्हें नल के चिह्न बताए और फटी [च]दर दिखाकर नल के काम का परिचय दिया। उसने कहा, जहाँ जहाँ जाओ वहाँ-वहाँ [क]हना कि "एक पुरुष दुःख से दग्ध स्त्री को वन में सोती छोड़कर चला गया। उसकी [चा]दर को भी आधी फाड़कर ले गया। ऐसा निठुर कि जरा भी द्रवित नहीं हुआ। उसके [म]न, मन और हृदय को वज्र की ही तरह चीर कर चला गया।" उसने कहा यदि इन [बा]तों से कहीं डेरा डाले किसी पुरुष का पता चले तो समझ लेना कि वही वनवासी [नि]ठुर नल है। ब्राह्मणों के हृदय में भी दमयंती की पीड़ा से बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। वे [उ]सका मर्मभेदी संदेश लेकर वन और उसे वन-वन नगर-नगर कहते हुए नल को [ढू]ढने लगे। उनमें से एक ब्राह्मण अयोध्या भी गया और घर घर गली-गली यही बात [सु]नाने लगा। वह फिरते फिरते वहाँ निकला जहाँ नल रहता था। नल ब्राह्मण के मुख [से] मर्म संदेश सुनते ही मूर्छित हो गया। जब चैतन्य हुआ तो ब्राह्मण को प्रेम से [बु]लाकर बैठाया और इस प्रकार कहने लगा "हे मित्र! वही पतिव्रता स्त्री है जो पति से [स]च्ची प्रीति करती है। भले ही पति सेवा में उसे दुःख मिले फिर भी उसकी सेवा में [अ]धिकाधिक मन लगाती है। पति को सब तरह से भला समझती है और कष्ट का कारण [अ]पने बुरे कर्मों को बताती है उसे पति के सब काम हितकारक जान पड़ते हैं। उसके [अ]हित पूर्ण कार्यों को वह मन में नहीं धरती और जानकर दृष्टि उसको अच्छी नहीं [ल]गती। और सुनो, उस स्त्री में वे सब बातें थीं जो उसके पति को भाती थीं। वह [सु]कुमार बड़े दुःख में थी इसलिये उसके दुःख को जब पति नहीं देख सका तो [छो]ड़कर चला गया। परंतु इस संसार में वे विरली स्त्रियाँ हैं जो दुःख पाकर भी दुखी नहीं होतीं। पतिव्रता वही हैं जो पति के कष्ट ही आने पर कष्ट नहीं होतीं प्रत्युत उसके [क]ष्ट होने पर उन्हें उसी में रस आता है।' ब्राह्मण ने नल का कथन संदेश के उत्तर रूप में पाया। वह नल को अपने स्थान पर ले गया और उसका परिचय पूछा। नल ने कहा "मेरा नाम बाहुक है। यहाँ राजा की सेवा में रहता हूँ। मैं शालिहोत्र विद्या जानता हूँ इसलिये राजा ने अपने घोड़ों की देख रेख और सम्हाल करने के लिए मुझे नियुक्त किया है। इसके अतिरिक्त राजा के चित्रकारों को चित्रांकन करना सिखाता हूँ और पाक विद्या में प्रवीण होने के कारण राजा के लिए अनेक प्रकार की रसोई तयार करता हूँ। राजा मेरी सेवा से प्रसन्न रहता है और मुझसे प्रेम करता है। ब्राह्मण संदेश का उत्तर पाकर सीधे कुंडनपुर आया और राजा तथा दमयंती को उसने समस्त वृत्तांत सुनाया। दमयंती ने बाहुक के रूप रंग के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने रंग बहुत ही काला बताया और कहा कि संभवतः वियोगाग्नि में जल कर वह काला हो गया है। दमयंती को विश्वास हुआ कि बाहुक ही राजा नल है। वही शालिहोत्र विद्या जानता है और

गई कि यह कोई राजरानी है। उसने उसका स्वागत सत्कार किया और वाटिका में टिकने का स्थान दिया तथा अपनी पुत्री को साथ रहने के लिए भेज दिया।

उधर नल दमयंती को छोड़कर चला तो गया पर दमयंती का विरह उसे सताने लगा। उसके बिना वह व्याकुल होकर फिरने लगा। फिरते फिरते ऐसे वन में पहुँचा जहाँ दावाग्नि लगी हुई थी। वहाँ कोई उसको पुकार पुकार कर कह रहा था —नल तुम धर्मात्मा, गुणी और ज्ञानी हो, जरा मेरे पास आकर एक बात सुन लो। नल ने यह सुनकर दृष्टि दौड़ाई तो एक सर्प को जो उसका नाम पुकार रहा था—दावाग्नि में पड़ा देखा। उसकी बात मानकर वह उसके पास गया। सर्प ने कहा, मैं पापी हूँ। मुझे अपने कर्मों और ब्राह्मण के शाप से यह गति मिली है। मैंने एक ब्राह्मण को अकारण डसा था जिसने मुझे एक ही जगह पर स्थिर रहने का शाप दिया। इसलिये मैं हिल डुल नहीं सकता। इधर यह अग्नि काल रूप होकर मेरी ओर बढ़ रही है। आप मुझे इससे बचाइए और सुरक्षित स्थान पर ले जा कर रख दीजिए। यदि आपने इस बार मुझे बचा लिया तो मैं सदा के लिये अमर हो जाऊंगा। नल के हृदय में सर्प के प्रति दया उत्पन्न हुई और उसने उसको उठाकर अग्नि से बाहर कर दिया। जब छोड़ना चाहा तो सर्प ने दस कदम गिनते हुए चलकर छोड़ने के लिये कहा। नल ने वैसा ही किया; परंतु 'दस' कहने पर सर्प ने उसे डस लिया। सर्प के डसने से नल के सारे शरीर में विष व्याप गया और उसका रंग काला पड़ गया। नल ने कारण पूछा तो सर्प ने कहा "मैंने आप के साथ धोखा नहीं किया है। इस समय आप कठिनों के फेर में पड़े हैं। और यह दशा कुछ दिनों तक बनी रहेगी। आप राजा हैं और सारा संसार आपको जानता है। कोई शत्रु इस स्थिति में आपको दुःख दे सकता है। इसलिये मैंने आपके रूपको छिपा लिया है जिससे कोई आपको पहचान न सके। जब आपके कुदिन टल जायेंगे तो आपके स्मरण करने पर मैं प्रकट हो जाऊंगा और अपने विष का शोषण कर लूंगा। आप का रंग फिर ज्यों का त्यों हो जाएगा। इसके अतिरिक्त यह विष आपकी रक्षा करेगा। इसके प्रभाव से आपके निकट न तो कोई शत्रु आएगा और न युद्ध में कोई आपसे जीत ही सकेगा। अब आप अपना नाम बाहुक रख सीधे राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या चले जाइए। राजा ऋतुपर्ण जुआ खेलने की विद्या जानते हैं। आप उनकी सेवा करके वह विद्या प्राप्त करें। जुआ का मर्म जान लेने पर फिर उसी खेल द्वारा आप अपना गया हुआ राज्य वापस पाएंगे और यह दुःख फिर आपके लिये स्वप्न हो जाएगा।" यह कहकर उसने नल को दो कंचुलियाँ यत्नपूर्वक रखने के लिये दीं और कहा कि ये अग्नि स्वरूप हैं। समय आने पर ये उसके तेज को पहले जैसा कर देंगे। नल सर्प के उपदेशानुसार सीधे अयोध्या पहुँचे और वहाँ राजा ऋतुपर्ण के सारथी बन कर रहने लगे।

कुंडनपुर में जब नल दमयंती के वनवास का समाचार पहुँचा तो राजा भीमसेन और रानी राजमती बहुत शोकाकुल हुए। उन्होंने शीघ्र ही नल दमयंती की खोज करने के लिये चारों ओर ब्राह्मणों और भाटों को भेजा। राजा नल का पता तो न चला, पर सुदेव नामक ब्राह्मण ने चंदेरी के राजमहल में दमयंती को देख लिया। बात प्रकट हो

आने पर चंदेरी की रानी दमयंती से प्रेम पूर्वक मिली। उसने दमयंती को बताया कि उसकी माता और वह सगी बहनें हैं इसलिये वह उसको पुत्री के समान है। वह दमयंती के दुःख को देखकर बहुत दुःखी हुई और उसे उसकी इच्छानुसार राज साज के साथ कुंडनपुर भेज दिया। दमयंती के कुंडनपुर पहुँच जाने पर सबको बड़ा हर्ष हुआ पर दमयंती को उससे कुछ सुख नहीं मिला। वह नल के विरह में घुलने लगी। उसके दुःख को देखकर राजा और रानी बहुत चिंतित हुए। उन्होंने नल को ढूँढने के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मण पहले दमयंती से मिले। दमयंती ने उन्हें नल के चिह्न बताए और चादर दिखाकर नल के कार्य का परिचय दिया। उसने कहा "जहाँ जहाँ जाओ वहाँ-वहाँ कहना कि एक पुरुष दुःख से दग्ध स्त्री को वन में सोती छोड़कर चला गया। उसकी चादर को भी आधी फाड़कर ले गया। ऐसा निठुर कि जरा भी द्रवित नहीं हुआ। उसके तन मन और हृदय को वज्र की ही तरह चीर कर चला गया।" उसने कहा यदि इन बातों से कहीं डेरा डाले किसी पुरुष का पता चले तो समझ जाना कि वही निठुर नल है। ब्राह्मणों के हृदय में भी दमयंती की पीड़ा से बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। वे उसका मर्मभेदी संदेश लेकर चले और उसे वन-वन नगर-नगर कहते हुए नल को ढूँढने लगे। उनमें से एक ब्राह्मण अयोध्या भी गया और घर घर गली-गली वही बात सुनाने लगा। वह फिरते फिरते वहाँ निकला जहाँ नल रहता था। नल ब्राह्मण के मुख से मर्म संदेश सुनते ही मूर्छित हो गया। जब चैतन्य हुआ तो ब्राह्मण को प्रेम से बुलाकर बैठाया और इस प्रकार कहने लगा "हे मित्र! वही पतिव्रता स्त्री है जो पति से सच्ची प्रीति करती है। जैसे ही पति सेवा में उसे दुःख मिले फिर भी उसकी सेवा में अधिकाधिक मन लगाती है। पति को सब तरह से भला समझती है और कष्ट का कारण अपने बुरे कर्मों को बताती है उसे पति के सब काम हितकारक जान पड़ते हैं। उसके अहित पूर्ण कार्यों को वह मन में नहीं धरती और भावुक दृष्टि उसको पसंद नहीं लगती। और सुनो उस स्त्री में ये सब बातें थीं जो उसके पति को भाती थीं। वह सुकुमार बड़े दुःख में थी इसलिये उसका दुःख जो बाद पति नहीं देख सका तो छोड़कर चला गया। परंतु इस संसार में वे विरली स्त्रियाँ हैं जो दुःख पाकर भी दुःखी नहीं होतीं। पतिव्रता वही हैं जो पति के रुष्ट हो जाने पर रुष्ट नहीं होतीं प्रत्युत उसके रुष्ट होने पर उन्हें उसी में रस आता है।" ब्राह्मण ने नल का कथन संदेश के उत्तर रूप में पाया। वह नल को अपने स्थान पर ले गया और उसका परिचय पूछा। नल ने कहा "मेरा नाम बाहुक है। यहाँ राजा की सेवा में रहता हूँ। मैं शालिहोत्र विद्या जानता हूँ इसलिए राजा ने अपने घोड़ों की देख रेख और सम्हाल करने के लिये मुझे नियुक्त किया है। इसके अतिरिक्त राजा के विभागों को निरीक्षण करना सिखाता हूँ और पाक विद्या में प्रवीण होने के कारण राजा के लिए अनेक प्रकार की रसोई तैयार करता हूँ। राजा मेरी सेवा से प्रसन्न रहता है और मुझसे प्रेम करता है।" ब्राह्मण संदेश का उत्तर पाकर सीधे कुंडनपुर आया और राजा तथा दमयंती को उसने समस्त वृत्तांत सुनाया। दमयंती ने बाहुक के रूप रंग के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने रंग बहुत ही काला बताया और कहा कि संभवतः वियोगाग्नि में जल कर वह काला हो गया है। दमयंती को विश्वास हुआ कि बाहुक ही राजा नल है। वही शालिहोत्र विद्या जानता है और

चित्र तथा रसोई बनाने की कला में भी वह प्रवीण है। उसके रूप रंग ने उसको कुछ भ्रमित अवश्य किया, पर उसका विश्वास डिगा नहीं। उसका हृदय उससे मिलन के लिये उद्विग्न हो उठा। वह माता के पास गई और उसकी संमति से उसने नल को कुंडन पुर लाने का उपाय सोचा। उसने सुदेव ब्राह्मण को बुलाया और उसे अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को यह समाचार सुनाने के लिये कहा 'नल खो गया है उसका कहीं पता नहीं लगा। इसलिये उसकी स्त्री दूसरा विवाह करना चाहती है। विवाह मुहूर्त प्रातः ही है। जो प्रातः कुंडनपुर पहुँचेगा उसको दमयंती पति के रूप में वरेगी।' उसने सुदेव को अपनी योजना बताई और कहा कि यदि नल सचमुच राजा ऋतुपर्ण के यहाँ होगा तो एक ही दिन में रथ लेकर कुंडनपुर आयेगा। सुदेव ने अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को उक्त समाचार सुनाया। राजा ने समाचार सुना तो उसके हृदय में दमयंती को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जगी। वह शीघ्र से शीघ्र कुंडनपुर पहुँचने की उतावली करने लगा। उसने तुरंत बाहुक को बुलाया और उसे दमयंती के विवाह का समाचार सुना दिन डूबने के पहले ही रथ द्वारा कुंडनपुर पहुँचाने के लिये कहा। बाहुक दमयंती के निश्चय को सुनकर पहले तो हक्का बक्का रह गया पर फिर यह समझकर कि संभवतः उसने मुझे ही बुलाने का उपाय रचा है उसका दमयंती पर फिर विश्वास जमा। उसने तुरंत सम्हल कर राजा से कहा कि वह दिन डूबने के पहले उन्हें अवश्य कुंडनपुर पहुँचा देगा। उसने तेज चलने वाले घोड़ों को रथ में जोता और राजा को बिठाकर रथ कुंडन पुर की ओर ले चला। उसके हाँकने से घोड़े पवन वेग के समान चल पड़े और रथ से मेघ गर्जन की सी ध्वनि उत्पन्न हुई। राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे नल की प्रशंसा करने लगे। इसी समय राजा के कंधे से दुपट्टा खिसककर नीचे गिर पड़ा। उन्होंने बाहुक को 'दुपट्टा गिर गया' कह कर तुरंत रथ ठहराने का आदेश दिया। बाहुक ने दुपट्टे के सात कोस पर छूट जाने की बात बतला बहेड़ा वृक्ष के पास रथ ठहरा दिया। राजा को जब रथ की गति विदित हुई तो बाहुक से बोले बाहुक! इसमें संदेह नहीं कि तुम बड़े गुणी हो; परंतु मैं भी अद्भुत गुण का मर्मी हूँ। सामने जो बहेड़े का वृक्ष दिखाई देता है उसमें जितने फल फूल और पत्तियाँ हैं तथा जितने पके-अधपके फल हैं एवं उनमें से जितने जमीन पर गिरे हुए हैं मैं उन सबका अलग-अलग लेखा बतला सकता हूँ। बाहुक यह जानने के लिये बड़ा उत्सुक हुआ और उसने राजा से लेखा पूछा। राजा ने सबका अलग-अलग लेखा बतला दिया। बाहुक ने वृक्ष उखाड़कर गणना की तो लेखा सत्य पाया। उसने राजा से यह विद्या उसे सिखा देने और बदले में उससे शालिहोत्र विद्या लेने की प्रार्थना की। राजा ने उसे अपनी विद्या सिखादी। उस विद्या को प्राप्त करने के पहले बाहुक को द्यूत विद्या सीखनी पड़ी। इसलिये जैसे ही वह विद्या प्राप्त हुई वैसे ही उसे कलियुग दिखाई दिया। कलियुग नल के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और उससे क्षमा याचना के लिये अनुनय विनय करने लगा। उसने कहा कि उसे दुष्कर्मों का फल मिल गया। पतिव्रता दमयंती ने दुर्दिन में पड़कर उसे इस प्रकार शाप दिया था "जिसने मेरे साथ अकारण ऐसा बैर ठाना है और मेरे पति को जोगा जोग किया है, वह भी हे विधाता! सुख की छाया में न बैठे। उसका भी गृह छूट जाय, वह

वनवास करे और उसका मुख मंदिर छोड़कर धरती में मिल जाय।" कलियुग ने कहा कि इस शाप का प्रभाव उस पर व्याप्त हो गया है। उसकी आदि ठौर नष्ट हो गई है। जिस बहेड़े के वृक्ष पर वह रहता रहा, वह उसके द्वारा कट कर धराशायी हो गया और वह पूर्ण रूप से उसके वश में है। नल को कलियुग पर दया आई और उसने उसको क्षमा कर दिया। पश्चात् कलियुग चोला त्याग कर चला गया और नल भी राजा ऋतुपर्ण सहित तीसरे पहर रथ लेकर कुंडनपुर जा पहुँचा। रथ की आवाज सुनकर दमयंती पति को देखने के लिये राजमहल की छत पर गई। परन्तु सब लक्षण घटित होने पर भी रंग रूप को न देख वह नल को बाहुक के भेष में नहीं पहचान सकी। उसके सामने यह समस्या अकल्पनीय रूप में उपस्थित हुई और वह भ्रम में पड़ गई।

उधर राजा भीमसेन को जब राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार मिला तो उन्होंने उनका स्वागत किया और उन्हें भवनसार में टिकाया। राजा ऋतुपर्ण ने देखा कि यहाँ विवाह की कुछ भी तैयारी नहीं हो रही है तो वे घबराए और बड़े विचार में पड़े। राजा भीमसेन को जब विदित हुआ कि राजा ऋतुपर्ण उसी दिन अयोध्या से चले हैं तो वे भी सोच में पड़े। उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से शीघ्रता से आने का कारण पूछा। राजा ऋतुपर्ण के मुख पर पहले संकोच और लज्जा के चिह्न झलके, परंतु तुरंत अपने को सम्हाल कर उत्तर दिया कि 'वे केवल दर्शनों के लिये आए हैं'। राजा भीमसेन ने इस पर कृतज्ञता प्रकट की और उनका बड़ा सत्कार किया।

दमयंती ने नल का समाचार जानने के लिये गुप्तचर भेजा और स्वयं महल की छत पर से कान लगाकर सुनने लगी। चर ने बाहुक से उसका और उसके साथियों के नाम पूछे तथा रथ स्वामी के विषय में बतलाने को कहा। बाहुक ने कहा। "रथपति अयोध्या नरेश" राजा ऋतुपर्ण हैं। वे दमयंती के द्वितीय वर वरण करने का समाचार पाकर आए हैं। मेरा नाम बाहुक है और मैं राजा का सारथी हूँ। साथियों के नाम क्रमशः वारसुतो और जीवल हैं, ये सामान की देख रेख करते हैं।" चर ने वारसुतो से, जो पहले नल का सारथी था और उसके पुत्र पुत्री को कुंडनपुर पहुँचाकर अयोध्या चला गया था, नल का समाचार पूछा। परन्तु वारसुतो के कहने के पहले ही बाहुक बोल उठा। उसने पूछा, "क्या नल की रानी इसी जगह रहती है? यह बात यह लोग जानना चाहते हैं इसलिए पूछता हूँ। फिर वारसुतो जिस गाँव को देखता है वहाँ नल अवश्य होगा। इस समाज से वह बाहर नहीं है। यदि वह है तो इसी रथ में है। वह जिसके हृदय में रहता है वही उसको पहचान सकता है। हृदय के मन को देखकर उसे पर प्रमाण माना जाने। जो उसे (वास्तविक) वर्ण में देखना चाहेगा वह ढूंढ़ ढूंढ़ कर थक जाएगा पर उसे नहीं पा सकेगा। मर्म समझते हुए जो खोज करेगा वह पा जाएगा। जो वास्तव में भेद लेना जानता है वही उस पुरुष को पहचान सकता है।' चर ने बाहुक को मर्मी और ज्ञानी समझा। उसे विश्वास हुआ कि यह या तो स्वयं नल है अथवा यह नल के विषय में जानता है। उसने बाहुक से उस पुरुष के विषय में जो अपनी जानकारी बताने के लिये पूछा जिसने अयोध्या में घूमते हुए उस ब्राह्मण से बातें की थीं जो कहता फिरता था कि "वह कौन पुरुष है जिसने पतिव्रता स्त्री को उसकी साड़ी और चादर

चीर कर तज दिया। वह बड़ा ही निठुर है उसे जरा भी पीड़ा नहीं हुई। वह निर्दय उस सोती हुई को छोड़कर चला गया।" इस बात ने नल के हृदय को मानो चीर दिया। उसमें पहले की जो दरार थी वह नई होकर फिर पीड़ा देने लगी। प्रेमाग्नि ने उस घाव को फिर सेंकना आरम्भ किया। हँसता हुआ मुख रखते हुए भी उसकी आँखें लाल हो गईं और उनसे अश्रुधाराएँ निकल पड़ीं। वह फिर बोला, 'हे मित्र! तुम वह पुरुष भी हमीं में है। वह या तो मैं हूँ या वह मेरे संग ही है। दूसरी जगह कहीं नहीं है।' इतना सुनते ही वह घर सीधे दमयन्ती के पास आया और उससे बाहुक की सब बातें ब्योरेवार कह सुनायीं। फिर मैं दमयन्ती से कहा 'बाहुक को ही प्रीतम समझो। मैं उसके हृदय में प्रेम की पीड़ा पाता हूँ। उसमें विरहाग्नि भरी हुई है। ऊपर से देह काली पड़ने का कारण यह है कि वह विरहाग्नि से दग्ध हो चुकी है। उसके बोलने में अग्नि की लपटें ऐसी निकलती हैं मानो उसका मुख मुख न होकर अग्नि की भट्ठी न मुख बोलता हो। वह तुमसे बातें बहुत करता है और उसका मन तुम्हीं में लगा रहता है। अन्त में जब तुम्हारा नाम सुना तो उसकी आँखों से रुधिर की धाराएँ बह चलीं। वह निश्चय ही तुम्हारा पति है। समय रहते उसे पहचान लो। उसके चले जाने पर फिर रोना होगा।' दमयन्ती ने कहा 'हे भाई! मैंने भी बातें सुनकर प्रियतम को पहचान लिया है। परन्तु उस को सब तरह से दूर कर देना अच्छा है जिससे पीछे पछताना न पड़े। इसलिए भोजन की सामग्री और रीते घड़े लेकर बाहुक के पास जाओ। यदि वह नल होगा तो बिना जल और अग्नि के रसोई तैयार कर लेगा। नल के देखते ही खाली घड़े पानी से भर जाते हैं और उसके स्मरण करते ही अग्नि भी जलने लगती है। इसके अतिरिक्त कुछ सुगन्धियुक्त फूल लेजाकर उसके हाथ में देना। यदि हाथ से मसलने पर फूल ज्यों के त्यों प्रफुल्ल और सुगन्धियुक्त बने रहें तो बाहुक निःसन्देह नल के अतिरिक्त और कोई नहीं।' वह मनुष्य तत्काल फूल जलरहित घड़ा और रसोई का सामान लेकर बाहुक के पास गया। बाहुक उन्हें देखते ही बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझ लिया कि यह सब उसकी परीक्षा के लिए भेजा गया है। उसे प्रिय का मिलन निकट दिखाई दिया। उसने पहले फूलों को लेकर हाथ से मला तो उनके तेज रंग और सुवास में और वृद्धि हो गई। देखने वाले आश्चर्य करने लगे। फिर उसने खाली घड़े की ओर देखा, वह पानी से भर गया। तत्पश्चात् बरतन के अग्र में चमक जल उठा और सुवास का संचार कर उसे हाथ में लिया तो तत्काल पकवान आकर भोजन भी तैयार हो गया। फलतः यह परीक्षा सब तरह उसकी साक्षी बन गई। वह मनुष्य भोजन के बरतन को लेकर दमयन्ती के पास वापस आया और उसे बरतन देकर जो कुछ देखा वह वर्णन कर सुनाया। दमयन्ती ने पहले भोजन को छुआ और फिर प्रेम से उसे खाया तो उसमें सुगन्धि रस और मिठास आदि सब वैसे ही पाए जैसे नल के बनाए भोजन में रहते थे। इस पर उसे निश्चय हो गया कि बाहुक ही उसका पति है। उसने अपने बालकों को भी उसके पास भेजा। बाहुक ने उन्हें दौड़कर गले लगा लिया और रोने लगा। राजा ऋतुपर्ण यह देख रहे थे। उन्होंने बाहुक से उन बालकों का परिचय पूछा। बाहुक ने कहा 'महाराज! इन्हीं बालकों के समान मेरे दो बालक थे जिनका स्मरण कर मैं रो उठा हूँ।' दमयन्ती ने जब इसका भी परचा पाया तो उसे बाहुक के प्रति

होने में पूर्ण विश्वास हो गया और वह तुरंत माता के पास गई। उसने माता को पति के आने का समाचार दिया और जिस जिस प्रकार पति की परीक्षा की वह भी सब सुनाया। माता ने उसी क्षण दूत भेजकर बाहुक को बुलाया। दमयंती बाहुक के सामने जाकर सीधी खड़ी हो गई। नल की दृष्टि जैसे ही दमयंती की दृष्टि से मिली वह रोने लगा। उसके आँसू निकलते समय गरम दिखाई दिए और गिरते समय ठण्डे। यह नल में विशेष बात थी। दमयंती ने जब यह भेद भी पाया तो वह जोर से रो उठी। वह बोली, "प्रियतम! मुझे वन में छोड़कर तुमने जैसा किया वैसा कोई नहीं करता। संग रहते भेद उत्पन्न किया और जिस मिलन की सदा इच्छा रहती है उससे अलग हो गए। दूर भी होते हैं तो परीक्षा नहीं होती। बिछुड़े हुए मिलन हो जाने पर फिर गले लगते हैं। सचमुच, मैं इस मिलन के कारण मारी गई। मैं तुमसे जुड़ी हुई थी, पर तुमने अलग किया। सुना है कपटी लोग मिलन में भी अलग रहते हैं। हे कंत! तुम्हें भी मैंने वैसा ही देखा। बताओ कौनसा हित सोचकर पहले भूमि पर बिछौना बिछाया और मुझे गले से लगा सुलाया फिर सुख निद्रा में छोड़ विछोह किया। क्या मिलन में कोई ऐसा करता है? यदि मैं जानती कि मुझे कपट से सुलाकर तुम स्वयं अलग हो रहे थे तो मैं किस लिये सोती और किस लिये तुम जैसे रत्न को खोती। तुमने मुझे कंठ से लगाकर सुलाया, पर मन में गाँठ धरे रहे। फिर भी जाने दो वह बात बीत गई। अब तो मिलो। क्या अब भी वह गाँठ नहीं खोलोगे।" नल ने कहा "हे सुन्दरी! यह सब प्रारब्ध वश हुआ। प्रारब्ध कभी नहीं मिटता। उसका भोग करना पड़ता है। जो कुछ किया प्रारब्ध ने किया। उसी के कारण अन्त में कलियुग को बीच में डाला जिससे विछोह हुआ। अब दिन फिर लौट आए हैं। वह कलियुग मित्र बन गया है। परन्तु तूने तन के लिये विछोह माना नहीं तो मैं तुझमें ही समाया हुआ हूँ। क्षण भर के लिए भी तुझसे अलग नहीं हुआ, भूल से तेरे ही मन में भ्रम उत्पन्न हुआ है। तूने ही अपने मन में गाँठ डाली है जिसके कारण मुझसे संबंध विच्छेद कर देह से सम्बन्ध जोड़ा है। देह सुख के लिए तूने मुझे भुला दिया है और वर बुलाकर वरण किए हुए को खो दिया है। हे दमयंती तेरे देह का पति दूसरा पुरुष है, पर मैं तेरे हृदय का स्वामी हूँ इसलिये देह की तरह अपना हृदय भी मुझ से न कर।"

दमयंती नल का उत्तर सुनकर बहुत विकल हुई और बोली '—हे स्वामी मैंने तुमसे सम्बन्ध नहीं तोड़ा है वरन् सबसे उदासीन होकर तुमसे ही नाता जोड़ा है। देह का सुख मैं कुछ नहीं गिनती। अपना तन मन और प्राण सब आप तुम्हीं को समझती हूँ। तुम्हें बुलाने के लिये ही व्याज का आयोजन किया। एक दिन में सौ योजन की गति से रथ चलाने की कला केवल तुम्हीं जानते हो। इसलिए यह सोचकर कि यदि तुम अयोध्या में ही तो रथ द्वारा एक ही दिन में यहाँ पहुँचोगे। फिर भी, यदि तुमने अपने मन में ऐसा ही समझ लिया है तो मैं सूर्य और चन्द्रमा साक्षी भरेंगे तथा मेरी देह के सभी— पृथ्वी पवन अग्नि और वरुण भी भ्रम का निवारण करेंगे।" दमयंती के एसा कहते ही तत्क्षण अग्नि, पवन और वरुण देह सहित प्रकट हुए उन्होंने उसके सत की साक्षी दी। इससे नल को परम संतोष हुआ और उसने दमयंती को शृंगार करने के लिए कहा।

स्वयं भी उसने सर्प का स्मरण किया। सर्प तत्काल प्रकट हुआ और उसने उसका विष उतारा तथा कंचुकी पहना कर उसे पूर्व रूप में ज्यों का त्यों कर दिया। तत्पश्चात् नल और दमयंती आनन्द पूर्वक मिले।

राजा ऋतुपर्ण को जब नल दमयंती के मिलन का समाचार मिला तो वे उसी समय नल के पास गए और उससे अपनी अज्ञानता के लिये क्षमा मांगी। नल ने राजा ऋतुपर्ण की प्रशंसा की और उनकी उदारता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें अग्निहोत्र विद्या सिखाई। राजा ऋतुपर्ण कुछ दिन नल के साथ प्रेम पूर्वक रहकर फिर अयोध्या चले गए। तत्पश्चात् नल शीघ्र ही राजा भीम से बहुतसा धन और हाथी, घोड़े रथ तथा सेना लेकर कुंडनपुर से उज्जैन आया। उसने पुष्कर को जूए में हराकर अपना राज्य वापस ले लिया और फिर दमयंती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

## महाभारत की कथा से अंतर

महाभारत में बृहदश्व ऋषि और युधिष्ठिर के संवाद के रूप में नल दमयंती की कथा वन पर्व के अन्तर्गत अट्ठाईस अध्यायों (५२-७९) में वर्णन की गई है। उससे प्रस्तुत कथा में कई स्थलों पर अन्तर पाया जाता है —

प्रारम्भ का तो अधिकांश (दमयन्ती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) कल्पित है। इसमें पहली बात तो यह है कि हंसों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। महाभारत में हंस नल दमयन्ती के बीच प्रेम संदेश पहुंचाने का कार्य करते हैं और तत्पश्चात् लुप्त हो जाते हैं। प्रस्तुत कथा में हंसों के स्थान पर भाटिन की योजना की गई है। भाटिन रूप में अनूप और गायन में निपुण एवं चतुर्थ है। वह नल की सभा में प्रारंभ में ही प्रकट हो जाती है और पद्मिनी के विषय में चर्चा छिड़ते ही प्रमुख वक्ता का स्थान ग्रहण करती है। उसकी प्रथम वाक्यावलि के आगे सारे सभासद निस्तेज हो जाते हैं। पद्मिनी के परिचय से आरम्भ कर कुंडनपुर नगर, राजा भीमसेन रानी रत्नमती पद्मिनी स्वरूपा राजकुमारी दमयन्ती और हस्तिनी शंखिनी चित्रणी एवं पद्मिनी नामक स्त्रियों के विशद वर्णन द्वारा वह नल को मुग्ध करती हुई उसकी सुध बुध को उसे प्रेम पथ पर आरूढ़ करती है। इसके पश्चात् हंसों की तरह उसका भी कोई पता नहीं चलता। इससे स्पष्ट होता है कि स्वाभाविकता लाने के लिए भाटिन द्वारा प्रस्तुत किया गया विस्तृत विवरण कवि को अभिप्रेत था। हंसों द्वारा उनके पक्षी होने के कारण, वैसा वर्णन करना सम्भव न था एवं वह अस्वाभाविक होता। दूसरी बात यह है कि दमयन्ती को पद्मिनी के रूप में चित्रित किया गया है और उसकी अंगुलियों में अमृत बताया गया है जिसके आधार पर वन में मछलियों के जीवित होने की कथा कही गई है। महाभारत में ऐसा कुछ नहीं है। वहां दमयन्ती को अत्यन्त रूपवती बताया है मृतक मछलियों के जीवित होने की कथा उसमें नहीं है। तीसरा परिवर्तन यह किया है कि दमन ऋषि को राजधानी से चार कोस दूर वन में तपस्या करते हुए दिखाया गया है। राजा भीमसेन वहां उनके दर्शन को [illegible] जाते हैं और आशीर्वाद के अनन्तर फल प्राप्त करते हैं जिसके प्रभाव से रानी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न होती है। महाभारत के अनुसार

यद्यपि राजा के ही घर पर आते हैं। चौथा परिवर्तन यह है कि दमयन्ती के हृदय में नल का प्रेम सहसा उत्पन्न होता है। यह प्रेम का माहात्म्य दिखाने के लिये किया गया है।

कल्पितांश के पश्चात मूल कथा में प्रमुख रूप से निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

१—इन्द्र के साथ वरुण कुबेर और यम कुंडनपुर जाते हैं। महाभारत में कुबेर के स्थान पर अग्नि का उल्लेख है। इसी तरह इनके द्वारा नल को वरदान देने में भी हेर फेर है।

२—देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के भवन में पहुँचने पर नल को दमयन्ती ने पहचान लिया जिससे उसके प्रेम की महत्ता प्रकट होती है। महाभारत में ऐसा नहीं है। वहाँ नल अपना परिचय देता है।

३—दमयन्ती नल का रूप धारण किए हुए देवताओं को पहचानने में असमर्थ होने पर अखिल प्रभु की शरण में जाती है। महाभारत में दमयन्ती देवताओं से ही अपना वास्तविक रूप धारण करने के लिये प्रार्थना करती है।

४—बनजारों के स्वामी के समझाने बुझाने पर दमयन्ती उसके साथ चंदेरी चलती है। महाभारत में दमयन्ती स्वतः ही बनजारों के स्वामी के साथ चंदेरी चलती है।

५—नल का राजा ऋतुपर्ण को लेकर कुंडनपुर पहुँचाने पर दमयन्ती ने उसका समाचार जानने के लिये चर भेजा और उसकी परीक्षा के निमित्त उसी चर के हाथ फूल नमकरहित घड़ा और भोजन की सामग्री भेजी। महाभारत में केशिनी नामक दूती नल का समाचार लाने के लिये भेजी जाती है। उसमें फूल, घड़ा और भोजन सामग्री भेजने का उल्लेख नहीं है।

६—नल चर द्वारा बुलाए जाने पर जब दमयन्ती के सामने खड़ा हुआ तो रोने लगा। उसके आँसू आँखों में लाल और गिरते समय सफेद दिखाई देते थे। महाभारत में ऐसा स्पष्ट नहीं लिखा है।

७—नल को वास्तविक रूप में करने के लिये कर्कोटक सर्प उपस्थित होता है और उसके शरीर से विष का शोषण करता है तथा उसे दी हुई केंचुली पहनाता है। महाभारत में कर्कोटक के आने का उल्लेख नहीं है केवल केंचुली पहन कर ही नल अपने असल रूप को प्राप्त करता है।

इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे अंतर बहुत हैं पर वे नगण्य हैं। प्राचीन (ऐतिहासिक या पौराणिक) कथाओं को अपनी कल्पनानुसार काव्य रूप देने में कवि लोग स्वतंत्र हैं इसमें संदेह नहीं। परंतु एक स्थल पर कवि की उद्भावना विचित्र है। दमयंती की उँगलियों में अमृत होने की कल्पना बहुत शिथिल है। उस अमृत को स्वयं नल दमयन्ती ने न जाने कितनी बार चखा होगा। इस दृष्टि से उन्हें अमर हो जाना चाहिए था। इसके अतिरिक्त मरे हुए बनजारों के समूह को भी जीवित किया जा सकता था। इन बातों

को दृष्टि में रखकर कवि को कुछ न कुछ सामंजस्य बठाना चाहिए था। कहने का तात्पर्य यह है कि यह कल्पना अव्याप्ति दोष से ग्रसित है।

## सूफी विचारधारा

प्रस्तुत काव्य में सूफी विचारों का अनुकरण दो तरह से किया गया है। एक तो रचना प्रकार को लेकर और दूसरा प्रेम साधना को लेकर। यहाँ इनका क्रम से उल्लेख किया जाता है:—

### रचना प्रकार

१—सूफी प्रेमाख्यानकों की तरह प्रस्तुत काव्य भी अवधी में है। इसकी रचना भी दोहे चौपाई छन्दों में हुई है और इसमें भी अध्यायों या सर्गों का उपयोग नहीं किया गया है।

२—सूफी लोग कथा के पहले परमात्मा की स्तुति समसामयिक शासक की प्रशंसा पैगंबर की वन्दना और गुरु (पीर) का वर्णन करते हैं। इसमें भी ऐसा ही किया गया है। समसामयिक शासक (शाहजहाँ) और गुरु का वर्णन पीछे किया जा चुका है। परमात्मा की स्तुति वेदांत के आधार पर है। उसमें वेदांत पर स्थित अन्य दार्शनिक विचारों विशिष्टाद्वैत भेदाभेद और अद्वैत का भी उल्लेख मिलता है।—

जो कोउ कहै 'अंस' हौं ताको। एक रूप मेरो अरु वाको॥
तिहि अपनो अंसी कै जानो। विरमल अमल आप सौं मानी॥
—विशिष्टा द्वैत

जो कोउ दौउ कहै हौं सोई। जो मन चाहै भेद न कोई॥
तापर रीझि बहुत सुख मानै। अंतर मेटि आप सौं सानै॥

×                    ×                    ×

निज समुझौ तो एकौ सोई। साहब सेवक भेद न कोई॥
जड़ चेतन अतर कुछि नाहीं। सबै समाइ रहै ता माहीं॥
ज्यों जल माहि बुद बुदामयेक। है जल नाम और होई अनेक॥ मानि
—अद्वैत [दोहा-७

साहब (मोहम्मद साहब) धर्म का भी उल्लेख मिलता है —

जो ताको साहब कै मानै। ताहि यही सेवक कै जानै॥
[दोहा—७]

पैगंबर (मोहम्मद साहब) की वंदना भी सूफी रचनाओं में रहती है। पद्मावत में मोहम्मद साहब को परमात्मा द्वारा निर्मल ज्योति के रूप में उत्पन्न किया गया बताया गया है। प्रस्तुत काव्य में भी इसका अनुगमन करते हुए मोहम्मद साहब का तो नहीं, पर निर्मल ज्योति का वर्णन है। इसका 'मीत' शब्द से भी उल्लेख है जिसके गुण का कवि कथन करता है—

अब 'धुन' कथन 'मीत' के करौं । जिन्ह के प्रेम प्रताप निस्तरौं ॥
जबते प्रगट मोहि निसितारे । जग एते बेर्ड निस्तारे ॥
प्रथम 'निरमल यह जोति' उपाई । तिन्ह के प्रीत सब सिष्टि बनाई ॥
रसन एक प्रस्तुति बहु भेखा । तिनी सो की नाहिन कछु लेखा ॥
जाके पेम हिय महु मदमाते । ताके प्रीत प्रथमें रंगराते ॥
हीं मतहार मोष के बाफों । जिन्ह प्रताप प्रभु दरसन पामौं ॥
यों उन्ह प्रेम बिन मुक्ति न होई । बिन भूलौ भटकौ मत कोई ॥
[दोहा—१२

परंतु इस ज्योति को भुति में उल्लिखित ज्योति समझना चाहिए—

'तमेवोऽस्तुभस'

मंझदास ने भी 'परमजोति' के रूप में इस ज्योति का वर्णन किया है —

प्रथमहिं प्रगट पेम मउ 'परम जोति' जो आहि ।
रूप उपासन 'रूप निधि' निति कहत है चाहि ॥

—रूप मंजरी

गो० तुलसीदास जी ने भगवान् राम को 'प्रकाश रूप' और प्रकाशनिधि' कहा है जो इस 'निर्मल ज्योति' से भिन्न नहीं—

सहज 'प्रकास रूप' भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
× × ×
पुरुष प्रसिद्ध 'प्रकास निधि,' प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोई, कहि सिवँ नायउमाथ ॥

—बालकांड

कवि कहता है, यही ज्योति प्रेम का विषय है और इसके प्रेम के बिना मुक्ति संभव नहीं। जिसके हृदय को यह ज्योति प्रेम में मतवाला बनाती है या बनाना चाहती है वह पहले प्रीति में रंगता है। वल्लभों की प्रेमा भक्ति की तरह ही सूफियों का यह प्रेम है। मंझदास 'रंगीले प्रेम' द्वारा ही भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते हैं:—

जदपि अगम ते अगम अति निगम कहत है चाहि ।
तदपि 'रंगीले प्रेम' तेनिपट निकट प्रभु आहि ॥

—रूप मंजरी

तुलसी भक्तों के प्रेम के कारण अगुन (निरगुन) का सगुन ('सहज प्रकास रूप भगवान् राम) होना बतलाते हैं—

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

वही बालकांड

कहने का तात्पर्य यह है कि यह निमल ज्योति पद्मावत में वर्णित मोहम्मद साहब की जोति से भिन्न है। हाँ इतना अवश्य है कि इसका व्याख्यान मोहम्मद साहब

की वंदना के ढंग पर हुआ है। इसका कारण सूफियों विशेषतः पदमावत के रचना प्रकार का अनुसरण करना है। पदमावत में मोहम्मद साहब की वंदना इस प्रकार है:—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा॥
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग मारग चीन्हा॥
जौं न होत अस पुरुष उज्यारा। सूझि न परत पंथ अँधियारा॥
दोसरइँ ठाँव दई ओहिं लिखे। भए धरमी जो पाढ़त सिखे॥
जगत बसीठ दई ओहिं कीन्हे। दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हे॥
जइँ नहिं लीन्ह जरम भी नाऊँ। ताकहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ॥
गुन अवगुन बिधि पूछब होइहि लेख अउ जोख।
ओहु बिनउब आगे होइ करब जगत कर मोख॥१॥११॥

प्रेमसाधना

सूफियों का मत अनन्य प्रेम द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना है। समस्त संसार को व परमात्मामय देखते हैं। उनके इस सिद्धांत का आधार अद्वैत मूलक सर्वात्मवाद है जिसके आगे न तो अंधविश्वास ही टिकता है और न अंध परंपराएं ही रहती हैं लोक लज्जा के लिये भी कोई स्थान नहीं रहता। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में यह अद्वैत मूलक प्रेम भावना अप्रत्यक्ष रूप में रहती है। प्रेमाख्यानकों से भिन्न भावात्मक शैली में लिखे गए सूफी काव्यों में एकांतिक प्रेम की उदात्त व्यंजना पाई जाती है। हिंदी में मिरजा मुहम्मद खान की 'प्रेमलीला'[1] इस विषय की सुंदर कृति है। उसमें बाँसुरी द्वारा प्रियतम (परमात्मा) का विरह जगाया गया है। बाँसुरी बनवारी से बिछड़ कर विरह दुःख में रो उठती है। उसका रोना सुनते ही चराचर सृष्टि में खलबली मच जाती है। सब मोह निद्रा से जगते हैं और सबको प्रियतम की स्मृति होती है। फलस्वरूप वे सब भी प्रिय के विरह में रो उठते हैं:—

बाँसुरिया बिछुरन भइ भारी। बिछुरन दुख भइ रोइ पुकारी॥
जब वह रोइ बिछुर बनवारी। सुनि धुन रोये पुरुष अरु नारी॥
जस सौं बिछरि बँसुरिया रोई। मेरो मिलन बहुरि कब होई॥
कैसे मिलहुँ जीवन मेरो। रोत परै सब तबौं न टेरो॥
निकसि तीर सौं बाहर पड़ी। जल उलटी जल सूखी गड़ी॥
तरवर सौं जिमि पाती झड़ी। पौन की मारी इत उत पड़ी॥
विरह बियोग जिमि जाग कोई। जापर बीते जाने सोई॥
अपने प्रीतम लाल से मिलि बिछुरै जनि कोइ।
बिछुरन दुख सो जानहि जो कोइ बिछरा होइ॥

पाद टिप्पणी—
१ उमीदवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० स०) संख्या १२७।

बंसी की ध्वनि का संबंध नाद से है। नाद को हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म (ॐकार) का स्वरूप माना है। प्रणवनाद (ॐकार) से अनाहत (सूक्ष्मनाद) और आहत (स्थूलनाद) उत्पन्न हुए। आहत नाद से दो प्रकार के नाद निकले—जीव जन्य (शब्द) और जड़जन्य (ध्वनि) तथा इन प्रत्येक के अमधुर और मधुर करके दो दो भेद हैं। इस प्रकार जीव की तरह बंसी ध्वनि भी बनवारी (अथवा ब्रह्म, ॐकार) से बिछुड़ी हुई है, ऐसा भी समझना चाहिए। प्रत्यभिज्ञा अपने पर वह रो रही है। कहते हैं गोपियों के प्रति अभिमान दिखाने के कारण श्री कृष्ण की बंसी को भी उनसे प्रसन्न होना पड़ा। स्वामी हित हरिवंश जी को श्रीकृष्ण की बंसी का अवतार बताया जाता है। ऐसे ही और भी कई बंसी के अवतार कहे जाते हैं। सूफी लोग अपने 'प्रेम संगीत' को भी बाँसुरी से उपमा देते हैं:—

फिर अनुराग 'बाँसुरी' बाजी। सो अभिमान स्वास्त अपराजी ॥

—अनुराग बाँसुरी

वैष्णव भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण की बंसी की प्रसिद्धि तो है ही, संतों के षट्चक्र साधन क्रिया में भी इसका उल्लेख मिलता है। परंतु वहाँ कान्हा के द्वारा बजने के कारण यह मन को 'भूपाल' बनाकर निहाल कर देती है। त्रिकुटी से कुछ ऊपर की साधना क्रिया में प्रवृत्त होते ही बंसी की ध्वनि सुनाई देने लगती है।—

सोवी सोवी मनूआ सहज सुभाइ। एहि अवसर कान्ह मुरली बजाइ ॥
मुरली को धुनि सुनी मन भैरा हुलिआस। रहसी श्रीकृष्ण जनु भैसो सुखपास ॥
सुनो सुनी मनुआ ऊपर चली मेल। तहवाँ देखल एक अवधूत खेल ॥
सीना रची सती ताहा होला उजियार। रीमी झीमी मोतीआ बरीसु जलधार ॥*

—महराई पोसाई धरनीदास

अस्तु प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने बहुत से स्थलों पर अपना (वास्तविक) अर्थ छिपाया है जो सब किसी से नहीं पाया जा सकता। बहुत से लोग समुद्र को जहाजों द्वारा पार करते हैं परंतु मोती खोजने वाले समुद्र में ही धँसते हैं—

बहुत ठौर मिस अरथ दुरावा। सब काहू पै जाइ न पावा ॥
बहुत लोग बोहित चढ़े दधि पर आवहि जाहि।
मुक्ता पाव मरजिया धसि खोजै ता माहि ॥२७॥

इस काव्य में नलदमयंती के प्रेम के अतिरिक्त ज्ञान और व्यवहार धर्म का प्रतिपादन है। प्रथम के अनुसार नल के लिये दमयंती और दमयंती के लिये नल प्रेमस्वरूप परमात्मा के रूप में हैं। दोनों के हृदय में जब एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकट होता है तब दोनों मिलने के लिये व्याकुल होते हैं। परंतु लोक की अनेक कठिनाइयों

पाद टिप्पणी—

* अठारहवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० स०), संख्या ११४ ख।

के कारण सरलता से मिल नहीं पाते। इसलिए वे विरहाग्नि में तपने लगते हैं। यही विरहाग्नि उनकी साधना स्वरूप है। उनकी इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों से विरत हो जाती हैं। उन्हें न तो नींद ही आती है और न भूख प्यास ही लगती है। राग रंग से मन हट जाता है और विरक्तों की तरह संसार से कोई नाता नहीं रह जाता। उनकी चित्त-वृत्तियाँ एक दूसरे में एकाग्र हो जाती हैं। सत्त्व (सात्विक गुण प्रधान) प्रेम में उनकी इस एकाग्र (ध्यान धारणा और समाधि युक्त) स्थिति का सादृश्य गीता के निम्नलिखित श्लोक के संयमी में मिलता है —

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

इस प्रकार विरह के तीव्र वेग के कारण प्रलाप की स्थिति में दोनों अपने-अपने प्रेम को एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार व्यक्त करते हैं उससे प्रेम की लौकिकता अलौकिकता की ओर जाती हुई लक्षित होती है। यही अलौकिकता प्रस्तुत कवि का मुख्यार्थ है। इसमें प्रेम की अलौकिकता के साथ-साथ रहस्यमय सत्ता के प्रति भी इंगित रहता है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं —

## नल का विरह

[प्रेम का अलौकिक वर्णन और परमात्मा की ओर संकेत]

हौं जागौं तोहि लागि दमावति। तोहि सुख चैन नींद किन आवति॥
हौं मैं भवर भयौं बैरागी। तू सरोज सुख सर अनुरागी॥
हौं चातक पिउ पिउ रट मोरे। तू स्वाती भावै नहिं तोरे॥
मो मन चित चकोर बिन देखे। तू जो चंद तोर नहिं लेखे॥
मो मति ज्यौं मछरी बिन पानी। तू अपने पानी अभिमानी॥

[दोहा—१२२

× × ×

मो सौं बिनती पै जन आव। होइ सो वहै जो पिउ कौं भावै॥

× × ×

भौ पुनि यही बात कछु नाहीं। सब जग जीव बस तो माहीं॥
जाकों कृपा दृष्टि कर हेरसि। ताही के दुख दाह निबेरसि॥

[दोहा—१२१

× × ×

पेम समुद्र अथाह अपारा। तहाँ परै सो काठन हारा॥
नदी समाइ जाइ इक कोरा। का सिव बूँद करै तिहि कोरा॥

× × ×

पेम पहार अकास पराहीं। सिव घोला ना ऊपर ताहीं॥

[दोहा—१२

## प्रेम साधना-पथ

सो तो सुमत तुमहि पुहेसा । जिनहूँ न भयो पेम कर मेला ।।
उपज न हिये बिरह बैरागू । भयो न अगबहुं के पिछलागू ।।
तिन यह पंथ सगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन माना ।।
हौं सिर सीस चरन कर धाऊँ । पैग पैग चल चाव बढ़ाऊँ ।।
चलौं न बीच रैन दिन चलूँ । तौ लगि जौ लगि मीतहि मिलूँ ।।
ज्यों ज्यों चलूँ उपंथ त्यों होई । पेम पंथ पर चलै न कोई ।।
जो तन हार रहौं तजि जाऊँ । मन पग पिउ मग सौं न डिगाऊँ ।।

पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहि ।
कसक कलेज काढ़ही, मीर पु मगन माहि ।।१२६।।

× × ×

सोसैं एक ओर कै डार । तब दहुँ ओर आइ पग धारै ।।
पेम खेल महँ भावैं बाजी । सो खेलै जो हठ पर राजी ।।
यह ऐसो पुनि अचरज रीता । जो हारै जगहु तिन जीता ।।

पेम समुद्र अपार अति नाहि ओर नहि छोर ।
जो बूड़े सोई तिरै यही पेम रवि ओर ।।१२७।।

## सांसारिक भोगों से विरक्ति

हौं मत राज न मन न भाऊँ । जिहि सुख उरमितमीत बिसराऊँ ।।
जो पिउ नाम मिले पिउ सोई । तौ यह राज पुहुप पै होई ।।
नाहित पेम मविन तन वारीं । भूले राज जनम का हारौं ।।

हार जनम राजा भने, गए उधाइ निसान ।
त जीते कहुँ परै जूझ पेम मैदान ।।१२८।।

## [लोक लज्जा की उपेक्षा]

पुनि तुम यह सिच्छा मुख भाखी । जग देस महँ हास कहानी ।।

× × ×

डरौं न हास कलंक सौं, जो पेम रहै मन माहि ।
इहि आँसु परवाह जल जित कलंक ठहराहि ।।१३२।।
पुनि तुम यह बोलैं सिख जानो । राजन्ह महँ होइ है अपमानो ।।

× × ×

भूप मान ए मान सब काया कै सनमान ।
मान कियो मैं मान सौं रीझ पेम अपमान ।।१३३।।

× × ×

[प्रिय खोज (मिलन) की कठिनाई]

यही रजाई अँध कुवारा । सब कर तहाँ कहाँ पैसारा ॥
करहि हारमानक कठिनाई । आयसु बिना पवन न दुराई ॥
कै सो काहि जो ग्याता होई । जिहि की राजहि भेद न होई ॥
ग्यातहि जात अटक कछु नाहीं । जो चरचे अपने घर जाहीं ॥
कै सो काहि जिहि आप बुलावै । पेम वसीठ होइ पहुँचावै ॥
जो जदपि पहुँच उतकोई । तौ पावन पुनि उलटि न होई ॥
हेरि रूप यह जाइ हिराई । तिहि मिल आपा देइ गवाँई ॥
इहै कठिन खोज पिउ केरा । कोउ न फिरा जिनहिं मुख हेरा ॥
काहि पठाऊँ पीउ पहँ जो वो जिउ सो होइ ।
एक पीउ के देह बिनु पीउ न पावै कोइ ॥११७॥

[ध्यान की एकाग्रता और सहज स्वरूप दर्शन]

सांची प्रीत न रहै दुरानी । जिम जातों लाई तिम जानी ॥
तन यह लिखि मान भी प्यारा । सो एकइ को जानन हारा ॥
जो पुनि प्रबल प्रीत जब होई । तब तिनहूं महं भेद न कोई ॥
अंतर दोनों देह दिखाई । दोनों में तू बीच नचाई ॥
उनमें आप न अन्तर कोई । तन भी प्रान सा एक होई ॥
तन सब ताहि प्रानन महं प्रतन सबै तन माहं ।
यही प्रतन तन मे बसो प्रतन दुतिय पुनि नाहं ॥११८॥

ध्यान की एकाग्रता सिद्ध हो गई तो प्रेम साधना भी सिद्ध होगई । फलस्वरूप प्रियतम का दर्शन या तो उसी समय हुआ समझिए और यदि नहीं तो उसमें नाम मात्र का विलंब समझना चाहिए । जब 'अति प्रबल अवस्था' हो जाती है तो 'दरशा होने में कोई संदेह नहीं रह जाता'—

जब अति प्रबल अवस्था होई । तब दरसन संदेह न कोई ॥
कहु को दुखी जो पेम दुख जिन दुख पिय का सेइ ।
हँस मिले प्रीतम निकट पीर बिना कहुं देई ॥११९॥

इसीलिये नल की प्रेम साधना अंतिम सीमा तक पहुँच गई तो उसे स्वयंवर में जाने का *निमंत्रण मिला ।*

दमयंती का विरह

[प्रेम साधना की गंभीरता]

सुरत ध्यान पिउ सौं अनुरागी । जागे करे विरह बैरागी ॥
प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छाँड़ि भई हौं तोरी ॥
अब लगि विरह बान मैं सहे । रोमहि रोम पैठि तन रहे ॥
अब लागें तो प्रान लै जावें । पिउ अकुलाइ कहाँ तन त्यागे ॥

जदपि जीउ तन त्यागि क, वेग मिलै तोहि आइ ॥
पै मन चाव कि तो मधुप जीउ तो माहि समाइ ॥१५५॥

पिउ मिउ तू तो बिन कल नाहीं । मोहि जिउ को संसा कछु नाहीं ॥
यह जब सब तो सों मिल रहा । कबहूँ अनमिल जाइ न कहा ॥
मिल जिय धाम अतम तन तोरा । यह मम भूल कहै जिउ मोरा ॥
तिन कारन बिनती हौं करौं । हा हा खाइ सीस भुइँ धरौं ॥
तन तोहि लागि बहुत दुख पावा । अन रंग रस सबहिं पवाँवा ॥
× × ×
बिरह रोग सिर बहुत चढ़ावा । ताहु पै मित कर सतावा ॥
प्रीतम बिन तू तन मनम, सदा रहै दुख पास ।
बिरह त्रास दुख तन सहै सोई जाइ निरास ॥१५६॥

[परमात्मा की ओर संदेस]

पंथ सत्रु हौं एकली जूझउ हौं इन माहु ।
धाइ धरै पिउ तोहि भजूं, को राखो गहि बाहु ॥१६१॥

हौं अनाथ कछु होय न मोसों । जो कछ होइ नाथ सब तोसों ॥
मोसों नहिं पेम दुख भरना । नाउँ तिहारो सुमिरन करना ॥
यह बल नाहिं कि तुम पहँ आऊं । जिनि कै तन की तपत बुझाऊं ॥
तुमहीं प्रगट होहु जो आई । आपा प्रान देहु बिसराई ॥
तबही पिउ दरसन हौं पाऊं । इन सत्रुन सों आप छुड़ाऊं ॥
महाराज तुमसों सब होई । तुम कहँ बरजनहार न कोई ॥
तुम अपने सत्रुन क बरता । सब करि सकै आप जो करता ॥
जो तुम आइ कपहु बट फेरा । कहो तुम्हें कौने धौं घेरा ॥
दोहा—१६२

× × ×
औ इहि में कछ दोस न मोरा । जो कछु करै सो वह चित चोरा ॥
छिन छिन धाव धाव पर लाव । हिरिदै अगोचर बान चलाव ॥
चातक बहै धनुक गुनि सोई । आपहि बान और नहिं कोई ॥
आपहिं बेधि घाव उर करै । आपहि तहाँ लोन होइ परै ॥
दोहा—१६६

[संसार और लोक लज्जा का त्याग]

प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छाड़ि भई हौं तोरी ॥
दोहा—१५५

× × ×
प्रीतम काज लाज न कोई । रोइ रोइ संमुख सब खोई ॥
× × × ×
जो पिउ लागि लाज नै जाई । जाहु निलज मोरे प्रभुताई ॥
[ दोहा—१५९

नल दमयंती का यह साधनात्मक प्रेम पत्नीव्रत और पातिव्रत्य धर्म के रूप में सामने आता है। वास्तव में ऐसे ही स्त्री पुरुषों का प्रेम लोक रंजक के साथ साथ लोक कल्याणकारक होता है। ये एक दूसरे को परमात्मामय ही देखते हैं। इनकी रहनी सहनी शुद्ध सात्विकता लिए हुए होती है। इनमें सद्वृत्तियों का पूर्ण विकास पाया जाता है जिनसे इन्हें अमृतत्व प्राप्त होता है। अपने अकृत्रिम मधुर व्यवहार से ये सब को मोह लेते हैं। जीव जंतुओं के प्रति सदय रहते हैं। संसार का सारा वैभव प्राप्त होने पर भी ये विकार ग्रसित नहीं होते। ये लोक मर्यादा के संस्थापक और पालक होते हैं। समाज इनका अनुकरण करता है। नरनारी इनसे प्रभावित होकर अपने अपने चरित्र का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संसार इनसे धन्य धन्य होता है। ऐसे स्त्री पुरुष बड़े भाग्यशाली और उच्च संस्कार वाले होते हैं। ये सर्वत्र और सदैव सुलभ नहीं होते। कभी कभी ही संसार में जन्म लेते हैं। परंतु जब जन्म लेते हैं तो संसार इनकी ख्याति सुन इन्हें देखने के लिये लालायित हो उठता है —

जागे जगत नगर सुनि सोभा । कौतुक कहं सब कर चित लोभा ॥
× × × ×
कोऊ धरैं नियम मन आसा । कोऊ देखा चहैं तमासा ॥
[ दोहा—१७१

सब अपनी अपनी भावनाओं के अनुरूप इनके रूप 'आमिष' के प्यासे हो जाते हैं। इस दृष्टि से इनके रूप की व्याप्ति में अलौकिकता आ जाती है। इनके रूप के सामने संसार के रूप का भान नहीं होता। सूरज और चाँद लज्जित हो जाते हैं। ब्रह्म की तरह इनका रूप घट घट में व्याप्त हो जाता है। नारद ने दमयंती के रूप के संबंध में इंद्र से ऐसा ही कहा:—

चांद सुरज तिहि देखि लजाहीं । रहा न रूप भान जग माहीं ॥
ब्रह्मरूप तिहि रूप अनु घट घट रहा समाइ ।
जिन हेरा तिहि हरि लखि, आपा दीन्ह हिराइ ॥१८४॥
× × × ×
बहुत देव कुंडनपुर गए । तिहि 'आमिष' के प्यासे भए ॥

नारद जैसे ब्रह्मज्ञानी इस रूप में ब्रह्म रूप का ही दर्शन करते हैं। सभी लोग पहले तो काम से मोहित होते हैं, पर जब वर्ण से वर्ण (स्त्री पुरुष का उत्तम जोड़ा) मिल जाता है तो प्रसन्न होते हैं। इंद्रादिक देवता और राजा ऋतुपर्ण के विषय में ऐसी ही बात है। इंद्रादिक देवता दमयंती की बुद्धि के आगे थक गए —

जौ पुनि इन्द्रादिक जो देऊ । इहि चरित्र चकित भए तेऊ ॥
इन अवसर जैसे नल जाना । कौने चिह्न पुरुष पहिचाना ॥
पुनि प्रसन्न मन ह्वै सब लोका । अंत होय जो जिन्ह के सोका ॥
सती भई नारी नल पाया । बिधना 'बरनहिं बरन' मिलाया ॥
[ दोहा—२०१

राजा ऋतुपर्ण नल से क्षमा माँगते हुए कहते हैं —

पुनि ऋतुपरन मरम यह पावा । तिनहिं दास नल पहँ उठि आवा ॥
बोला बहुत चूक भइ मोसों । मोहीं रहस नहीं मैं तोसों ॥
मैं तेरा तब भव न जाना । अब लखि मरम बहुत पछिताना ॥
तू राजा मोरे घर माहीं । मैं अजान तोहिं जाना नाहीं ॥
[ दोहा—११०

पुष्कर लोभ अंत में निराश होते हैं —

बाला इह मन कहँ अँभासा । चली भौर लोचन उर छाला ॥
अपने उर सो लाल उतारा । सोई पुरजन अस हिय धारा ॥
दामिनि कौंध दमंती गई । लोचन घटा रंध्र हिय भई ॥
समरी सभा सुर जनु भागो । विरय भय विरही बैरागी ॥
चातक ज्यों जिम हुती जो आसा । मिटी सो पिक सौं भई निरासा ॥
[ दोहा—२०६

'राम चरित मानस' में इस भावभावना का बहुत ही उत्तम वर्णन किया गया है। विदुषों ने पुरुषोत्तम राम को विराटमय देखा, योगियों ने परम तत्त्वमय, पुरवासियों ने लोचनसुखदायक और दुष्टों ने भयानक —

जिन्ह कै रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

× × × ×

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

× × × ×

जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥

× × × ×

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥

× × × ×

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥

× × × ×

सीता को भी जो कुटिल राजा राम से बल पूर्वक छीन लेना चाहते थे —

तब तिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ॥

× × × ×

लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥

तात्पर्य यह है कि प्रेम साधना में तपकर ऐसे स्त्री पुरुषों में अलौकिकता आ जाती है और वे जीवन की सर्वोच्च भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। वहाँ उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। यदि पराजय वश उन पर विपत्ति भी आती है तो अंत में फिर जय प्राप्त करते

है। इस प्रकार उनका प्रेम अमर हो जाता है। प्रेम का तत्व यही है। इसी से 'प्रीति रस' होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान को जानकी के लिये जो संदेश दिया था उसमें इसी 'प्रेमतत्व' का वर्णन होता है:—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
'तत्व प्रेम' कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु 'प्रीति रसु' एतनेहि माहीं॥

इस प्रेम संदेश ने अपना प्रभाव इस प्रकार प्रकट किया कि जहाँ जानकी पावक में जलने की तैयारी कर रही थी वहाँ इसने उनकी सारी सुधबुध खो उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया—

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

फलतः वे मृत्यु से बच गईं और मिलन होने तक रावण के अपरिमित अत्याचारों को सहन करती हुई भी निडर और सक्रिय बनी रहीं। रावण उन्हें मारना चाहता था, पर मार नहीं सका।

अस्तु यही कारण है कि लोक ने शिव-पार्वती, राम सीता सावित्री सत्यवान और नलदमयंती के प्रेम को आदर्श रूप में अपनाया। ये महान् विभूतियाँ लोक मर्यादा की रक्षक और लोक जीवन को विकसित करने वाली हुईं। गृहस्थ धर्म (प्रवृत्ति मार्ग) इन्हीं के मार्ग पर चलने से 'प्रीति रस' युक्त होता है।

गुप्तार्थ के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह जितना पूर्वार्द्ध (कथारंभ से लेकर दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) में पाया जाता है उतना उत्तरार्द्ध में नहीं उत्तरार्द्ध में कहानी अधिकतर प्रकृत रूप में चलती है। इसका कारण यह है कि कवि पूर्वार्द्ध में प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन करना चाहता है और उत्तरार्द्ध में लोकव्यवहार का। इसका संकेत राजा भीमसेन के प्रति दमन ऋषि के उपदेश में मिलता है जिसमें ऋषि राजा को पहले परमात्मा और आत्मा के ज्ञान का उपदेश करते हैं और तदनंतर व्यवहार धर्म का:—

### परमात्मोपदेश

सिध कहा राजा सुनु मोसों। निज यह मरम कहौं हौं तोसों॥
जो सुनि समुझि बात उर धारेसि। अगम बस्तु कहँ सुगम निहारेसि॥
साईं एक यही सब ठाऊँ। सुन ताके तोहि चिन्ह सुनाऊँ॥
स्थिर निर्गुन अतन अभेषा। परम बिसिष्ट सो जात न देखा॥
भगत न बढ़ सहज परकासा। ज्यों बेलसि सब अर्थ प्रकासा॥
घट भीतर अंतर कछु नाहीं। तिमिर समाय रहा सब माहीं॥

बंशी की ध्वनि का संबंध नाद से है। नाद को हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म (ॐकार) का स्वरूप माना है। प्रणवनाद (ॐकार) से अनाहत (सूक्ष्मनाद) और आहत (स्थूलनाद) उत्पन्न हुए। आहत नाद से दो प्रकार के नाद निकले—जीव जन्य (शब्द) और जड़जन्य (ध्वनि) तथा इन प्रत्येक के अमधुर और मधुर करके दो दो भेद हैं। इस प्रकार जीव की तरह बंशी ध्वनि भी वनवारी (शब्द ब्रह्म, ॐकार) से बिछुड़ी हुई है ऐसा भी समझना चाहिए। प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर वह रो रही है। कहते हैं गोपियों के प्रति अभिमान दिखाने के कारण भी कृष्ण की बंशी को भी उनसे अलग होना पड़ा। स्वामी हित हरिवंश जी को श्रीकृष्ण की बंसी का अवतार बताया जाता है। ऐसे ही और भी कई बंशी के अवतार कहे जाते हैं। सूफी लोग अपने 'प्रेम संगीत' को भी बाँसुरी से उपमा देते हैं—

फिर अनुराग 'बाँसुरी' बाजी । तें अभिलाष स्वान्त उपराजी ॥

—अनुराग बाँसुरी

वैष्णव भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण की बंशी की प्रसिद्धि तो है ही संतों के षट्चक्र साधन क्रिया में भी इसका उल्लेख मिलता है। परंतु वहाँ कान्हा के द्वारा बजने के कारण यह मन को 'सुपात्र' बनाकर निहाल कर देती है। त्रिकुटी से कुछ ऊपर की साधना क्रिया में प्रवृत्त होते ही बंशी की ध्वनि सुनाई देने लगती है—

सोवी सोवी मनूआ पहल मुस्काइ । एहि अवसर कान्ह मुरली बजाइ ॥
मुरली को धुनि सुनी मन भैला पुलकित । पहुनी मीठुक जनु भैलो मधुपान ॥
घुमी घुमी मनूआ उपर चली गैल । उहुँवा देखल एक अदभूत खेल ॥
बोना रबी ससी तहां होला उजियार । रोमी झीमी मोतीया बरीसु अनपार ॥*

—महथाई गोसाईं धरनीदास

अस्तु प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने बहुत से स्थलों पर अपना (वास्तविक) अर्थ छिपाया है जो सब किसी से नहीं पाया जा सकता। बहुत से लोग समुद्र को जहाजों द्वारा पार करते हैं परंतु मोती खोजने वाले समुद्र में ही धँसते हैं—

बहुत ठौर निज मरम दुरावा । सब कछु पै जाइ न पावा ॥
बहुत लोग बोहित चढ़ि उदधि पर जाय माँहि ।
मुक्ता पाव मरजिया, धसि अगम ता माँहि ॥२७॥

इस काव्य में नलदमयंती के प्रेम के अतिरिक्त ज्ञान और व्यवहार धर्म का प्रतिपादन है। प्रथम के अनुसार नल के लिये दमयंती और दमयंती के लिये नल प्रेमस्वरूप परमात्मा के रूप में है। दोनों के हृदय में जब एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकट होता है तब दोनों मिलने के लिये व्याकुल होते हैं। परंतु लोक की अनेक कठिनाइयों

---

पाद टिप्पणी—

* अठारहवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० स०), संख्या ११४ ज।

है। इस प्रकार उनका प्रेम अमर हो जाता है। प्रेम का तत्व यही है। इसी से 'प्रीति-रस' होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान को जानकी के लिये जो संदेश दिया था उसमें इसी 'प्रेमतत्व' का वर्णन होता है।—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नवतरु किसलय मनहु कृसानु। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
'तत्व प्रेम' कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु 'प्रीति रसु' एतनहि माहीं॥

इस प्रेम संदेश ने अपना प्रभाव इस प्रकार प्रकट किया कि जहाँ जानकी पावक में जलने की तैयारी कर रही थी वहाँ इसने उनकी सारी सुधबुध खो उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया —

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

जानकी मृत्यु से बच गईं और मिलन होने तक रावण के अपरिमित अत्याचारों को सहन करती हुई भी निडर और सक्रिय बनी रहीं। रावण उन्हें मारना चाहता था पर मार नहीं सका।

अस्तु यही कारण है कि लोक ने शिव-पार्वती, राम सीता, सावित्री सत्यवान और नलदमयंती के प्रेम को आदर्श रूप में अपनाया। ये महान् विभूतियाँ लोक मर्यादा की रक्षक और लोक जीवन को विकसित करने वाली हुईं। गृहस्थ धर्म (प्रवृत्ति मार्ग) इन्हीं के मार्ग पर चलने से 'प्रीति रस' युक्त होता है।

गूढ़ार्थ के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह जितना पूर्वार्द्ध (कथारंभ से लेकर दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) में पाया जाता है उतना उत्तरार्द्ध में नहीं उत्तरार्द्ध में कहानी अधिकतर प्रकृत रूप में चलती है। इसका कारण यह है कि कवि पूर्वार्द्ध में प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन करना चाहता है और उत्तरार्द्ध में लोकव्यवहार का। इसका संकेत राजा भीमसेन के प्रति दमन ऋषि के उपदेश में मिलता है जिसमें ऋषि राजा को पहले परमात्मा और आत्मा के ज्ञान का उपदेश करते हैं और तदनंतर व्यवहार धर्म का:—

### परमात्मोपदेश

सिद्ध कहा राजा सुन मोसौं। निज यह मरम कहौं हौं तोसौं॥
जो सुनि समुझि बात उर धारेसि। अगम वस्तु कहँ सुगम निहारेसि॥
साईं एक अहै सब ठाऊं। सुन ताके तोहिं चिन्ह सुनाऊं॥
ईश्वर निर्गुन अलख अभेवा। परम विसिद्ध तौं जाइ न देखा॥
मुक्त न बद्ध सहज परकासा। ज्यौं देखसि सब जगत प्रकासा॥
घट औघट अंतर कछु नाहीं। सिंधु समाइ रहा सब माहीं॥

बंसी की ध्वनि का संबंध नाद से है। नाद को हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म (ओंकार) का स्वरूप माना है। प्रणवनाद (ओंकार) से अनाहत (सूक्ष्मनाद) और आहत (स्थूलनाद) उत्पन्न हुए। आहत नाद से दो प्रकार के नाद निकले—जीव जन्य (शब्द) और जड़जन्य (ध्वनि) तथा इन प्रत्येक के मधुर और अमधुर करके दो दो भेद हैं। इस प्रकार जीव की तरह बंसी ध्वनि भी वनवारी (शब्द ब्रह्म, ओंकार) से बिछुड़ी हुई है, ऐसा भी समझना चाहिए। प्रत्यभिज्ञा अपने पर वह रो रही है। कहते हैं गोपियों के प्रति अभिमान दिखाने के कारण श्री कृष्ण की बंसी बनी और उनसे अलग होना पड़ा। स्वामी हित हरिवंश जी को श्रीकृष्ण की बंसी का अवतार बताया जाता है। ऐसे ही और भी कई बंसी के अवतार कहे जाते हैं। सूफी लोग अपने 'प्रेम संगीत' को भी बाँसुरी से उपमा देते हैं—

> फिर अनुराग 'बाँसुरी' बाजी। सँ अभिलाष स्वाद उपराजी ॥
>
> —अनुराग बाँसुरी

वैष्णव भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण की बंसी की प्रसिद्धि तो है ही संतों के षट्चक्र साधन क्रिया में भी इसका उल्लेख मिलता है। परंतु वहाँ कान्हा के द्वारा बजने के कारण यह मन को 'भूपाल' बनाकर निहाल कर देती है। त्रिकुटी से कुछ ऊपर की साधना क्रिया में प्रवृत्त होते ही बंसी की ध्वनि सुनाई देने लगती है—

> सोची सोची मनुआ रहल मुरझाइ। एहि अवसर कान्ह मुरली बजाइ ॥
> मुरली की धुनि सुनी मन भइल खुशिहाल। रहल भीखक जनु भैलो भूपाल ॥
> सुनी सुनी मनुआ उपर चली गैल। सहजा देखल एक अजगुत खेल ॥
> बीना रबी ससी तहाँ होला उजियार। रोमी झीमी मालीया बरीसु जलधार ॥*
>
> —महुराई गोसाईं धरनीदास

अस्तु प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने बहुत से स्थलों पर अपना (वास्तविक) मर्म छिपाया है जो सब किसी से नहीं पाया जा सकता। बहुत से लोग समुद्र को जहाजों द्वारा पार करते हैं परंतु मोती खोजने वाले समुद्र में ही पैठते हैं—

> बहुत ठौर निज मरम दुराया। सब काहू पै जात न पाया ॥
> बहुत लोग बोहित चढ़े उदधि पर जाय जाहिं।
> मुक्ता खोज मरजिया, पैठि खोज ता माहिं ॥२०॥

इस काव्य में नलदमयंती के प्रेम के अतिरिक्त ज्ञान और व्यवहार धर्म का प्रतिपादन है। प्रथम के अनुसार नल के लिये दमयंती और दमयंती के लिये नल प्रेमस्वरूप परमात्मा के रूप में है। दोनों के हृदय में जब एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकट होता है तब दोनों मिलने के लिये व्याकुल होते हैं। परंतु मिलन को अनेक कठिनाइयों

---

पाद टिप्पणी—

* अठारहवीं खोज विवरण (ना० प्र० स०) ...

के कारण सरसता भी मिल नहीं पाती । इसलिए वे विरहाग्नि में तपने लगते हैं । यही विरहाग्नि उनकी साधना स्वरूप है । उनकी इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों से विरत हो जाती हैं । उन्हें न तो नींद ही आती है और न भूख प्यास ही लगती है । राग रंग से मन हट जाता है और विरक्तों की तरह संसार से कोई नाता नहीं रह जाता । उनकी चित्त-वृत्तियाँ एक दूसरे में एकाग्र हो जाती हैं । सत्त्व (सात्त्विक गुण प्रधान) प्रेम में उनकी इस एकाग्र (ध्यान धारणा और समाधि युक्त) स्थिति का सादृश्य गीता के निम्नलिखित श्लोक के संयमी में मिलता है —

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ॥

इस प्रकार विरह के तीव्र पन के कारण अभाव की स्थिति में दोनों अपने-अपने प्रेम को एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार व्यक्त करते हैं उसमें प्रेम की लौकिकता अलौकिकता की ओर जाती हुई लक्षित होती है । यही अलौकिकता प्रस्तुत कवि का मुख्यार्थ है । इसमें प्रेम की अलौकिकता के साथ-साथ रहस्यमय सत्ता के प्रति भी इंगित रहता है । कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

## नल का विरह

[प्रेम का अलौकिक वर्णन और परमात्मा की ओर संकेत]

हौं जागौं तोहि लागि जगावत । तोहि सुत जन नींद चित भावत ॥
हौं भै भवँर भयौं बैरागी । तू सरोज सुभ सर अनुरागी ॥
हौं चातक पिउ पिउ रट मोरे । तू स्वाती भावे नहिं तोरे ॥
मो मन चित चकोर जिम हेरैं । तू तो चंद और नहिं सरु ॥
मो गति ज्यों मछरी बिन पानी । तू अपने पानी अभिमानी ॥

[दोहा—१२२

× × ×

मो सौं बिनती नै जग माय । होइ सो वहु जो पिउ कौं भावै ॥

× × ×

औ पुनि यही बात कछु माहीं । सब जग जीव देह तो माहीं ॥
जासौं कृपा दृष्टि कर हेरसि । ताही के दुख दाह निबेरसि ॥

[दोहा—१२१

× × ×

पेम समुद्र अथाह अपारा । तहाँ परैं को काढन हारा ॥
नदी समाइ जाइ इक ओरा । का सिख बूंद करै तिहि ओरा ॥

× × ×

पेम पहार अकास उचाहीं । सिव ब्रह्मा ना अमर तहाँहीं ॥

[दोहा—१२

## प्रेम साधना-पथ

मो तो सुमन सुमहि सुहेला । जिनहूँ न भयो पेम कर मेला ॥
उपज न हियें बिरह बरागू । भयो न मनहूँ कै पिछलागू ॥
तिन्ह यह पंथ सगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन माना ॥
हौं सिर सीस चरन कर चाऊँ । पैग पग चल चाव बढ़ाऊँ ॥
जहौं न जीव रन बिन बसूँ । तौ लगि जौ लगि पीतहि मिलूँ ॥
ज्यौं ज्यौं चलूँ उमंग त्यौं होई । पेम पंथ पर थकै न कोई ॥
जो तन हार रहै तजि चाऊँ । मन पग पिउ मग सौं न हिलाऊँ ॥

पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहि ।
कसक करेजे काबही पीर कछु मगन माहि ॥१२६॥

× × ×

जौसे एक ओर के जारै । तब दूहूँ ओर आइ पग धारै ॥
पेम पेल महूँ मारे बाजी । सो खेलै जो दुहु पर राजी ॥
यह देखो पुनि अचरज रीता । जो हारै जानहु तिन जीता ॥

पेम समुद्र अपार अति नाहि ओर नहि छोर ।
जो बूड़े सोई तिरै यहै पेम कवि छोर ॥१२७॥

## सांसारिक भोगों से विरक्ति

हौं अस राज न मन मे लाऊँ । जिहि सुख उरभिमीत बिसराऊँ ॥
जो बिन मांग मिले पिउ सोई । तो यह राज कुसल पै होई ॥
नाहि न पेम अगिन तन जारी । झूठे राज जनम का हारी ॥

हार जनम राजा भये, गए उजाड़ निसान ।
तें जीते कई पर भूख पेम मैदान ॥१२८॥

[लोक लज्जा की उपेक्षा]

पुनि तुम यह सिखदा सुन आमी । यसै देस महूँ हाल कहानी ॥

× × ×

डरौं न हाल कलंक सौं, जो पेम रहे मन माहि ।
दहि चाँद परवाह अस, जित कलंक ठहराहि ॥१३२॥
पुनि तुम यह बोले सिप बानी । राजन्ह महूँ होइ है अपयानी ॥

× × ×

झूठ मान ए मान सब काया के अपमान ।
मान छिपी भ मान सौं रीझ चम अपमान ॥१३३॥

× × ×

[प्रिय शोध (मिलन) की कठिनाई]

बड़ी रजाई ऊँच दुआरा । सब कर तहाँ नहीं पैठारा ॥
करहिं द्वारपालक कठिनाई । आयसु बिना पवन न दुराई ॥
कै सो जाहि जो ध्याता होई । जिहि को राजहि भेद न होई ॥
ध्यातहि आस घटक कछु नाहीं । को बरजै अपम घर जाहीं ॥
कै सो जाहि जिहि आप बुलाव । पेम बसीठ होइ पहुँचावै ॥
जो जदपि पहुँचै जतकोई । तौ आसन बुधि उलटि न होई ॥
हरि रूप वह जाइ हिराई । तिहि मिल आपा देइ गवाँई ॥
इहै कठिन सोध पिउ केरा । कोउ न फिरा जिनहिं मुख हेरा ॥
काहि पठाऊँ पीउ पहँ, को दो जिउ को होइ ।
एक जीउ के देइ बिनु, पीउ न पावै कोइ ॥११५॥

[ध्यान की एकाग्रता और अद्वैत स्वरूप दर्शन]

साँची प्रीत न रहै दुराजी । जिन जासों लाई तिन जानी ॥
तन महु विस्ति मात्र लौं ध्यारा । सो एकइ जो आनन हारा ॥
औ पुनि प्रबल प्रीत जब होई । तब तिनहुं महं भेद न कोई ॥
अंतर दोनों देह दिखाई । जीसों में दु जीव कहाई ॥
तनमें भए न अन्तर कोई । तन औ प्रान सो एक होई ॥
तन सब ताहि प्रतन महं प्रतन सबै तन माहुं ।
बहु प्रतन तब मे भयो प्रतन दुतिय पुनि नाहुं ॥११८॥

ध्यान की एकाग्रता सिद्ध हो गई तो प्रेम साधना भी सिद्ध होगई । फलस्वरूप प्रियतम का दर्शन या तो उसी समय हुआ समझिए और यदि नहीं तो उसमें नाम मात्र का विलंब समझना चाहिए । जब 'अति प्रबल अवस्था' हो जाती है तो 'दरसा होने में कोई संदेह नहीं रह जाता'—

जब अति प्रबल अवस्था होई । तब दरसा संदेह न कोई ॥
कहु को दुखो जो पेम दुख, जिन सुधि पिय ना लेइ ।
बैद लिये औषद निकट, पीर बिना कहँ देई ॥११६॥

इसीलिये नल की प्रेम साधना अंतिम सीमा तक पहुँच गई तो उसे स्वयंवर में आने का निमंत्रण मिला ।

दमयंती का विरह

[प्रेम साधना की गंभीरता]

सुरत ध्यान पिउ सौं अनुरायो । जाते करै विरह बैरागी ॥
प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छाँड़ि भई हौं तोरी ॥
अब लगि विरह बान मैं सहे । रोमहिं रोम पैठि तन रहे ॥
अब लागें तो प्रान पै लागे । जिउ अकुलाइ चहै तन त्यागे ॥

जदपि जीउ तन त्यागि कै, जंग मिम तोहि जाइ ॥
य मन चाब कि तो प्रघ्न, जीउ तो मोहि समाइ ॥१५५॥
पिउ जिउ तू तो जिन कल नाहीं । मोहि जिउ को ऐसा कछु नाहीं ॥
यह जब तब तो सों मिल रहा । प्रबहू प्रनमिल प्राइ न कहा ॥
निज जिय धाम प्रतन तन तोरा । यह मन मूस कहिं जिउ मोरा ॥
त्रिन कारन विनती हौं करीं । हा हा खाइ सीस भुइं धरीं ॥
तन तोहि लागि बहुत दुख पावा । सब रंग रस सबहि गवांवा ॥
बिरह रोग सिर बहुत बढ़ावा । तोहू न नित करे सतावा ॥
प्रीतम जिउ तू तन प्रगन, सदा रहै सुख पास ।
बिरह आग दुख तन सहै सोई जाइ निरास ॥१५६॥

[परमात्मा की प्रार संकेत]

पंथ चलू हौं एकली, पूछउ हौं इन माहु ।
धाइ परै पिउ तोहि मत्रं, को राखी गहि बांह ॥१६१॥
हौं प्रनाथ कछु होय न मोसों । जो कछु होइ चाय सब तोसों ॥
मोसों कहूं पैल दुख भरता । साईं तिहारी सुमिरन करता ॥
यह बल नाहिं कि तुम पहं प्राऊं । मिलि के तन की तपन बुझाऊं ॥
तुम्हीं प्रघर होहु जो धाई । प्राणा प्रान देहु बिसराई ॥
तबहीं पिउ दरसन हौं पाऊं । इन सगुन सों प्राप छुड़ाऊं ॥
महाराज तुमसों सब हारी । तुम कहं बरजनहार न कोई ॥
तुम प्रपने सगुन के करता । सब करि सकै प्राप जो करता ॥
जो तुम प्राइ कछु कर फेरा । कहौ तुम्हें कौने कौ घेरा ॥

दोहा—१६२

जो इहि मैं कछु सीख न मोरा । जो कछु करै सो यह जिउ तोरा ॥
छिन छिन धाय धाय कर लावै । लिखि प्रमोचर बान चलावै ॥
पायक कहूं प्रमुक सुनि सोई । प्रापहि भाग प्रौर नहि कोई ॥
भारहि भसि धाय डर करी । प्रापहि तहां लीन होइ परै ॥

दोहा—१६१

[ससार प्रार लोक लज्जा का त्याग]

प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छाँड़ि भई हौं तोरी ॥

दोहा—१५५

प्रीतम प्राय लाज मैं खोई । रोइ रोइ पंमुख सब धोई ॥
जो पिउ लागि लाज न प्राई । ताहु निलज भौरे ......

है। इस प्रकार उनका प्रेम अमर हो जाता है। प्रेम का तत्व यही है। इसी से 'प्रीति-रस' होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान को जानकी के लिये जो संदेश दिया था उसमें इसी 'प्रेमतत्व' का दर्शन होता है —

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
'तत्व प्रेम' कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मन सदा रहत तो पाहीं। जानु 'प्रीति रसु' एतनहि माहीं ॥

इस प्रेम संदेश ने अपना प्रभाव इस प्रकार प्रकट किया कि जहाँ जानकी पावक में जलने की तैयारी कर रही थीं वहाँ इसने उनकी सारी सुधबुध को उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया —

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ॥

फलतः व मृत्यु से बच गई और मिलन होने तक रावण के अपमानित अत्याचारों को सहन करती हुई भी निडर और अडिग बनी रहीं। रावण उन्हें मारना चाहता था पर मार नहीं सका।

अस्तु, यही कारण है कि लोक ने शिव-पार्वती राम-सीता सावित्री सत्यवान और नलदमयंती के प्रेम को आदर्श रूप में अपनाया। ये महान् विभूतियां लोक मर्यादा की रक्षक और लोक जीवन को विकसित करने वाली हुईं। गृहस्थ धर्म (प्रवृत्ति मार्ग) इन्हीं के मार्ग पर चलने से 'प्रीति रस' युक्त होता है।

गुप्तार्थ के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह जितना पूर्वार्द्ध (कथारंभ से लेकर दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) में पाया जाता है उतना उत्तरार्द्ध में नहीं उत्तरार्द्ध में कहानी अधिकतर प्रकृत रूप में चलती है। इसका कारण यह है कि कवि पूर्वार्द्ध में प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन करना चाहता है और उत्तरार्द्ध में लोकव्यवहार का। इसका संकेत राजा भीमसेन के प्रति दमन ऋषि के उपदेश में मिलता है जिसमें ऋषि राजा को पहले परमात्मा और आत्मा के ज्ञान का उपदेश करते हैं और तदनंतर व्यवहार धर्म का —

परमात्मोपदेश

सिद्ध कहा राजा सुन मोसौं। जिन यह मरम कहौं हौं तोसौं ॥
जो सुनि समुझि बात उर धारेसि। अगम वस्तु कहं सुगम निहारेसि ॥
साईं एक नहीं सब ठाईं। सुन ताकै तोहि चिन्ह सुनाऊँ ॥
ईस्वर निर्गुन अतन अभेषा। अरस बिरिस जौं जाइ न देखा ॥
गुप्त न व्यक्त सहज परकासा। ज्यों देखसि सब ठावं प्रकासा ॥
अड औघड अंतर कछु नाहीं। तिमड समाइ रहा सब माहीं ॥

सोई सब जानन कर खेला । और न दूजी आप अकेला ॥
ए बहु खेल जो तोहि दिखाई । चेतन सब महँ रहा समाई ॥
ता बिन करनी कछू न होई । गुन औगुन तिन्ह लगै न कोई ॥
ऐसे सब रंगन जुता, पै वह अपने रंग ।
जो मिल जाको निरंध रंग, ताको भयो न भंग ॥६६॥

## आत्मोपदेश

अब तोहि तोरो भक्ति समझाऊँ । समझ देखि निज कहूँ बुझाऊँ ॥
जो वह पूछे निमट समाना । घट औघट ता बिन नहिं आना ॥
त्यों तोरे घट तू पुनि सोई । निरख देख निज और न कोई ॥
जो वह सो तू निमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ॥
जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ॥
जो वह सो तू निमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ॥
जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ॥
यहु उपाधि आप को बिसारसि । भूल और को और बिचारसि ॥
छाँड़ि अमर पद मिरतक होई । सोई कुमत काल भै तोही ॥
तोहि यह मिथ्या भरम जो भयऊ । औरहि ते औरहि ह्वै गयऊ ॥
ज्यों सपनरूप माया अधिकारी । सपने महँ होइ जाइ भिखारी ॥
माया निसि सपना जगत, नींद भरम अज्ञान ।
सोइ जाग समझा सकल, जाने कछू न निदान ॥६७॥

ए यह ज्ञान आज तोहि माहीं । तू उरझ्यो पासे तिन माहीं ॥
तोरे हिय परतीत न आवै । मन मलीन संकट उपजावै ॥
मारग कै जन ज्यों पछताना । मारग जात ज्यों होइ ठहराना ॥
रतन धुरा पावै जल माहीं । बिना निराने सूझत नाहीं ॥
तसो जो तोरे यह दुविधा । गुन उपकार देउँ तोहि सिखधा ॥
प्रथम धोय मन दरपन काई । तब निरमल छबि देइ दिखाई ॥
सोऽहं स्वास सबद मसकला । सहजहि आय रैन दिन चला ॥
तासों मन धोई मन माँजै । माँज ग्यान अंजन दृग आँजै ॥
उपजै नैन ग्यान हिय होई । पट्ट न दैत पहन होइ सोई ॥
प्रगट होइ अलख जब सूझै । तहवाँ सकल भरम तब बूझै ॥
दुबिधा पवन चपल मन, तब भटको रवि जोय ।
मर्म गह्यो माया मिटनि, रह्यो रह्यो होइ जोय ॥६८॥

## व्यवहारधर्मोपदेश

अब ब्योहार धरम गुन भोगी । जानि सुपात्र कहीं हौं तो सों ॥
तोहि दयाल दीन्ह बड़ राजू । तोहि प्रभु का अनुभव कर राजू ॥

पौरुष धर्मसि धरम पग धारै । राज करैति मत मन बिचारै ।।
होइ न दुखी राज महँ कोई । राव रंक सुख मानहिं दोई ।।
राजा प्रजा नियाव पर धावै । सीस छाँड़ि कै सत दिखावै ।।
राव रंक सरवर कै आनै । समझि दूध पानी निज छानै ।।
राजहिं यह बूझहिं तिहि बारा । करा नियाव कीन्हेंसि ससारा ।।
जो रकहिं बरियार सतावै । तिहि पलटै राजा दुख पावै ।।
राव रंक जिन्ह कर उपराजा । तिन्ह कर तैस रंक तस राजा ।।

राव रंक परजा सबै राजा सब कर सोइ ।
यह सपन कै राज पै मरन करी जिन कोइ ।।६६।।

ज्ञान के इन दो पक्षों को प्रस्तुत आख्यान के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में कलात्मक ढंग से क्रमबद्ध किया गया है । प्रथम ज्ञान का विषय निर्गुण ब्रह्म है और दूसरे ज्ञान का विषय व्यवहारधर्म । लोक व्यवहार का उपदेश राव (राजा) के अनुसार राजधर्म के रूप में हुआ है । परंतु राजा भीमसेन को किया गया यह उपदेश प्रस्तावना रूप में कोरा उपदेश समझना चाहिए । अन्यत्र यह 'कांता सम्मित उपदेश' के रूप में कहानी के साथ गुंथा हुआ है । कवि ने एक बात और की है । दमयंती के वर्णन में उसने परमात्मा को प्रेम(प्रेमामृत) के रूप में चित्रित किया है और नल के वर्णन में ज्ञान रूप में । यह उनके लिंग भेद के कारण है जो स्वाभाविक है । परमात्मतत्त्व दोनों में एक ही है । दोनों शुद्ध सात्त्विक वृत्ति के होने के कारण यह तत्त्व उनमें पूर्ण प्रकाश रूप में भासने लगता है । रंगहीन स्वच्छ कांच की बोतल में जैसे गंगाजल दिखाई देता है ऐसे ही उनके त्रिगुण मल रहित शुद्ध अंतःकरण में परमात्म रूपी प्रकाश तेज चमकने लगता है । इस प्रकार उनमें जिस रूप सौंदर्य का निर्माण होता है वह अनुपम दुर्लभ और अलौकिक है । उसके आगे स्वयं रूप (जगत् रूप) का मद फीका पड़ जाना उचित ही है । इस दृष्टि से इस रूप की उपमा के लिये कम ही रह जाता है और ऐसा ही कवि ने किया है । यह भी बात है कि कहानी ब्रह्म की ओर इंगित करती हुई चलती है । नल के सौंदर्य का वर्णन केवल कहानी के प्रारम्भ में है और वह कवि द्वारा हुआ है । दमयंती के सौंदर्य का वर्णन मालिन द्वारा तीन बार और कवि द्वारा उत्तरार्द्ध में दो बार किया गया है । यहाँ विषय स्पष्ट करने के लिये उनके प्रारंभिक रूप सौंदर्य का एक एक उदाहरण दिया जाता है । इन्हीं में समस्त भेद खुल जाता है—

## नल का सौंदर्य

वह (ज्ञान रूपी नल) उज्ज्वल वर्ण वाला है मानो काम ने (परमात्मा का नाम 'काम' भी है इसलिये परमात्मा रूपी काम ने) अवतार लिया हो । जिसके मुख से हुआ
गया, वहीं उस रूप की सुंदर (बाह्य ... था । नल के मुख के
आगे रूप (जगत् रूप) का मूल सौं ... कोई नहीं कर सकता
था । मानो विधाता ने सब के घट-घट ... वहीं रूप सबके
घट-घट में ब्रह्मरूप के समान ... वासि
(ब्रह्मज्योति) के समान ... ार में ... को

नहीं पाती थी। सूर्य को देखने से आँखों की ज्योति जलने लगती हैं और वे तब शीतल होती हैं जब हिम देखने को मिलता है। परंतु नल को देख लेने पर सूर्य को देखने के लिये कोई लालायित नहीं रहता था। जो नल को देख लेता था, वह उसमें सूर्य का (दूसरा अर्थ ब्रह्मरूप का) दर्शन करता था। सूर्य को देखने से आँखों की जो गति (जलने की गति) होती है वही गति नल रूपी सूर्य को क्षण भर देखने से होती थी (अर्थात् नलरूपी ज्ञान सूर्य अज्ञानांधकार युक्त आँखों को क्षण भर में जला देता था)। पुरुष अथवा स्त्री जिसके भी चित्त में वह रूप (ब्रह्मरूप) झलक पड़ा फिर वह जन्म भर उसके चित्त से नहीं हटा। वह रूप संसार के हृदय में समाया हुआ जैसा था। जिसने उस रूप को देखा उसने अपने को उसी में हिरा दिया (दूसरा अर्थ जिसने उस ब्रह्म रूप का दर्शन किया वह भी ब्रह्ममय हो गया)।

जितने राजा अविवाहित थे उन्होंने जैसे ही नल के रूप के विषय में सुना वैसे ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया (वैराग्य इसलिये कि संसार की सुंदरी नल को छोड़ उन्हें नहीं वरेगी)। वे अग्नि जलयुक्त नल के यश के कारण द्वेषाग्नि में जलने लगे।

## दूसरा अर्थ

जो रजोगुणी (शुद्ध सात्विक गुण से अयुक्त) थे वे उस ज्ञानरूप के विषय में सुनते ही विरक्त (सांसारिक भोगों से अलग) हो गए। और ज्ञानाग्नि में तपे (नल के सदृश) शुद्ध सात्विक उज्ज्वल वर्ण प्राप्ति के निमित्त वे भी अपने रजोगुण को ज्ञानाग्नि में जलाने लगे।

## ज्ञानोपदेश

यह लिखा जा चुका है कि कवि कहानी के साथ-साथ ज्ञानोपदेश भी करना चाहता है। नल के इस रूप वर्णन में ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश है—

ब्रह्म ही वास्तविक वस्तु है। वही ज्ञान है। उसका रूप अनुपम है। सब जगह और सब के हृदय में वही रूप व्याप्त है। उसके रूप की झलक मात्र मिलने से ज्ञान चक्षु प्राप्त होते हैं और ज्ञान प्राप्त होते ही ब्रह्म प्राप्त हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये त्रिगुणों (सत, रज, तम) को समूल नष्ट करके शुद्ध सात्विक वृत्ति प्राप्त करनी पड़ती है आदि। कहानी के रूप में यह ज्ञान रसात्मक शैली में वर्णन किया गया है—

औ अति रूपवंत उजियारा। मानो काम लीन्ह अवतारा॥
जिन्ह अस रूप कहीं नहिं जोरा। नल मूरत रूप रूप मदन फीका॥
करै न कोउ रूप सरि तासें। घट जनु घन जिमि कीन्ह बिचारे॥
सूर भाँति बरनी अस जोती। पै सूरहु मुख जोति न ओती॥
नैनहिं जोति जरै रवि देखें। सीतल होहिं हिम तब पेखें॥
सूरहि देखि लोभाइ न कोई। इन्ह देखें सो दरसन होई॥
जो गति नयन की रवि ताकें। सो गति छिन ताकें अस ताकें॥

पुहुप मारि जाके चित परा । फिरि भरि जनम न चित सों टरा ॥
ब्रह्म रूप जग होय तमासा । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥

जे रसभारें प्रेम कर मुनि सो भा बैराग ।
जनम मरन भव भरन सग परम नर्स होइ भाग ॥२१॥

## दमयंती का सौंदर्य

यह (प्रेमामृत स्वरूपा दमयंती) जगत की सर्वश्रेष्ठ स्त्री पद्मिनी की अपेक्षा एक कला बढ़ कर है। उसकी हाथ की उंगलियों में अमृत भरा है जिसका चोखन मृतक के मुख में देने से वह तत्काल जी उठता है (प्रेमामृत पान करने से जीव तत्काल मृत्यु के मुख से छूट कर अमर हो जाता है)। मानो विधाता ने उसी को अमृत में धोकर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो। वह एक ही पद्मिनी ऐसी है जो अमृत से भरी है (परमात्मा एक ही है और वही अमृत है)। न जाने वह किसके लिये अवतरित हुई है। हे महाराज ! उसके मुख की ज्योति का सौंदर्य देखते ही बनता है, कहते नहीं। वह आश्विन पूर्णिमा के चांद से भी कहीं उज्ज्वल ज्योति पुंज के समान है। निश्चय ही वह पद्मिनी आश्चर्य पूर्ण है। ऐसी अमीतक कहीं सुनने में नहीं आई। उस कमल की सुगंधि तीनों लोकों में पहुंच गई है। सारा संसार भौंरा बनकर उस सुगंधि की आशा में भ्रमण कर रहा है। उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है न जाने वह किसके हाथ लगती है।

संसार रत्न (अमृत रत्न) के खोज में है और वह पद्मिनी प्रेम समुद्र की मुक्ता रूपी अमृत रत्न है। न जाने कौन उसे पाकर समुद्र (संसार समुद्र) पार करता है और कौन उसी में (संसार समुद्र में ही) डूबा पड़ कर प्राण देता है।

## उपदेश

दमयंती के इस सौंदर्य वर्णन के साथ साथ प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति का उपदेश मिलता है—

प्रेम ही से अमृत रूपी परमात्मा या आनंद दायिनी भक्ति प्राप्त होती है। प्रेम ही अमृत है (परमात्मा का नाम अमृत भी है) परमात्मा रूपी प्रेमामृत पान करने से जीव जन्म मरण के बंधन से छूटकर अमरानंद प्राप्त करता है। प्रेम समुद्र में डुबकी लगाने से वह प्रेमामृत रूपी भक्ति रत्न मिलता है जिससे जीव संसार समुद्र से तर जाता है—

पदुमिनि चाहि घाटि एक करा । कर अंगुरिन्हि अमृत रस भरा ॥
जो परसार मिरतक मुख माहीं । जी उठि ठाढ़ होइ तत्कालहिं ॥
जनु बिधि अमी थाप कर डारी । कै न सकै सरि दूसर नारी ॥
इक पद्मिनी औ अमृत भरी । नाँ किहि जोग दई अवतरी ॥
महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ देखत बनि आई ॥
जग असोज पूनों ससि ऊगा । तासों अधिक जोति कर दूगा ॥

यह प्रकरन कि यह पदुमिनी । महाराज दमयंती भनि सुनी ॥
पहुँच कँवल तिहूँ पुर बासा । रूप ना और सबै त्रिय आसा ॥
सुनि आसा सब सकल सोभागा । भौं काके कर बई निरागा ॥

कमल सरोवरिया देस दिसि, मुक्ताफल ना तीय ।
सो की दाये सौं तिरि का बूड़ दे बीच ॥७४॥

(यहाँ दमयंती की उँगलियों में कमल का होना सुन्दरता में तो चमत्कार पैदा करता है परन्तु प्रकृतार्थ में जैसा वर्णन किया जा चुका है ठीक सामंजस्य नहीं रखता।)

दमयंती के सम्पूर्ण वर्णित रूप का भी संकेत सा अवलम्ब लिया जाता है जिसमें उसके रूप को देखकर सूर्य और चंद्र लज्जित होकर किनारे में पड़ जाते हैं तथा जिसका रूप संसार के रूपों को प्राप्त होता है इस जो सब रूपों का उपमा है—

सूर्य पर और तपा जनु आई । जोत प्रकास दीप दिखलाई ॥
देख जोत सूर्यौ ससि घटा । [illegible] और [illegible] ॥

कहूँ माथ मोहन मस्तक पग स्याम उर धाय ।
अजहूँ प्रगट सो दाग प्रिय, ससि का कहूँ कलंक ॥७५॥

चौंदी रंग सूर परमाते । जिनका तबहिं हुआ दमयन्त ॥
निरखत छिन बारी उजियारी । और भयो तम चारन पारी ॥

× × ×

रूप देह धर जनु औतरा । रहै न [illegible] रूप कै धरा ॥
ताकी छवि कहूँ कौन बखान । मोहि कहूँ जो दरसे सो जाने ॥

इहि सरूप नारी भई रूप रूप जिहि रूप ।
रूप रूप कहूँ उपम कहू का मत रूप अनूप ॥७६॥

और भी—

जेते जान तिहूँ पुर माहीं । ताके रूप और यहि नाहीं ॥
दुनिय नासिक एकौ अस नामू । कहि न जाय जिहि रूप बखानू ॥

× × ×

जो पुनि कबहुँ प्रकास तें हेरे नैन फिराइ ।
सर्व देव होइ किलकिला गिरा कहै तहूँ राइ ॥७७॥

कहानी के आध्यात्मिक पक्ष को लेकर विचार करें तो मालूम पड़ता है नल कामी कोई मुमुक्षु या सूफ़ी [illegible] अथवा सूफ़ी मान्यता के अनुसार सुध तड़पती है। नल नाम है और दमयंती अमृत। नाम के प्रभाव अग्नि और सूर्य हैं और अमृत के प्रतीक [illegible] और चंद्र। नाम और पद्मिनी (कमल) भी प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें सौंदर्य के अर्थ में समझना चाहिए।

ज्ञान और अमृत दोनों ही ब्रह्म स्वरूप हैं—

ज्ञानं स्वप्रकाशं चिदात्मा परं ज्योति

—वसि

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति

शुद्ध सात्त्विक ज्ञान से अमृत अलग नहीं है। जो ज्ञान है वही अमृत है। ज्ञान साथ साथ अमृत की सिद्धि भी स्वतः हो जाती है। जीव बिना दाम्पत्य प्रेम किए ज्ञानामृत पान कर आत्मानंदी होता है। ऐसे ही शुद्ध सात्त्विक दाम्पत्य प्रेम से ब्रह्मानं होता है। इन्हीं को क्रमशः निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं। पहली स्थिति विषय वासनाओं से ऊपर उठने के लिए संसार का सर्वथा त्याग करना पड़ता है औ दूसरी स्थिति में समस्त चराचर सृष्टि को परमात्मामय (तुलसी के शब्दों में—सिय राम मय) समझते हुए उसके साथ संबंध स्थापित करने की आवश्यकता रहती है यही दूसरी स्थिति गृहस्थ धर्म का मर्म है। गृहस्थाश्रम में ही कविता कामिनी ने प्रथम प्रथम नव शृंगार रचा और उस प्रथम महाकाव्य को जन्म दिया जिससे समस्त संसार अलौकिक प्रीति रस से सिक्त हुआ। इस आश्रम का मूल मंत्र निश्छल प्रेम है। निश्छलता (शुद्ध सात्त्विकता) में ज्ञान है और प्रेम में अमृत। ज्ञान का प्रतीक जैसा ऊपर कहा जा चुका है सूर्य है और अमृत का चंद्र। सूर्य की उत्पत्ति महत्पुरुष की आँख से हुई है और चंद्रमा की उत्पत्ति उसके मन से—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत

इससे यह सिद्ध हुआ कि निश्छल (शुद्ध सात्त्विक) प्रेम परमात्ममय है और यह आँख और मन से होता है। आँखों में प्रियतम को बसाना पड़ता है, और मन उसको देना पड़ता है। विरहाकुला दमयंती कहती है:—

बिरह अगिनि उर कीन्ह प्रकासा। आँखिन निरख कंत कर बासा॥

× × ×

नहिं अधिक मन जीया लाया। मन पंछी अचेत अरुझाया॥

हौं अपने मन की भूली जो नल लेगा उरझाइ।

राख कराहु नल जो कोऊ मन मोहि देहु मंगाइ॥१९६॥

कविवर 'प्रसाद' भी इसी स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि प्रेम के विरह मिलन में सुख-दुःख आँख और मन का खेल खेलते हुए नाचेंगे—

मानव जीवन वेदी पर परिणय है विरह मिलन का।

सुख दुःख दोनों नाचेंगे है खेल आँख और मन का॥

अस्तु, कवि ने नल को 'ज्ञान' रूप में और दमयंती को 'अमृत' रूप में चित्रित कर स्त्री-पुरुष की समानता के सिद्धान्त की भी पुष्टि की है। यह भारतीय विचार सरणी का अनुगमन करता है। आर्य धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री अर्द्धांगिनी है। स्त्री-पुरुष दोनों

ही बराबर के जीवन साथी हैं। एक ही रूप भाँति रखने के निमित्त स्त्री-पुरुष रूपों में विभक्त हुआ। स्त्री शक्ति रूपा है, और पुरुष शिव रूप—

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया शिव ।
कृतं द्विधा मत्पदं स्त्री पुमानिति महान् ॥१०॥
शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा ।
शिव शक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्व दर्शिनः
वदन्ति मां महाराज तत् एव परात्परम् ॥१८॥

—महा भागवत भगवती गीता, चतुर्थ अध्याय

प्रस्तुत सूफी प्रेम कथानक काव्यों में मधु मालती, पद्मावत का दर्पण एवं मालिका के देश का भी मंजुप्रभा का वर्णन भी विशेष रुचि के साथ किया गया है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु प्रेम में पोषित एवं उपवन आम सुगंधित फल फूल पशु पक्षी, कुमुदी बावड़ी नगर, देश नगर निवासी वनिहारिन हाट, बाजार, दूध मन्दिर धूप पवन और हाथी घोड़े आदि का वर्णन करते हुए उसमें प्रेमपूर्ण उत्कर्ष करता गया है। कवि कुंडलपुर की उपमा बैकुंठ से देता है और कहता है कि वह धार्मिक देश है जहाँ प्रत्येक जाति के लोग हरि के ध्यान में लीन रहते हैं। वहाँ चारों ओर सब जन प्रजा धर्मों की तरह जगत से उदासीन होकर निश्चय के साथ प्रेम में गड़े हैं उसी के प्रेम ध्यान में एक पग से खड़े हैं। उनका प्रेमाग्नि माना जल को ठूंठ बना देने वाली तपस्या है और उनकी प्रशोन्मत्तता महत्व वर्णन है जो उन्हें प्रेमाग्नि में अनुरंजित नवीन कोंपलें प्रदान करता है। जब जैसे वे प्रेमाग्नि में तपते हैं वैसे वैसे उनका सारा तन भी कंचन हो जाता है। उनकी शाखा के असमान फूलों से सुवासित होने लगते हैं। पक जाने पर वे गिर जाते हैं पर उनका प्रेम छोटा नहीं पड़ता। वे सदा एक ही पाथिव (प्रेमामृत अथवा परमात्मा दर्शन) के ध्यान रहते हैं परहित के लिये सदा झुके रहते हैं।

वे (तरुवर) मानों कह रहे हों कि संसार में वे विरले ही हैं जो स्वयं धूप में खड़े रहकर दूसरे को छाया प्रदान करते हैं—

जो वह नगर नियर के आई। पुहुमि पेम मय देह दिखाई॥
मन कुछ परमपंत मरयादू। तरुहि आति सपर्श हुर ध्यानू॥
महाँ जू लिखि लिखि म धाव। सोई जन उपदेश दृढ़ाव॥
लाग बिरिछ नगर चहुँ पाला। मनु पेमी जन जगत उदासा॥
पिय के पेम पड़े ठीढ़ गाड़। तिन्ह ही ध्यान एक [illegible]॥
ज्यों ज्यों पेम अगिनि तन जारै। के पतझार [illegible]॥
त्यों त्यों होहिं पेम मरयाते। काहे पात [illegible]
जो पुनि जरे बहुरि तन भरे। डार डार [illegible]॥
पाके पाकि पाकि तब गिरै। तउ न पग [illegible]।
सकल एक पाथिव को चहै। पर [illegible]

ते तरुवर मनु इमि कहै, ते विरले [illegible]
सीत धूप आपन [illegible]

पनघट का दृश्य तो बड़ा ही सरस और चमत्कार पूर्ण है। पनिहारिनों की पंक्ति मुनियों की पंक्ति की तरह है। जैसे बड़े मुनि छोटे मुनियों को उपदेश देते हैं वैसे ही पनिहारिनों का भी उपदेश चलता है। ये एक दूसरी को पैरों की ओर दृष्टि रख घट की ओर ध्यान देने का उपदेश देती हैं। बांकी दृष्टि सीधी कर लेने सिर में बोझ और बाट रपटीली होने की चेतावनी दी जाती है आदि। यह सारा उपदेश ज्ञान साधना की ओर भी संकेत करता है जैसे—मन को एकाग्र करना चाहिए। घट रूपी शरीर में ही परमात्मा रूपी आत्मा है उसमें ध्यान लगाओ। घट रूपी शरीर कुम्भ रूपी बोझ है। ज्ञानमार्ग सूक्ष्म है मन के चंचल होने पर उस मार्ग से च्युत हो जाना पड़ता है। फिर तो कब नवीन शरीर मिलेगा और कब परमात्मा की कृपा होगी—

पनिहारी देखीं मृग नैनी । गज गामिनि पी कोकिल बैनी ॥
पहिरे चीर सो भोतन भोनी । राइमुनिहि की ज्यों मग चाली ॥
सेमु पात कहँ जा हार्थे । मैनरहु पानी कलसा माथें ॥
निपट लाज सौं आवहि जाहीं । पाइन दिस्टि सुरत घट माहीं ॥
जो कोई सखी नैक दृग फेरे । सूधी दिस्टि बांक के हेरे ॥
मिल सब सखी ताहि समुझावहिं । जम परदेसिन पंथ बतावहिं ॥
मन चेतहु घट माहं मन देहु । बांकी दिस्टि सूध कर लेहु ॥
माथें बोझ बाट रपटीली । रपट परे दुख होइ छबीली ॥
जो घट फोरि जाहि घर छूछ । का पुनि कहब कंत के पूछे ॥
रपट फोरि घट होइ जब बिन पानी बिलसाहिं ।
पुनि भी कब माथा चढ़ कब कुम्हार कहँ जाहिं ॥४९॥

दमयंती के प्रेम के संबंध में थोड़ा सा स्पष्टीकरण करना उचित होगा। मूल कथा में हंस नल-दमयंती के बीच प्रेम संदेशा ले जाने का काम करते हैं जिससे दोनों में गुण श्रवण द्वारा पूर्वानुराग उत्पन्न होता है। नल दमन में कवि ने हंस के स्थान पर मालिन की योजना की है। परंतु मालिन केवल नल को ही दमयंती का पता देती है और तत्पश्चात् लुप्त हो जाती है। दमयंती को नल के विषय में पता देने वाला कोई नहीं। कवि ने यह काम 'प्रेम' से लिया है और इस प्रकार वह प्रेम का माहात्म्य दिखाना चाहता है। उसका कहना है कि प्रेमी और प्रेमिका के बीच दूत का काम प्रेम ही करता है —

मिला जो चाहौ पीउ सौं, तौ पग करो पहु नेम ।
प्रेमी प्रीतम मिलन की बीच बसीठ सो प्रेम ॥१२७॥

प्रेम का आकर्षण ऐसा है कि जो जिसके रंग में रँगता है वह भी उसके मद में मस्त हो जाता है। जो जिसको चाहता है वह भी उसको चाहने लगता है। दोनों एक ही प्रेमाग्नि ताप से तप्त होते हैं। दोनों ओर प्रेम ही दूत संबंध बनाता हुआ दोनों को सुरति डोरी से जोड़े रखता है। सच्ची प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। तन तो केवल देखने मात्र के लिये अलग है। वास्तव में वह एकमात्र प्रेम रूपी परमात्मा ही सब जगह व्याप्त है। जब प्रेम प्रबल हो जाता है तब दोनों में कोई भेद नहीं रहता। जैसा ने रक्त

लगाया ही था कि मजनूँ की आँखों से वह निकल पड़ा। इसलिये अंतर तब तक ही दिखाई देता है जब तक 'मैं' और 'तू' की जुदाई बनी हुई रहती है। प्रेम में तन्मय हो जाने पर तन और प्राण एक हो जाते हैं। तन उसी प्रतन रूपी परमात्मा में है और वह प्रतम भी समस्त तन में व्याप्त है। इस प्रकार ज्ञान होने पर दोनों प्रेमी प्रतनमय होकर 'मैं' रूप—'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' हो जाते हैं। यही प्रेमाख्यानक काव्यों का अद्वैत सिद्धांत है जो कवि का वास्तविक अभिप्राय है —

जो कोऊ जाके रंग राती । सोऊ पुनि ताके मन मातै ॥
जो जिहि चहै चहै तिहि सोऊ । एकहि ताय तपे मिलि दोऊ ॥
पेम कसौटि एक दुहुँ ओरा । कहै सुरत डोरी कर जोरा ॥
साँची प्रीत न रहै दुरानी । जिन चाखों जाई तिन जानी ॥
तन यह बिरचि प्राण को प्यारा । सो एकहु जो जाननहारा ॥
सो पुनि प्रबल प्रीति जब होई । तब तिनहुँ महँ भेद न कोई ॥
जैसे कहा जो रक्त बहावा । कहा मजनू के तनहिं आवा ॥
अंतर तौलौं देइ दिखाई । जौलौं मैं तू बीच जुदाई ॥
तनमें भए न अन्तर कोई । तन औ प्रान सो एकै होई ॥
तन सब ताहि प्रतम महँ प्रतन सब तन माहँ ।
वही प्रतम तब मैं भयो प्रतन दुतिय पुनि नाहँ ॥११८॥

परंतु जिज्ञासा पूरी तरह शांत नहीं होती। परमात्मा के संबंध में भी पहले से ही सुनासुनाया या संस्कार के रूप में, कुछ न कुछ ज्ञान बना रहता है। जब तक वह ज्ञान नहीं है तब तक ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना बेकार सा ही है। जब आधार ही नहीं तो आधेय कहाँ से होगा। इससे विदित होता है कि दमयंती को नल के रूप सौंदर्य का पता पहले से अवश्य था। पुराने जमाने में राजकुमारों और राजकुमारियों के चित्रों का विनिमयार्थ आदान प्रदान एक राज्य से दूसरे राज्य में बराबर होता था। उन चित्रों का परिचय भी दिया जाता था। इसी आधार पर यह कह सकते हैं कि दमयंती को नल के विषय में पूरी जानकारी थी। यही नहीं उसके हृदय में नल के प्रेम की चिनगारी पड़ चुकी थी। काव्य के निम्नलिखित दो उद्धरणों में इस बात के संकेत मिलते हैं —

प्रथम पत्र नल चित्र बनावा । सहज कुसुम ताके रंग लावा ॥
देखि सो प्रबल बरन उजियारा । परा हुता हियरें चिनगारा ॥
अब सखि प्रेम पवन सो लागा । सुलगा हिया बरन तन लागा ॥

(दोहा—१४०

इसमें 'परा हुता हियरें चिनगारा' बतलाता है कि दमयंती के हृदय में नल का प्रेम चिनगारी के रूप में पहले से पड़ा हुआ था।

दूसरा उद्धरण—

नल उजैन राजा जो कहावा । दम बारी तासों चित लावा ॥
मुनिवत प्रबल बरन उजियारा । तिहि कर भरय लगी जरझारा ॥

गहै दाह हियरै महं परा। सँका गहै प्राग उर धरा॥
तिहि के रूप चित्र एक कीता। गहै राम के बामें सीता॥
निसि दिन रहै पेम अनुरागी। ओट होइ तबही बैरागी॥
रोवै मन देइ चित्र महं देखि देखि यह चित्र।
जिहि को ऐसो चित्र यह, कैसो धौं सो मित्र॥१६५॥

इसमें 'सुनियत' शब्द से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि सखियों ने नल के 'गुणानुवर्णन' होने के विषय में सुन रखा था। अतएव दमयंती के हृदय में नल के प्रति जो प्रेम उत्पन्न हुआ वह गुण श्रवण चित्र और स्वप्न दर्शन से हुआ।

कवि ने सूफियों की दो अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया है। उनमें से एक तो है 'मधुशाला' और दूसरा है 'चित्र विधान'। मधुशाला के दो उदाहरण दिए जाते हैं।

पहला—

भौ उर भाठी तन पेम चुआऊं। नल कै कथा सु मसकै लाऊँ॥
ऐसो पेम मयी मधु ढारौं। चाखौं पिया पेम मद बारौं॥

× × ×

पेमो पीकमहार के चाखत गिरत छकि जाँहि।
एक पियाला फिर पिये दूसर देहि अंघाहि॥२६॥

दूसरा—

चित्र सुराही मन पियाला। मद यह प्रीति पिवै यह बाला॥

चित्र विधान का एक उदाहरण इस प्रकार है:—

जदपि तोर चित्र मोह पाहीं। रात दिवस चितवौं तिहि माहीं॥
अँखियाँ सो तासो बिरमाऊं। मन चंचल धावै न उहाऊँ॥
सो तोरे मिल भूरत नाहीं। आप रहै धौ तन कै दाहै॥
जिय मिल तरत रूप कर भूखा। तिहि कर चित्र दिखावत रूखा॥
यह जानी यह चित्र न जीऊ। जिय को जीव प्रान सो पीऊ॥

दोहा—१५७

इसमें चित्र विधान के साथ साथ ज्ञान और प्रेम साधना का चित्र भी खींच दिया गया है।

## व्यवहार धर्म

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ज्ञान और प्रेम के साथ-साथ व्यवहार धर्म का भी प्रतिपादन करना चाहता है। इसीलिये काव्य के उत्तरार्द्ध में (दमयंती के स्वयंवर से लेकर अंत तक) कहानी अधिकतर लौकिक रूप में चलती है जिसमें धर्म का महत्त्व दरसाया गया है। लोक व्यवहार धर्म पर आधारित होना चाहिए और धर्म सत्य पर। सत्य पूर्वक धर्मावलंबन करने से मनुष्य को कोई नहीं सता सकता। धर्म उसका सहायक होता है और जिसका धर्म सहायक है उसको इहलोक एवं परलोक का कोई भय नहीं

रहता। यों तो नल पहले से ही सत्य और धर्म पर चलता था, परन्तु प्रेमसाधना में फँसकर और दमयंती जैसी स्त्री रत्न मिल जाने पर उसके बल पौरुष, उत्साह और उत्तरदायित्व में अधिक वृद्धि हो गई। उसके अंदर जो कुछ अपरिपूर्णता थी वह सब जाती रही और वह पूर्ण मानव में परिवर्तित हो गया। त्रिभुवनपुरी संपन्न त्रिलोक सुंदरी को प्राप्त कर लेने पर भी वह केवल भोगों में लिप्त नहीं हुआ। वह धर्म और राजनीति के अनुसार राजकाज करने लगा जिससे प्रजा सुखी रहने लगी और चारों ओर धर्म का बोलबाला हो गया। हरिस्मरण के बिना कोई काम नहीं होता था। वह सदा पवित्र रहता था और नित्य प्रचुर दान देता था —

नित नल धरम पंथ पग धरई। राजनीति बरतो सब करई॥
परजा सुखी धरम कर राजू। हरि सुमिरन बिन और न काजू॥
सदा पवित्र रैन दिन रहई। दान प्रवाह नदी नित बहई॥
ऐसो धरमवंत जो होई। ताके विघन न ब्यापै कोई॥
जहां जहां दृष्टि धरम सहाई। जहां सत्य तहां पाप न जाई॥
धरम सहाय कोटि दुख टारै। धरम सबू संताप निवारै॥

सजन धरम जग पुरुष जो करो तिहि सबै सहाइ।
दुहुं लोक को भय हरै, जा कहुं धरम सहाइ॥२४१॥

ऐसे कर्तव्य परायण सत्यवादी और धर्मप्राण राजा को संसार का ऐश्वर्य स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये कवि ने नलदमयंती के सुखभोग का भी पूरा वर्णन किया है —

होइ नाम पुनि सदा बधावा। विविधा सुख संजोग बनावा॥
भोग बिलास करैं मिलि दोऊ। रातहि द्यौस न होइ बिछोऊ॥
दोऊ एक पेम मद माते। अन्तहकरन एक रंग राते॥
दो मन मिलि जो होहि इक ठाऊं। तिहि सुख का उपमा को बताऊं॥
भी घर राज भोग कर साजू। भोग न कीनों सबै समाजू॥
दोऊ रहे फूल से फबे। फूलन ज्यों सुबास रंग रमे॥
दिन दोइ फूल रंग की कली। रंग होहि मिलि एकै रली॥
मिला कवंल मधुकर कर जोरा। पेम सरोवर लहि हिलोरा॥
भंवर समाइ कवंल महुं रहे। कवंल सो लिपिट भवंर कहुं गहे॥

दोऊ पावें पेम रस हिये जिमाप हुलास।
रात द्यौस संगहि रहैं, षट रितु बारह मास॥२४३॥

अन्यत्र कहा जा चुका है कि ऐसे सत्यवादी और धर्मात्मा पुरुषों के ऊपर जब विपत्ति आती है तो उसका कारण प्रारब्ध समझना चाहिए। कलियुग के कोप से नलदमयंती के विपत्ति में फँसने का कारण कवि ने प्रारब्ध ही बताया है—

प्रारब्ध पै अति बरियारा। तो न टरै काहु कर टारा॥
दुख सुख होनहार जो होई। जिहि कहुं जतन रहे होइ सोई॥
मिटै न प्रारब्ध कर भोगू। ज्यों होना त्यों होइ संजोगू॥

परम पवित्र जिन झूठ न बोला । परालब्ध बस बन बन डोला ।।
नल दमयंत परम मन दीन्हा । परालब्ध दुसती तिन कीन्हा ।।
करम धरम त्यागी संजोगी । सोऊ परालब्ध के भोगी ।।
परालब्ध बाँधी यह काया । आतम जीव भयो मिलि माया ।।
यह सब परालब्ध कर रचना । तेही कीन्ह तस गुन मैना ।।
परालब्ध मिलि भए एक ठारे । परालब्ध होइ है पुनि न्यारे ।।
परालब्ध दुख सुख बंध जिन आवहिं जिन जाहिं ।
हरख सोक बिसराइ मन नित रहु ताहीं माहिं ।।१३४।।

इसमें कवि ने आवागमन (जिन आवहिं जिन जाहिं) का कारण प्रारब्ध बताया है, जो भारतीय विचारधारा है । अस्तु परंतु अंत में धर्म की विजय होती है । कलियुग परास्त हुआ और नल दमयंती ने विजय प्राप्त करते हुए शेष जीवन धर्मानुसार सुखपूर्वक व्यतीत किया । इस प्रकार कवि ने धर्म, प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन किया है । धर्म से प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होता है और प्रेम (भक्ति) से ज्ञान । ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है । पार्वती हिमालय से कहती हैं—

ज्ञानात् संजायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम् ।
धर्मात् संजायते भक्तिधर्मो यज्ञादिको मतः ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं मदंशं रूपमाश्रयेत् ।।१०।।

महा भागवत भगवती गीता, प्रथम अध्याय

धर्म (यज्ञादि कर्म) और प्रेम (भक्ति) का वास्तविक क्षेत्र गृहस्थाश्रम है । ज्ञान के लिये गृहस्थाश्रम (संसार) त्याग करना पड़ता है । प्रवृत्ति मार्गी वृद्धावस्था में इस मार्ग का अवलंबन करते हैं । कवि ने दमयंती की मृत्यु हो जाने पर नल से भी गृहस्थाश्रम छुड़ाया[1]—

कहु मे बचन जस बैठि अगोरें । यह तजि भौत सवार सकोरें ।।
लोग कुटुंब दौलत सब त्यागा । छूटा मोह भीत मन लागा ।।
मन तिहि देह तन सुरत नगाई । प्रान तिनहि में रहा समाई ।।
उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । जल वियोग संजोग समाना ।।
सुमिरन भजन बिसर सब गयेऊ । जाकी भयो सोक सब भयेऊ ।।
सुमिरन भजन देह मिल होई । सो तन जिय तौं प्रगट बिछोई ।।
मंदिर ज्यों तन कहँ जड़ जाना । चेतन पुरुष अमय पहिचाना ।।
जद्यपि तिहि काया यह त्यागी । पै यह रहँ यद्यपि लौं लागी ।।
आदि अनादि पूरन जब भई । वैही वस्तु विमल तब गई ।।
जद्यपि जिउ तन कों तजत सोक न सवै परीत ।
जब दरसै जिउ को दरस, तब पावै परतीत ।।७।।

पादटिप्पणी
१ बीकानेर 'ख' प्रति के अंत में दोहा ७ और उसकी चौपाइयाँ ।

हुआ काल्हि सो राज समाजू । आज भाइ प्रगटा यह साजू ॥
जे बन तरा पवितर रहे । ते ताते भूभल महँ दहे ॥
जे तन पुहुप भरे भरतारे । सो काँटी तर लोटनि लाग ॥
ताती लाग सबै तन जरै । उड़ि उड़ि धूरि सीस पर परै ॥

पथ माहुत पुत को कठक धन दीह रवि धूप ।
पग आहर बौसेत महँ, चला जाइ नल भूप ॥२१४॥

राजभ्रष्ट राजा नल आलंबन है । पुष्कर का कृत्य उद्दीपन है । प्रजा और दमयंती का क्रंदन अनुभाव है । विषाद, चिंता आदि संचारी भाव हैं ।

[मधु मालत]

नल तिहि सोक सीस महँ मारा । भूका हार लाई तन घारा ॥
घन घन कूक डाह दै रोवै । कहिर मार मैमन न बिछोहै ॥
मैमन अधिन लपट मत काढ़े । आप चरा औरहि कर डाढ़े ॥
मन की घर मोरहुँ मन भयऊ । अब घर सो सराप होइ गयेऊ ॥
सत लै रहु तिहि बिन कर कीन्हीं । दै सराप कत धार न कीन्हीं ॥
पर धुनि का मैरी प्रतिपाला । सो तो गहनि प्रान क्यों जाला ॥
मो सो मरे आकर जिउ सई । मम जिउ लै पै मरन न देई ॥
मरन चहों पै मरन न पावों । सुमिरन करौं हारती गावों ॥
पीव बरज अब प्रान बिहूना । तन जिहि लागि जिया तों सूना ॥

मे बिलाप कर कर जिकै रोवैं की बिलखाय ।
मुवा चहै कैसि मरै, जो जम न प्रान लै जाय ॥२॥

दमयंती की मृत्यु आलंबन है । उसकी पतिभक्ति आदि गुण-स्मरण उद्दीपन है । नल का रोदन और दैव निंदा अनुभाव है । निर्वेद मोह स्मृति और प्रलापादि संचारी हैं ।

## अद्भुत रस

स्थायी भाव—विस्मय । आलंबन—अलौकिक और आश्चर्य जनक वस्तु और कार्य—
जो देखै तौ कह नल ठाढ़े । नल बिन क्यों नल हूँ बन बाढ़े ॥
औ पुनि नल ता हिय को सभाला । जो देखा सो नल कै पाला ॥
दुचिते पछी सोच जिम करै । विधि किहि भाँति लागि पिउ परै ॥
जो अब पूछें जनम भर रोऊँ । पावा पीउ हाथ सों खोऊँ ॥
एहि समा मह पीउ को पावा । तो पाला पुनि हाथ न आवा ॥
कौतुक दुसम सभा यह पाई । औ अब बिमल माहि उठिआई ॥

× × ×

—दो०—२०१

जब नहिं मिलित होइ बहु बाधा । तब लिन परमु अचित अराधा ॥
दीन बंधु बड़ अंतरजामी । बड़ औघट अनाथ बिसरामी ॥

मूसें पंथ बतावन हारे । संकट परें छुड़ावन हारे ॥
तुम जानौं जिहि मन हौं माती । जाके प्रेम रंग उर राती ॥
कृपा करहु मोहि वहै मिलावहु । धरहि को धर तिन पाहि छुड़ावहु ॥
असरन सरन सरन जब भई । तब प्रकास बानी तिहि भई ॥
[दोहा—२०४

× × ×

सुन प्रकास बानी उर धारी । तब अधर दर निरखि निहारी ॥
देखे त्रिगुन प्रसन तिन माहीं । एक पुरुष दूजा कोउ नाहीं ॥
वहै प्रबल रार्खें थिर पाई । और अधर हूं रहै बताई ॥
एक सो पुरुष निरखि पहिचाना । मिटा भरम मन निहचैं आना ॥
जिन्हेंचि कहति यहै सो पीऊ । जिहि सें पाया आपन जीऊ ॥
यह मेरा पीतम अपनाया । सें उर अमाला पहिराया ॥
धरें धर वह दूरी न भई । जाको यहै ताहि पै भई ॥
[दोहा—२०५

× × ×

औ पुनि इन्द्रादिक जो देऊ । इहि चरित्र चकित भए तऊ ॥
[दोहा—२०६

वास्तविक नल का दिखाई देना और कई नलों का होना आलंबन । नल को वरण करने का एक मात्र अवसर स्वयंवर सभा ही होना उद्दीपन । प्रार्थना करना आकाश वाणी का होना और नल को वरण करना आदि रोमांच उत्पन्न करने वाले कार्य संचारी । इंद्रादि देवताओं को विस्मय होना अद्भुत रस है ।

शांतरस

स्थायी भाव – निर्वेद या शम । आलंबन—अनित्य संसार की निस्सारता का ज्ञान या परमात्मा चिंतन । यह रस दमयंती की मृत्यु के पश्चात् नल को निर्वेद होने पर व्यंजित होता है—

राज काज सों भयेउ उदासी । यह तजि भया चहै बनबासी ॥
पुत्र को इन्द्रसेन जो नावा । निज आपन जिहि बरन सुनावा ॥
कहेसि पुत्र न आपन राजू । औ जो कछु सब राज समाजू ॥
मनकहि भूमि सुमिन ठहराया । पाट बैठि सिर छत्र धराया ॥
मोहि अब राज बंधिपह भयऊ । राज पाट सों चित उठ गयऊ ॥
राज मंदिर अब भय पंच कूमें । सीप सूर त्रिगुणा कुस सोहैं ॥
दावानल होइ भइ फुलवारी । हीर पहाड़ अगिन चिनगारी ॥
मंगहि फूल गड़ होइ कांटे । बिस्तर पंथ काट ज्यों चांटे ॥
मोहि अब भसम चहै उर छाला । पै यह नाव अपन कह माला ॥

× × ×

पर कोई मोहि ना चहै भसम जो तन दियो मह ।
मन माला बाना बरौं, छाला तजन सों देह ॥६॥

चढ़ि ये गगन, चल बैठि झरोखे । चढ़ तजि मीन सवांर सरोखें ॥
लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मोल मन लागा ॥
मन तिहि देह देह तन सुरत समाई । प्रान तिन्हहि में रहा समाई ॥
उपजा ज्ञान अज्ञान हिराना । भा वियोग संजोग समाना ॥

[दोहा—७

× × ×

'नल दमन' में युद्ध का प्रसंग न होने के कारण वीर रस का अभाव है। परंतु बहुत से लोग 'दया वीर' और 'धर्म वीर' को भी वीर रस के अंतर्गत मानते हैं। नल में ये दोनों बातें पाई जाती हैं। इस दृष्टि से जहाँ जहाँ ऐसे प्रसंग आए हैं वहाँ वहाँ यह रस भी मानना चाहिए। भयानक रस के कई अवसर आए हैं जैसे—दमयंती के हिंसक पशुओं से युक्त वन में पहुँचना जहाँ सिंह दहाड़ रहा है और मदमाते हाथियों द्वारा सार्थवाहों के मारे जाने की घटना का होना परंतु न जाने कवि ने क्यों इन अवसरों पर इस रस का परिपाक नहीं होने दिया। हो सकता है प्रेम साधना मार्ग के पथिकों को भयानक का अनुभव न होना यही मात्र कारण हो। यही बात रौद्र और वीभत्स रसों के संबंध में भी समझना चाहिए। साधना वालों को क्रोध और घृणा से क्या नाता। रहा हास्य रस वह वैसे ही मध्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा उपेक्षित है, इसलिये प्रस्तुत कवि ने भी उससे विशेष संबंध नहीं रखा। फिर भी नल दमयंती के प्रथम मिलन अवसर पर सखियों के सेन कूट में इस रस की थोड़ी सी झलक मिलती है।

## अलंकार

अलंकारों का भी बड़ा रमणीय विधान किया गया है। अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना पाई जाती है। उत्प्रेक्षा रूपक और अतिशयोक्ति विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं। अनुप्रासों के फेर में कवि बहुत नहीं पड़ा। परंतु जहाँ कहीं आए हैं तो अत्यंत स्वाभाविक रूप में। कुछ अलंकारों के उदाहरण दिए जाते हैं—

### अधिक ताद्रूप्य रूपक

मुईं पर चांद उवा जनु आई । ओर प्रकाश दीन्ह दिखराई ॥
देह जोत पृथ्वी ससि भवा । नभ वह और चंद परगटा ॥

[दोहा—७१

दमयंती के वदन उपमेय को 'नभ वह और चंद परगटा' पद द्वारा उपमान चंद्रमा से भिन्न कहा गया है तथा 'पृथ्वी ससिभवा' कथन द्वारा वह उपमान से बढ़कर हो जाता है। इसलिये अधिक ताद्रूप्य है।

### अभेद रूपक

[सावयव एक देश विवर्ति]

निरखत नैन मैन झूरि जाए । विरह सिंधु हिम सों जल जाए ॥

बदन चंद पट घन महं लियो । तम निस ज्यों दिन हिय इमि भयो ॥
बरख लाग झकोर झकोरी । अंचर भीज चुअत होई ओरी ॥*
(दोहा—१०८

चंदेरी में सहदेव ब्राह्मण के मिलने पर दमयंती रोने लगती है। उसकी अश्रुधारा का वर्षा से रूपक बाँधा गया है। नयन मेघ रूप होकर चुइ आए हैं। हृदय विरह सिंधु है जहाँ से मेघ जल ले गए हैं। बदन चंद्रमा रूप है और पट घटा रूप जिसमें बदन रूपी चंद्रमा छिप गया है [ दमयंती रोते समय मुख को वस्त्र से ढक लेती है इसलिये वस्त्र को घटा रूप कहा गया है] । हृदय रूपी दिन रात्रि रूपी तम में परिणत हो गया है। अश्रु रूपी वर्षा रह रह कर होने लगी है। अंचला भीग कर ओरी (छप्पर का ढलुवाँ भाग) रूप हो चूने लगा है। इसमें सब अवयवों का शब्दों द्वारा कथन किया गया है, परन्तु वर्षा उपमान जिस अश्रु धर्म का आरोप है उस अश्रु का शब्द द्वारा कथन नहीं किया गया है। केवल रूप बल से जाना जाता है। इसलिए 'सावयव एक देश विवर्ति अभेद रूपक' है।

### माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक

मन चातक कहँ भा पिउ स्वाती । पिउ चकोर कहँ मन ससि राती ॥
मन सो मीन पावा पिउ पानी । पिउ अलि मन अंबुज अरघानी ॥
मन कुमुदिनि प्रीतम ससि पावा । पिउ पतंग मन दीप सुभावा ॥
मन महि कीं पिउ मेह सुभाऊ । पिउ सारंग कहँ मन इव रागू ॥
मन सीपी पावा पिउ स्वाती । पीउ भूख भोजन मन राती ॥
[दोहा—१२६

दमयंती में चातक आदि आरोप का कारण नल में स्वाती आदि का आरोप किया जाना है। दमयंती में ससि मीन कमल आदि बहुत से आरोप भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कथन किए गए हैं। ऐसे ही नल में भी किए गए हैं। जैसे-चकोर, पानी अलि आदि। अतएव 'माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक' है। परंपरित रूपक में एक आरोप दूसरे आरोप का कारण बनता है।

एक सांग रूपक का भी उदाहरण दिया जाता है जो काव्य का भी उत्तम नमूना है—

पहिरे रासा चीर सुहावा । तिहि प्रकार रवि विदित न आवा ॥
चिहुर रैन मुख ससि होइ ऊवा । नैन कलंक भौंह मनु चोवा ॥
कुंडल स्रवन देखि मन चाका । भ्रमक रहे जानहुं रथ चाका ॥
अमा जो सीसफूल उजियारा । छग मिग मिस नखत संचारा ॥
सुंदर तिलक सारथी छाजै । ताकर ओर्क अलप बिराजै ॥
सोहै धुमन जो अंजन लागा । मानहुं नापि भ्रिगन मुख लागा ॥

*तुलनीय—बरस मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ॥
पद्मावत् ३४६ ।

हौं मैं अर्बर इक्षी बैरागी । तू तरीम सत सुर अनुरागी ॥
× × ×
कोऊ कहै बड़ो अभागी । आपु आपदा आपुहि लागी ॥
× × ×

भाषा

कवि ने न तो जायसी की ठेठ ग्रामीण अवधी का ही प्रयोग किया है और न रामचरितमानस की संस्कृत मंडित का ही। उसने दोनों के बीच का रास्ता पकड़ा है। उसने महाभारत और पुराण साहित्य का भी पारायण किया था—

भारथ में जो कथा बखानी । आदि अंत जानी महं मानी ॥
बात बात में अमृत बनाई । कथा पुराण मथ कै बिसराई ॥

तात्पर्य यह कि महाभारत पढ़ने के पश्चात् उसने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की। दूसरी बात यह है कि उसने जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया है वह सूफी न हो भारतीय है जो उसने भारतीय ग्रंथों (धर्मशास्त्र) से प्राप्त किया। इस दृष्टि से वह संस्कृत का विद्वान सिद्ध होता है। इसलिये 'नल दमन' में उपर्युक्त ग्रंथों की भाषा का संतुलित रूप दृष्टिगोचर होता है। परंतु कवि ने ऐसी भाषा जानबूझकर प्रयुक्त नहीं की वरन् इसका निर्माण उसकी योग्यता के अनुसार स्वतः ही हो गया। वह प्रतिभाशाली कवि है इसलिये उसकी भाषा का माधुर्य गुण संपन्न, भाव पूर्ण मुहावरेदार एक रस और प्रवाह पूर्ण होना स्वाभाविक है। कहीं कहीं जो अंतर दिखाई देता है वह उसके ज्ञान प्रदर्शन। [जिसे वह 'गुप्तार्थ' कहता है] विशेष अभिलाषा के कारण है। वहाँ भाषा काव्य छिन्न होकर दर्शन शास्त्र की भाषा मात्र होकर रह जाती है। इसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

पिउ बोला प्यारी सुन तोसौं । निज मन मरम कहौं हौं तोसौं ॥
मैं जबसौं तो महँ जिउ डारा । तबसौं आप धरी न बिसारा ॥
छिन छिन सुरत धरम सम तोरी । मन तू ही मैं राखी चोरी ॥
जैसे मिरग नाद मन लावै । जो अलि कमल बास ज्यौं पावै ॥
चातक स्वाति बूंद कै आसा । निस दिन चित दै रहै प्यासा ॥
त्यौं तोसौं मैं लगन लगाई । सूफी ठौर ज्यौं सुरत मिलाई ॥
निस दिन सोच रहा मोहि तोरा । सुरत तुम छिन और न तोरा ॥
रहसि अकेल लखी मन मोरे । जो पिउ मोर रहै तनु तोरे ॥

हौं अपनों सत भाव कहि, अब बूझत हौं तोहि ।
तैं धौं प्रेम कैस सुनी, किमि जोन्यौ मन मोहि ॥२१८॥

जौ तुम पुनि पूछी मो पाहीं । जिनी सुनी सरवन दै नाहीं ॥
मैं जब सौं पिउ सौं जिउ लावा । तब ही सौं आपा बिसरावा ॥
तन मापन सो बिरापन कीन्हीं । जिउ लै काढ़ि पीउ महँ दीन्हीं ॥
जिउ पुनि जब पिउ सौं मिलि गयऊ । जिय कै ठौर पीउ पिउ भयऊ ॥
जिउ पिउ अन्तर भेद भुलाना । मन मिल पीउ पीउ कर बाना ॥

रोमहिं रोम रहा रम पीऊ । जीउ पीउ भा हौं निरजीऊ ॥
हुता जो मन में मैं अभिमाना । सो जरि प्रीतम माहिं समाना ॥
मन पुनि पीउ मिला ज्यों जीऊ । सो अब कहन लागि हौं पीऊ ॥
मन जिउ मेटि पीउ भा सही । हौं हौं कहूँ जो मोंम न रही ॥

जैसें दिनकर किरन मिलि तम प्रसत होइ जाइ ।
तैसें प्रेम प्रकास महँ हौं हौं गई हिराइ ॥१२१॥

ये प्रकरण स्वयंवर हो जाने पर नल दमयंती के मिलन अवसर के हैं वे एक दूसरे अपने-अपने प्रेम का वर्णन करते हैं। नल के प्रेम वर्णन में तो कवित्व है, परंतु दमयंती अपने प्रेम का जिस प्रकार वर्णन करती है उसमें काव्य न होकर वेदान्त बोल रहा है। उसमें कवि का मुख्यार्थ मुख्यार्थ न रहकर लक्ष्यार्थ हो गया है। उसमें जीउ (जीव) और पीउ (पीव परमात्मा) का ही विषय प्रधान होकर चल रहा है। जीउ (जीव) पीउ (पीव) में मिलकर एक हो गया है और 'हौं' जो अभिमान है वह नष्ट हो गया है। इस प्रकार जीउ (जीव) और पीउ (परमात्मा) की अद्वैतता सिद्ध की गई है। ध्यान देने की बात है कि नल के वर्णन में 'हौं' 'तू' और 'तें'—उत्तम और मध्यम पुरुष दोनों हैं। परंतु दमयंती के प्रेम कथन में प्रथम अर्धाली के 'तुम' को छोड़कर जिसका वास्तविक वर्णन से कोई संबंध नहीं उत्तम पुरुष के 'हौं' के अतिरिक्त मध्यम पुरुषवाचक शब्दों का अभाव है। आगे चलकर यह 'हौं' भी 'प्रेम प्रकास' में विलीन हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि ज्ञान अनेकता को मिटा कर एक (परमात्मा) को सिद्ध करता है और काव्य एक की अनेक व्यंजना करता है। जहाँ तक अनेकता में एक को देखने (एक की व्यंजना करने) का प्रश्न है वहाँ तक तो काव्य ज्ञान का साथ देता है और जहाँ ज्ञान ने अनेकता को मिटाना ही प्रारंभ किया तो वहीं काव्य ज्ञान का साथ छोड़ देता है। यही यही बात है। दमयंती सर्वत्र ऐसी ही कहती हो यह बात नहीं है। ऐसा उदाहरण तो विरल है। वह 'हौं' 'तैं', 'तू' का प्रयोग बराबर करती है और वहाँ भावा मुख्य काव्य की भाषा है जैसे—

कहसि कंत यौं करै न कोई । ज्यों तैं हौं बन माहिं बिछोई ॥
संग मिलै अंतर के द्वारा । मिलै मोहि होइ गयसि निरारा ॥
होतसि दूर न होत परेखा । मरै मिलै बिछुरन का लेखा ॥
हुई मिलन भ सत हौं भारी । पूरी मिली तैं कीन्ह नियारी ॥
दमकी सुना मिल महँ प्यारा । सो प्रीतम तू नैन निहारा ॥
जिहिं हित सों मुहँ नैन बनाई । मरै जाइ सुख नींद सुवाई ॥
सुख सुवाइ पुनि कीन्ह बिछोऊ । ऐसी करै मिलै महँ कोऊ ॥
जो जानों तू कपट सोवावसि । मोहि सुवाइ आपा बिसरावसि ॥
तो हौं किहि कारन तब सोऊँ । तो सो रतन मोर नहिं खोऊँ ॥

कंठ लगाइ सुवाइ संग, गाठ परी मन माहिं ।
सो जीनी अबहूँ मिली गांठ छोरि ही नाहिं ॥१२४॥

यहाँ ज्ञान की कोई ताक-झाँक नहीं है। परंतु जहाँ ज्ञान अनेक में एक ही परमात्मा का दर्शन कराता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वहाँ भी भाषा कवित्व को *लिये हुए है, यथा—*

हौं भै भवँर भयी बैरागी। तू सरोज सुख सर अनुरागी॥
हौं चातक पिउ पिउ रट मोरे। तूँ स्वाती भायें महि तोरे॥
मो मन चित चकोर जिम हेरे। तू तो चंद तोरे महि मेरे॥
मो गति ज्यों मछरी बिन पानी। तू अपने पानी अभिमानी॥

यहाँ व्यंग्यार्थ के अनुसार 'हौं' जीव 'तू' परमात्मा को सरोज, स्वाती, चंद्र और पानी आदि अनेक वस्तुओं में देख रहा है। इसलिये भाषा भावमय हो गई है। यहाँ एक बात विशेष रूप से दृष्टि गोचर होती है। वह यह कि यहाँ मन के साथ चित भी आया है। भारतीय अद्वैती मन और चित को अलग-अलग मानते हैं इसलिये कवि पर भारतीय अद्वैत ज्ञान का पूर्ण प्रभाव होने का यह भी एक प्रमाण है। अस्तु, भाषा के संबंध में एक बात यह है कि वह अवधी का तत्सामयिक रूप है। अपभ्रंश शब्दों से वह मुक्त है। परंतु साहित्यिक रूढ़ि का नितांत त्याग नहीं किया है। ऐसे शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग साहित्य में बहुत पुराने समय से होता आ रहा है जैसे—चाहि (अपेक्षाकृत) और बाज (छोड़ कर या बिना) शब्द। परंतु ये शब्द अधिक बार प्रयुक्त नहीं हुए हैं। एक दो स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि विदेशीयता लाया है जैसे—

मेर्ज कहाँ जो रकत बहावा। कहाँ मजनू के नैनहि आवा॥

और—

मौलाना मिलान किन्हु ताने। पढ़ें किताबहि पढ़हि दुआएं॥

इससे यहाँ भाषा में अस्वाभाविकता आ गई है।

## छंद विधान

सूरदास का छंद विधान सीधा सादा है। अन्य सूफियों की तरह उन्होंने भी दोहे चौपाई छंदों में रचना की है। चौपाइयों के दो भेद किए हैं। एक में सोलह मात्राएँ और दूसरे में पंद्रह मात्राएँ रखी हैं। दोहे में विशेष परिवर्तन नहीं पाया जाता पर कहीं-कहीं मात्राएँ घट बढ़ अवश्य हो गई हैं।

## सूक्तियाँ

सूरदास को सूक्तियों से भी बड़ा प्रेम है। ऐसे बहुत कम दोहे हैं जिनमें कोई उक्ति या तो सूक्ति के रूप में अथवा भाव व्यंजना के रूप में न आई हो। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। मेल विषय की सूक्ति देखिए :—

ग्वाल हुता जो चरत बछा, कौन समेटे गाइ।
फैल चूक सब चाहिये, तहाँ मेल कर जाइ॥२७५॥

कुछ अन्य तथ्य विषयक सूक्तियाँ भी दी जाती हैं—

अस्तुति निंदा पत अपत सबै काल पर होइ ।
उदत सूर अथमी नबै, अथवत नबै न कोइ ॥२५९॥

× × ×

तैसी चाल चलै बने, जैसे काल कर चाल ।
काल ख्याल न कराइये, आप काढ़िये काल ॥२६०॥

× × ×

ह्वौं मंजीठ के रंग ज्यों, औटि मिली तोहि संग ।
तू ततकाल उघड़ चला, जैसे रंग पतंग ॥२६१॥

× × ×

मीत बिछुर जो जीजिए का जीयें तेहि लाज ।
सजन बिछोह न कीजिये, जीव जाय तो जाय ॥२६३॥

× × ×

जैसे सुख में नेक दुख कहीं बहुत दुख देइ ।
तैसे दुख में नेक सुख बहुत मान मन सह ॥२६४॥

एक उदाहरण भाव व्यंजना का भी दिया जाता है—

पग बाहन सुख को कटक, छत्र छाँह रवि धूप ।
बन बाहर जीडोल महँ चला जाइ नल भूप ॥२६५॥

मुहावरेदार भाषा लिखने में तो कवि बेजोड़ है। यहाँ केवल एक उदाहरण दिया जाता है जिसमें 'चला सो चला' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है—

कलियुग कियो कठोर मन तोर मोह की डोर ।
चला सो चला उदास ह्वै मुख न फिरो तिहि ओर ॥२६६॥

वैसे सारे दोहे की ही भाषा मुहावरेदार है।

## दोष

'नल दमन' में दो त्रुटियाँ विशेष रूप से सामने आती हैं। एक तो अध्यात्म पक्ष का आवश्यकता से अधिक प्रतिपादन करना है जिससे यह कहीं-कहीं कोरा दर्शनशास्त्र का रूप धारण कर लेता है। दूसरा पद्मावत का अनुकरण है जिसके अनुसार कामशास्त्र में उल्लिखित पद्मिनी चित्रनी शंखिनी और हस्तिनी नामक चार प्रकार की स्त्रियों का तथा सोलह शृंगार और बारह आभरणों के नामों का कथन करना है जो काव्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखते। राम रावण जैसे शब्दों के प्रयोग भी जायसी के अनुकरण पर हुए हैं। एक स्थान पर तो इनके प्रयोग बहुत सुंदर बन पड़े हैं जैसे—

मन सीता पिउ राम प्रभु बिछुर भयो संजोग ।
जोड़ आसंकित मदन रावन हुआ वियोग ॥३५६॥

प्रेम[१] बीज मन में पुनि थाई । जरी अगिनि महं दियो[२] जगाई ॥
पेम[३] उसास पौन[४] सो बाढ़ै । बार बिरह बाती[५] भुइ काढ़ै ॥
प्रगट[६] करै उजासा जग जानै । जो प्रेमी[८] मुनि कै सुख मानै ॥
पेम बीज सों पौध लगाऊं । रकत सींच फुलवारि बनाऊं ॥
मनबन[९] बरन पुहुप उपजाऊं । प्रसि पेमी[१०] मन तिन्हहि[११] रिझाऊं ॥
एहि[१२] बिधि[१३] पेम बान[१४] हिय[१५] तामू । अबिच[१६] अमोल मोल मय तामू ॥
बिरह मद बानी मुख नामू । सानि प्रेम सों पेम बखानू ॥
घी[१८] उर[१९] माठ मथ[२०] पेम सुधाऊं । मन के कथा सु मन कै लाऊं ॥
ऐसो पेम मथी मधु कारीं[२१] । जासों दिया[२२] पेम मग बारीं ॥
या तन साधि जाग परि थाई । मन जागत कौं दुख न होई ॥
बिरहकै जात जाब उतनारै । जो तन रहै सो तन कहि होइ जावै ॥

दोहा—पेमी पीतमहार[२३] पै, जावत छिन छकि जांहि ।
एक पियाला फिरि[२४] पिय ढूमर[२५] देहि जमांहि ॥२६॥

एक सहस सतसठ सन अहा । संबत सतरह से चोदहा ॥
कै अरंभ तब कथा बखानी । कीन्ही[१] प्रगट पेम बिधि[२] बानी ॥
नल दामन[३] का[४] पेम बखाना । भया[५] मिलाप सोयंबर ठाना ॥
कलजुग नल सों जुवा खेलावा । बन हेराइ[६] बनवास देवावा ॥
पौ बन मैं बिछुरे नर नारी । पुनि मिलाप है भए एक ठारी ॥
जुवा खेल जीता पुनि राजू । भाइ पूरा सब बहु समाजू ॥
भारथ मे जो कथा बखानी । पाथि मत बानी महं मानी ॥
बात बात मैं जुगति बनाई । कथा पुराण मथ[८] कै[९] दिखराई ॥
बहुत ठौर जिन मरम दुरावा । सब[१०] काहू पै[११] जाइ न पावा ॥

दोहा—बहुत लोग बोहित चढ़े दधि[१२] पर जावें जांहि ।
मुकता[१३] पावै मरजिया जधि[१४] खोवै ता मांहि ॥२७॥

---

दोहा २६–१—बीज (का )। २—जोपू (का०)। ३—प्रेम (का०)। ४—पवन (का०)। ५—पानी (का )। ६—प्रगट (स )। ७—जो प्रकाश (स )। ८—पेमी छिन (स )। ९—पानी (स )। १०—प्रेमी (का )। ११—तिहि (का )। १२—इहि (का )। १३—मिस (का )। १४—कथा (का )। १५—वि (का )। १६—अकथ (स )। १७—जोपू (स )। १८—ऊ (का )। १९—उ (स की प्रति में नहीं है)। २०—मथि (का०)। २१—मारी (का०)। २२—क (स )। २३—पीतमहार (का )। २४—मर (का )। २५—जोक बहुरि समता (स )।

दो० २७—१—केची (का )। २—पुनि (का )। ३—दामनि (का ) ४—करि (का )। ५—मयो (का )। ६—हेराइ (स०)। ७—मई (स ) ८—थी (स )। ९—की (स )। १०—था (का०)। ११—पर (का )। १२—सब पुरानोहि चान्ह (स०)। १३—मुक्त सो पावइ मरजिया (स०)। १४—जो मस (का०)।

कै पारंभ कथा अब गाऊं[1] । जसी[2] सुनी सो[3] बरनि सुनाऊं ॥
कहत[4] कि अहा छत्रपति राजा । ऊंचे पाट[5] राज जिहि[6] छाजा[7] ॥
राजा मस प्रगटव जग गाऊं[8] । नगर उजैन राज कर ठाऊं[9] ॥
तिहि[10] भवन तस धीर न कोई । सउर पाट[11] पति[12] एकी सोई[13] ॥
राना राव सीस सब नावैं । बचन मानकर सीस चढ़ावैं ॥
जे बड़[14] पापी कम्ह भूराहीं । परबहि[15] करै हमरहि[16] छाहीं ॥
सूर समान तेज जप माना[17] । उजना[18] सीतल[19] चंदु[20] समाना ॥
सोभा सांत रूप रस भारी[21] । राज करै सत धरम बिचारै ॥
धरम बिचार न छाड़ै काऊ । राखत[22] धरम सीस किन जाऊ ॥
दोहा—अहो[23] धरम निधि राजा पंडित सब गुन पूर ।
तेज दया कर छर बर[24] लक्ष्मी[25] दान मति सूर ॥२८॥

घो[1] मति रूपवंत रजियारा । मानो काम कीन्ह अवतारा ॥
जिन्ह[2] मुख रूप कहूं[3] तिहि[4] नीका । सत मुख रूप रूपमुख फीका[5] ॥
करै न कोउ[6] रूप हरि ताउ[7] । घट[8] घनु घट लिखि दीन्ह बिधाउं ॥
सूर भांति बरनी[9] मुख जोती । पै[10] सूरहु मुख जोति न जोती[11] ॥
नैनहि[12] जोति करै रवि देखे । सीतल होहि[13] हमहिं तब पेखे ॥
सूरहु देखि सोभाइ न कोई । इन्ह[14] देखे सो दरसन[15] होई ॥*
जो मति[16] नैनन की रवि ताकै[17] । सो मति[18] छिन[19] ताकै[20] मुख जाकै[21] ॥
पुरुष नारि जाके[22] चित परा । फिरि भरि[23] जनम न चित सों टरा ॥
बहु रूप जग हीम[24] समाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥
दोहा—जे[25] रजबारै मन भरै मुनि[26] सोभा बैराग ॥
मगन बरन मन बरज भय बरन सगी[27] होइ[28] भाग ॥२९॥

दो० २८—१—कानू (स०) । २—जैसे सुने (स०) । ३—मुबर्ण (का०) । ४—कहा कि (का०) । ५—पात (स०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—म्बाहा (स०) ।
* यह चौपाई का० प्रति में नहीं है । ○ यह चौपाई स० प्रति में नहीं है ।
८—जानो (का०) । ९—जानो (का ) । १०—तिन्ह (स०) । ११—पति (स०) । १२—तप (का०) । १३—होई (का०) । १४—ये बरधाई पुरन्ह पड़ाही (स०) । १५—परबे (का ) । १६—हपर पुनि (का०) । १७—जाना (का०) । १८—उपमा (स०) । १९—सिवल (का०) । २०—चंद (स०) । २१—मारे (स०) २२—राखब (स०) । २३—बुधि (का०) । २४—बर सबर (स०) । २५—दाम दान (स०) ।

दो० २९—१—ऊ (स०) । २—जिहि (का०) । ३—कीन्ह (का०) । ४—तिहि (का०) । ५—टीका (स०) । ६—कोई (स०) । ७—बाते (स०) । ८—घट जिन नट (स०) । ९—बरनै (स०) । १०—सर (का०) । ११—ज्यो (स०) । १२—तनही (का०) । १३—होम्ह मसमपति (स०) । १४—तिहि (का ) । १५—दरसी (का ) । १६—पति (स ) । १७—देगै (स०) । १८—गद (स०) । १९—रम (का०) । २०—पाक (का०) । २१—ताकै (का०) । * यह चौपाई का० प्रति में पाठवीं है । २२—ताके (का०) । २३—फिर (स०) । २४—हीये (का०) । २५—जे रजिपारी मुनि प्रमुख (का०) । २६—जिन सोभा बराग (का०) । २७—सधी (का०) । २८—हैं (का०) । ‖ हेम—हिम बरफ पद्मावत २।१

पेमी पेम पंथ पग धारै । जब तब पेम अगम सुख[1] भारै ॥
पेम दिया देखै जिहि[2] बरा । तहं[3] पतंग होइ चाहै परा[4] ॥
धसै जो महूं पेम रस माता । सुन त्रिन पोर[5] होइ तिन राता ॥
सोमी[6] बात जा मन में भावै । फिर फिर बारंबार सुहाव ॥
सुनि[7] पिछली पदमिन[8] कै कथा । ताहि[9] सुनें एक होइ अवस्था ॥
मूरै[10] मरु सम सुनि करै । बिकस होइ तर[11] मुंई पुनि परै ॥
विद्यमान पेमी हुइ[12] आई । कथा पेम[13] [illegible] हिये समाई ॥
राम रंग सौं अधिक[14] पियारू । जिस बिन सूम चरचा ब्योहारू ॥
एक सुमी पावहिं[15] एक जाहीं । एक सेवा[16] महं[17] रहैं सदाहीं ॥
त आतम बिन पेम गुन सूझा । मर न जी अप अमर न सूझा ॥*

दोहा—पंडित कविता[18] कथकहा कावन[19] गनी अनेक ।
सदा सभा चरचा करै धरार पथ बिवेक[20] ॥१०॥

एक दिन सभा बैठ हुत[1] राजा । गुनी जनन कै पूरै[2] समाजा ॥
संगति[3] सभा पंडित सब आए । पायक मंत्री बहुत[4] बोलाए ॥
देठे[5] सब सेवा महं[6] बेठे । श्री सूतम (? सूतम) आए पुनि बैठे[7] ॥
सब गुनियै[8] आपन गुन काढा । भइ रस भवन सभा रस बाढा ॥
तिन्ह[9] महं पेम बात चलि परी । ससि[10] कै बाइ रूप पर परी ॥
यह कथ रूप होइ उजियारी । सोरह[12] कला संपूरन नारी ॥
सबै[13] कहा यह रूप बिसेषा । सिंगल[14] दीप कही[15] जिन्ह देखा ॥
सप्त दीप महं[16] और न दूजा । सिंघल[17] दीप रूप धरि[18] पूजा ॥
ओहि[19] दीप महं[20] पदमिनि होई । जंबहि[21] अवरौ सुनी न कोई ॥

दोहा—भी पुनि कछू अंतर नहीं, रंक राय[22] का भूप ।
घर घर अबला पदमिनी सो पुनि रूप अनूप ॥११॥

---

दोहा १ –१—मन (स ) । २—जिन्ह (स ) । ३—तिहि (का॰) । ४—बरा (स ) । ५—पेर (का ) । ६—सूतन (का ) । ७—निस बिसूसै (स ) । ८—प्रेमहि (का ) । ९—ताहु पर इक होइ (का ) । १ —म्यावै भवै सदन (स ) । ११—तरवन तन (स ) । १२—रोइ (स ) १३—मीम मैं बाइ (स ) । १४—बहुत (का ) । १५—पावै (का ) । १६—सेव (का॰) । १७—मैं (का ) । *यह चौपाई का प्रति में नहीं है । १८—गीता मित कथा (का ) । १९—पाइन (का ) । २०—अनेक (स ) ।

दोहा॰ ११–१—बैठियत (स ) । २—पूरी (का॰) । ३—संगत (स॰) । ४—सबै (का ) । ५—एती (स॰) । ६—मैं बिठे (का ) । ७—किठे (का ) । ८—गुनीयन (का॰) । ९—तिहि रस (का ) । १ —चलि पुनि (का ) । ११—भी किति (का ) । १२—सोरही किरण संपूर्ण (का ) । १३—सबहि कहा कि (का॰) । १४—संगल (स ) । १५—कहीं (का॰) । १६—मैं (का॰) । १७—सकल (स ) । १८—रस (का ) । १९—उन्हहिं (स॰) । २०—पदमन जो होइ (का॰) । २१—हस्तिनी (का॰) । २२—रान (का ) ।

माटिम एक अनूप[1] सुहाई । मायन चतुर अपूरब भाई ॥
तिन[2] उठि विनो[3] कीन्ह सिर[4] भागे । बोनो बचन पेम रस पागे ॥
महाराज निसचै यह बाता । मनि न जाइ बातु निज बाता ॥
सिंगल दीप हाई पदमिनी । और दीप[5] उपजत नहि सुनी ॥
पै करता जो सिरजन हारा । ताका[6] गति अति अपरपारा ॥
जो सिरजा चाहै तहँ[7] साई । सिरजै भूकता तास तस्याई ॥
तिन करतार एक पदमिनी । जिन अंगन[8] बरनत[9] कवि सुनी ॥
जंबू दीप माहे उपजाई । सुनी न कहीं[10] देखि हौ भाई ॥
प्रथम महुँ[11] सुनि साच न आनी । जब सो छबि[12] परखी तब मानी ॥

दोहा—विद्यमान अबहूँ सो महि कन्या पच्छिम माहिं ।
बर संजोग पै भासु सौं और बरे[13] पुनि नाहि ॥१२॥

नगर एक कुंडनपुर नाऊँ । बसत[1] मांझ[2] उपमा जिहि[3] साऊँ ॥
महाराज मैं एही भेखा । जंबू दीप सरूप[4] फिरि देखा ॥
देस देस कौ[5] गति हौं जानी । नगर नगर की कन बखानी ॥
पै अस अबू यह नगर सुहावा । दूजा और दिस्टि नहि आवा ॥
जिहि[6] सोभा बैकुंठ पचाना । कहीं[7] नगर एहीं[8] अनमाना[9] ॥
धबिर[1] ठौर रवनीक[1] बिसेखी[10] । कहूँ[11] न बनत बनी कछु देखी ॥
भीमसेन तिहि[12] नगर नरेसू । सो राजा बह ताकर देसू ॥
धनपार तिहि[13] मंडल सोई । ता[14] सरवर कर और न कोई ॥
ताके घर उपजी सो[15] बारी । बिधना पदमिनि कै[16] औतारी ॥

दोहा—भो पुनि ताके जनम कै कथा कही[17] बिस्तार ।
जिह[18] पुरुष के बचन सौं मा[19] ताकर औतार ॥१३॥

---

दोहा० १२—१—भरूप (कां०) । २—तिह उप (स०) । ३—विनु (कां०) ।
४—मूर (स ) । ५—बातननिजु पाता (कां०) । ६—देस (म०) । ७—ताकी (कां०) ।
८—सो (कां०) ९—भाग (कां०) । १०—बरनैं (कां०) । ११—महुँ (म०) ।
१२—महुं (कां०) । १३—मांगिन देखी (कां०) । १४—वरी बिन नाहि (कां०) ।

दोहा० १३—१—जग (म०) । २—अन्पिट (म०) । ३—जिन (म०) । ४—
तो एग्ह पेग्डा (म०) । ५—सुबै (कां ) । ६—कै (म ) । ७—अनूपा (म०) ।
८—दिरत (म ) । ९—जिन्ह (म०) । १०—बहु (कां ) । ११—तिन्हहीं (म०) ।
१२—मनमाना (म०) । १३—उपर (कां०) । १४—भौमक (कां०) । १५—बमुगी
(कां०) । १६—कहुँ बन बनै गति बिन देगी (कां०) । १७—तिन (म०) । १८—
तिह (म०) । १९—तामर बड कन्ह (म०) । २०—बहु (म०) । २१—को (म०) ।
२२—कहीं (कां०) । २३—महा (कां०) । २४—भया (म०) ।

पदुमिनि जाहि[१] बाढ़ एक करा । कर अंगुरिहि अमृत[२] रस भरा ।
जो पखार निरतन मुख पासहि[३] । जी[४] उठि ठाढ़ होइ ततकालहि[५] ॥
जनु[६] बिधि अमी छाप कर ढारी[७] । के न सके सरि दूसर नारी ॥
इक पदमिनि उर[८] अंमित भरी । सौ[९]किहि[१०] जोम दई[११] ग्रमतरी[१२]॥
महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ[१३] देखत बनि आई ॥
जनु[१४] ससीव पूर्यो ससि ऊवा । तासौं[१५] ऊंच जोति कर दूवा[१६] ॥
यह अचरज कि[१७] यह पदुमिनी । महाराज अबलौं नहि सुनी ॥
पहुँचे कंवल तिहूं पुर बासा । जग मा[१८] भौर भये[१९] तिहि[२०] आसा ॥
सुनि[२१] सोभा सब जगत लोभाना । सौ[२२] जाके कर बसे निधाना ॥

दोहा—जगत मरजिया पेम दधि[२३] मुक्ताहल[२४] सो तीय ।
सौं[२५] को पावें न[२६] तिरे को बूड़े[२७] दे जीय[२८] ॥२४॥

सुन धन[१] मुख ससि जोत अंजोरा । राजा को[२] मन भयो[३] चकोरा ॥
कंवल बास मधुकर जनु पाई । भरबराइ[४] चाहि उड़ि जाई ॥
मन तिहि[५] कथा सुनत[६] जिन डोला । गाहक रूप चोर सौं बोला ॥
कहु मालिन यह नगर सुहावा । है जग[७] मे जो अधिक बतावा ॥
कौन रूप यह नगर बिसेखा । जो ते अम्मृत[८] कांति जम देखा ॥
कैस[९] ठौर कैसा[१०] अस्थानू । कर मोसौं जिन नगर बखानू ॥
भौ[११] यह भीमसेन को राजा । कस मनुख्य कस राज समाजा ॥
ताके घर जु कही है नारी । रूप सरूप पदमिनी नारी ॥
ताकी जनम कथा कहु कैसे । जस[१२] है सुनी बरनि[१३] मिथ तैसें ॥

दोहा—चौंप देखि मालिन चतुर जोम उठी कहकाइ ।
सब[१४] ही नगर कथा कहौं[१५] सुनो[१६] राज चितलाइ ॥२५॥

---

दोहा १४-१—चाहु (स ) । २—अंगुरहु (स ) । ३—पास (स०) । ४—जिन (स ) । ५—उतकाल (स ) । ६—जिन (स ) । ७—धरी (का ) । ८—भो (का ) । ९—गुन (स०) । १०—कन्ह (स ) । ११—देइ (स ) । १२—उतरे (स०) । १३—जात (स०) । १४—जमु (स ) । १५—तामौं (स०) । १६—हुवा (का ) । १७—कै (का ) । १८—भया (स ) । १९—भूई (स ) । २०—तिन्ह (स ) । २१—सुनि (का ) । २२—जहं (स ) । २३—दिढ (स०) दधि—समुद्र । २४—मुक्ताराह सो पीय (का ) । २५—जहं (स०) । २६—तैतरै (स ) । २७—बूडे (स०) । २८—जीव (का ) ।

दोहा १५-१—सुन (का०) । २—का (का ) । ३—भया (स ) । ४—मधुर राइ (का ) । ५—तिन्हें (स ) । ६—सुनै कहि (का०) । ७—जु जगतहि मांझ (का ) ८—साच कहु जिस विधि ते (का०) । ९—कैसी (स०) । १०—कैस (स०) । ११—भीष (का ) । १२—जिस (का०) । १३—बर्न (का ) । १४—बरनू (का ) । १५—कहु (का ) । सुन्ह (स ) ।

जो यह नगर सिंगर[१] कै भाई । पुहुमि[२] पेम मग देइ[३] दिखाई ॥
जस कछु परमवंत अस्थानू । सबहिं[४] भाँति उपजै हर[५] ध्यानू ॥
जहाँ जु सिस्टि दिस्टि में आव । सोई जनु उपदेस बतावै ॥*
आगे[६] बिरिछ नगर चहुँ पासा । जनु[७] पेमी जन जगत उदासा ॥
पिय[८] कै पेम गड़े[९] होइ गाढ़े । तिन्ह ही[१०] ध्यान एक पग ठाढ़े ॥
ज्यों ज्यों पेम अगिनि तन जारै । कै चतकार ठूठ कर डारै ॥
त्यों त्यों होंहि[११] पेम मदमाते । डारै पात अगिनि रंग राते ॥
जो पुनि धरै बहुल[१२] फल भरै[१३] । डार डार फुनगा फुल[१४] परै ॥
पाकै पाकि पाकि[१५] सब गिरै[१६] । तऊ[१७] न पेम सहुरा सौं टरै ॥
सकल एक गामिप को चहैं । पर कायें सिर ऊने रहैं○ ॥

दोहा—वै तरवर मनु[१८] इमि कहैं ते बिरसे[१९] जग माहि[२०] ।
सीत धूप आपुन[२१] सहैं कर औरन पर[२२] छाँहि ॥१६॥

---

दोहा १६—१—सेरमा (का०)। २—भीम (स०)। ३—देहि (का )। ४—दिवस आव (स०)। ५—हरि (का )। ६—आगे वा बिरछ (स०)। ७—जानू पेमी जगत उदासा (का०)। ८—मुमुखे (स०)। ९—गरे (का०)। १०—तेहूं (का०)। ११—होहं (स०)। १२—फूल (का०)। १३—फरै (का०)। १४—फर (का०)। १५—भाग (स०)। १६—भरै (स०)। १७—टूटहि पग पग सो टरै (का०)। १८—जिम (का )। १९—बरसे (का०)। २०—माहं (स०)। २१—आपान (स०)। २२—परि (का०)। * यह चौपाई केवल का० प्रति में है। ○ का० प्रति में यह चौपाई नहीं है। ऊने=झुके हुए।

फर तिनके जु बिरिछ पुनि पेखे । तेऊ उपदेसी[१] सब देखे
धारि[३] नयन जितवै पग धारे । करब[४] न कोप गरब हमईकारे ॥
कटहर[५] कहै देखि[६] पिउ मोही[७] । हियें[८] ग्यान कोमा[९] जिन्ह[१०] होही ॥
बड़हर[११] कहहि[१२] मरम[१३] तिन जाना । मधुर ममम जिन भेव न माना ॥
नरियर कहै[१४] सखी[१५] पिउ[१६] सोई । ज्यों[१७] तन भसम मिरी[१८] बिय होई ॥
जामुन[१९] कहै मरम मों[२०] जामन[२१] । ताको मिटै[२२] कंत[२३] मंह[२४] जामन[२५] ॥
महुआ टपक दिखावै[२६] रोई । मात[२७] माहि[२८] मद यह[२९] मत[३०] होई ॥
खिरनी कहै देह यह[३१] खिरनी । पेठो[३२] बहुत[३३] धरी[३४] सो करनी[३५] ॥
ममनी[३६] कहै मोहि मधु[३७] ममसी[३८] । पागि मीत मेटी[३९] पिउ सो मिसी ॥

दोहा—हिय[४०] हिय मिचकौरी फरी जो देखी[४१] बन माहि ।
कहु[४२] सोबे नर मीच जे धाम[४३] कहां सो जाहि ॥३७॥

---

दोहा–१—निरख (स ) । २—उपदेसै (स ) । ३—ऊंचे बिन यह अंबर सारी (स॰) । ४—गर्व न करो गर्व (का॰) । ५—हिमगारी (स॰) । ५—कथर (स ) । ६—देखिउ (स॰) । ७—उनही (स॰) । ८—हंसहि (स॰) । ९—मोवा (स ) । १०—जिहि होहि (का ) । ११—बढिर (स ) । १२—कहहि (स ) । १३—मर्म (का॰) । १४—कहै (स॰) । १६—पिय (का॰) । १७—जो (स ) । १८—करै तन (स॰) । १९—जामनु (का॰) । २०—उर (स ) । २१—जामनु (का॰) । जामन—जन्म लेना । २२—मटी (स॰) । २३—कंथ (का ) । २४—मैं (का ) । २५—जामनु (का ) । जा मन—जिसका मन । २६—देखावई (स ) । २७—माति (का ) । २८—मौहि (का॰) । २९—होहि (का ) । ३ —गति (का ) । ३१—यह (का ) । ३२—पेठम (स॰) । ३३—बहुर (का॰) । ३४—भरी (का॰) । ३५—करनी (का॰) । ३६—मंबनी (का॰) । ३७—मध (का॰) । ३८—ममसी (का ) । ३९—मीठी मैं ममसी (का ) । ४ —हिय हिय (स ) । ४१—देखै तिन (स ) । ४२—कहो (का॰) । ४३—धंध (का ) ।

पुर बैठ पक्षी तिहि[1] साखा । बोलहिं[2] सबै[3] पेम[4] रस भाखा ॥
पाँडुक[5] पेम बैन[6] गुहरावै[7] । एक बग[8] एकै[9] पू रट लावै ॥
चातक रहै[10] मौसम में[11] नीठ । निस बासर कूक[12] पिउ पीउ ॥
दीवहिं[13] पीर बचन न सुहाई[14] । मीन्हि[15] मीटहिं रटिना लाई ॥
महरि[16] को[17] पेम दाह दहन्ही[18] । तिहि[19] दुख सदा पुकारत[20] रही ॥
मारहिं[21] निपट पेम दुखदाई । निसि दिन मुएउँ मुएउँ चिल्लाई ॥
कोकिल बिरह[23] जरी भई कारी । कुहू[24] कुहू सब दिवस[25] पुकारी ॥
समुझि[26] न परै कही जस सूना[27] । जनौं[28] कही जस सँवर सूना[29] ॥
सखि न जाइ[30] भगा सुख बैना । पै तू[31] कहै तुही[32] प्रभु बैना ॥

दोहा—मोर[33] बने पंछी तहा[34] पिनत कहाँ लौं जाव ।
सबही[35] कहूँ[36] पेम[37] सों लहु[38] बनी को[39] भाउ ॥३८॥

---

दोहा ३८-१—तन (म०) । २—बोलहिं (स०) । ३—सबहिं (स०) । ४—प्रेम (स ) । ५—पाँडक (का०) । ६—बहिय (का०) । ७—कहरावै (स०) । ८—बक (का०) । ९—एक (स०) । १०—रहै (का०) । ११—मह (स०) । १२—कूकइ (स०) । १३—दु दिन (स०) । १४—सुहाय (स०) । १५—बहै तौं नहीं बहै रट लाए (स०) । १६—मिहर (का०) । १७—कु (का०) । १८—दही (स०) । १९—तिन (स०) । २०—पुकार रही (म०) । २१—मोरहे (स०) । २२—म्यौं म्यौं चिलाई (का०) । २३—बिरहै (का०) । २४—कुहं कुहं (का०) । २५—बोस (का०) । २६—समझ (का०) । २७—प्रात (स०) । २८—चीन्ह (स०) । २९—सूना (का०) । ३०—जाई (स०) । ३१—तिन (स०) । ३२—पहै पट (स०) । ३३—मोर कहै (का०) । ३४—वहां (स०) । ३५—सब (का०) । ३६—कहीं (स०) । ३७—प्रीतम (का०) । ३८—सेही (का०) । ३९—भर (का ) ।

भरे[१] सरोवर ताल तलावा । नहिं न आद कछु तिन्हहु[२] बनावा ।।
पावहु[३] पंथी पेम पियावै[४] । पेम अगाधा प्रगट दिखावै[५] ।।
जल उज्जल निर्मल जनु[६] मोती । रहहिं[७] समाइ जस उर जोती ।।
अति गंभीर थाह[८] कछु नाहीं । मन कर मरम[९] दुरा मन माहीं ।।
जहँ तिहि[१०] पाकी[११] पार बनाई । पाक पेम जनु मिटी कचाई ।।
जदपि पेम हिलोर[१२] उठावै । उमंग सधु[१३] जस दुरन[१४] न पावै ।।
नीरज नैन पेम रंग राते । पुखरे भँवर[१५] नीव मदमाते[१६] ।।
जो पुनि कहौं नैन दुइ[१७] गिनै । नीरज पले[१८] न बरनत बनै ।।
पिउ[१९] छबि परसत भाव जो मयक । ता तन नीर भई होइ[२०] मयङ[२१] ।।

दोहा—जौ पुनि तहां जो[२२] खग बसहिं[२३] प्रान सोख[२४] तिन पाइं ।
पावन[२५] जस बोवै[२६] नहीं सदा रहैं[२७] जल माहिं[२८] ।।२९।।

---

दोहा २९—१—भरइ (स०) । २—तिहि (का०) । ३—जानू (का०) । ४—पिआवइ (स०) । ५—देखावई (स०) । ६—जस (का०) । ७—हिये समाइ रही जेहु जोती (का०) । ८—थाह (स०) । ९—मम (का०) । १०—तिस (का०) । ११—ताकी (का०) । १२—हिलो (स०) । १३—पौध (स०) । १४—डरन (स०) । १५—भवर (स०) । १६—मधुमाते (का०) । १७—दुई (का०) । १८—कहै जनै न (का०) । १९—पिय छब परस भाव जब भयौ (का०) । २०—हूँ (का०) । २१—पयौ (का०) । २२—जु (का०) । २३—बसैं (का०) । २४—दिखाई न त्याहि (का०) । २५—पोखै (का०) । २६—बोवइ (स०) । २७—रहै (का०) । २८—माँहि (का०) ।

मठ[1] मंडप साजे[2] चहुँ पासा । तहाँ सिद्ध साधक[3] कर बासा ॥
द्विज ब्रह्मचारी मनधर्मी । जती जो जगमती[4] न कहूँ ॥
जोगी जंगम कर बिसरामा[5] । सूफी सन्यासी दस नामा ॥
काऊ जपा जपै[6] धारापै[7] । कोऊ तपा तपै[8] तप साधै[9] ॥
कोउ अध्यातम[10] ध्यान मैं[11] उरझै । कोऊ उरझि पाइ निज[12] सुरझै ॥
कोउ[13] बिज्ञानी[14] पुरुष संजोगा । कोऊ ज्ञान मैं लाग बियोगी ॥
तिनकर दरसन[15] जाइ जिन पावा । जनु[16] अठसठ तीरथ न्है[17] आवा ॥
मन मिलवई[18] निरमल होइ जाई* । छाडि देह सब मलमलाई ॥
जस गंगा सो गंग कहु जानै । और पानुहिं गंग कै नाम ॥

दोहा—ज्यों बिकसत[19] दिन सूय कैं कमल सुमन[20] बिगसाहि ।
त्यौं[21] साधुन[22] कैं दरस गुन ज्ञान नेम सुख चाहि[23] ॥४०॥

---

दोहा ४ —१—मधु (ब्र०) । २—साजैं (ब्र०) । ३—साधक (ब०) । ४—जो कहे मुनि मैं मन (का०) । ५—बिसरामा (म०) । ६—जपहिं (ब०) । ७—धार कहिं (ब०) । ८—तपन (ब०) । ९—साधहिं (ब्र०) । १०—अध्यातम (ब०) । ११—महि (ब्र०) । १२—निज (ब०) । १३—कोई (का०) । १४—बिज्ञान (म०) । १५—दरस (का०) । १६—जन आठहु (म०) । १७—न्हाइ (ब०) । १८—मर्दन (का०) । १९—जस सूरज को कमल (म०) । २०—सो पुनि बिकसाइ (ब०) । २१—त्यों (ब्र०) । २२—साधन (का०) । २३—नाहि (ब्र०) । * यह चौपाई का० प्रति में नहीं है ।

* मध्यकालीन साहित्य में लगभग अड़सठ तीर्थों की संख्या प्रसिद्ध हो गई थी (देखिए पद्मावत ६ ४।२) ।

पैड[1] पैड पर कूपा क[2] आई । मर्वाहि[3] माई पाट बंधाई ॥
देखे पाइ जो तिमकर[4] भयू । जानहुँ करहि परम उपदेसू ॥
बोल उठ जब[5] निमरै आई । जागू[6] देखि बसो रे माई ॥
हमसौं अस्थिरता मन आमहुँ । तजि अभिमान राहु[7] मन आनहु ॥
माया हार देहु[8] जिन साथ । मारथ[9] छोडि[10] परउ[11] भंडारा ॥
पा पापक भावे[12] तिन्ह कीजै । हम जस ज्यों कछु घटक न कीजै ॥
ज्यों ज्यों कडै बडै रया[13] पानी । परम[14] होत उमई[15] मतिवानी[16] ॥
मन कछ नीर गंगाजल[17] होई । छिया[18] छिया बोलहि[19] सब कोई ॥
छिन[20] महँ बिनसि[21] जाइ जो काया । मानी माँस मिली बस[22] माया ॥

दोहा—इमि[23] माया सब जग[24] ठगा ताहि[25] अब सो कोइ ।
पवाहि[26] गाईसे नीर ज्यों जाके घटक[27] न होइ ॥४१॥

---

दोहा ४१–१—पैड पैड (स )। २—जानै (स )। ३—आइस (का )। ४—घटा (का०) इसी की प्रति में यह शब्द नहीं है। ५—बढ़ाएं (स )। ६—छिड़िकर (का )। ७—जानहुं करइं (स )। ८—उब्बई (स )। ९—मेरे जब (का )। १०—मानी (स०) ११—मेह (स )। १२—नेहि (का )। १३—मार्ग (का०)। १४—मोह (का )। १५—मोहु (का०)। १६—भावै (स०)। १७—सौं (स०)। १८—धर्म (का०)। १९—मनमह (स )। २०—मतिमानी (का )। २१—गंगाजल (का०)। २२—बहावहा (का )। २३—बोलैं (का)। २४—मैं (का०)। २५—सोध (स०)। २६—बस (का )। २७—तन (स) २८—जगत का (स )। २९—मारखको पुनि सोइ (स०)। ३०—पंच वायें कै नीर ज्यौं (स०)। ३१—मतक (स )।

पनिहारी देखीं[1] मृग नैनी । गज गामिनि औ कोकिल बैनी ॥
पहिरें चीर छोमा[2] तन मोती । राइ मुनिहिं[3] की ज्यौं मस पोथी ॥
लेजू पाठ कहँ धा हाथे । नैनन्ह पानी कलसा माथे ॥ *
निपट माव सौं पावहिं[4] जाहीं । पाइन[5] दिष्टि[6] सुरत घट माहीं ॥
जो कोई सखी नैक[8] मृग फेरे । सूधी[9] दिष्टि ओक[10] क हेरे ॥
मिल सब सखी ताहि समुझावहिं[11] । जनु[12] परदेसिन[13] पंथ बतावहिं[14] ॥
कस नेतहु[15] घट महँ[16] मन देहु[17] । नीकी दिष्टि[18] सूध कर[19] लेहु[20] ॥
माथ बोझ बाट रपटीली । रपट परे दुख होइ छबीली ॥
जो घट फोरि जाहि[21] घर छूछे । का पुनि कहै[22] कंत[23] के पूछे ॥

दोहा—रपट फोरि घट खोइ जल, बिन पानी बिससाहिं[24] ।
पुनि धौं कस माथा चढ़ै कच कुम्हार कहँ[25] जाहि ॥४२॥

---

दोहा ४२–१—देखा (स०) । २—छो माते मोती (का०) । ३—मोमैमन के (स०) । * यह चौ० 'का' में नहीं है । ४—मावे (का०) । ५—पायन (स०) । ६—दृष्ट (स०) । ७—सूरत (का ) । ८—नीक (स०) । ९—सूफी (स०) । १०—बम (स०) । ११—समुझावहि (स०) । १२—जन्ह (स०) । १३—प्रवधी (का०) । १४—बतावन्ह (स०) । १५—नेतो (का०) । १६—मैं (का०) । १७—देही (का०) । १८—दृष्ट (स०) । १९—कै (का०) । २०—लहो (का०) । २१—जाह (स०) । २२—कहहु (स०) । २३—कंत जब पूछ (स०) । २४—बिससाहु (का०) । २५—कै जाहु (का०) ।

फरी[1] मयूर मनी फरवारी[2] । फर[3] फर मटकिमई[4] तिहि[5] डारी ॥
तिन्ह[6] के गति कछु बरनि न जाई । सब[7] फर[8] उपदेसे[9] सुखदाई ॥
आरंभ बिनवै[10] पेमी सोई । फांक फांक आकर हिय होई ॥
कहै दिखाइ[11] दरार अपारा । सो पेमी जा हिये[12] दरारा ॥
बिनवै[13] सेव सेव[14] प्रभु सोई । जाके[15] सेव[16] रात मुख होई ॥
नींदू[17] कहु[18] गुरस[19] घट माहीं । पै पापा काटे बिनु नाहीं ॥
केला कहै करो[20] बिस्वासा । फिर करनी[21] की धरी न आसा ॥
बैर कहै यह बैर न पावहु[22] । जिनि पापा काटि[23] उरझावहु[24] ॥
किसमस कहै प्रनाम पपीऊ[25] । जाके करम[26] पी[27] जीवन सेऊ[28] ॥

दोहा—मन[29] गुन कहै जो[30] पिय[31] बिरह[32], मन[33] गुन पानी देह ।
सोई मन पिय[34] मन मिले रसी रसीले नेह ॥४३॥

---

दोहा ४३—१—फिरै (स०) । २—भरवारै (स ) । ३—फिर फिर (स०) । ४—मटकमयन (स०) । ५—सब डारे (स०) । ६—तिहि के (का ) । ७—सर्ब (का०) । ८—फिर (स ) । ९—उपदेसी (का ) । १०—बिनवहु (स०) । ११—सुखार (का०) । १२—हियै (स ) । १३—बिनवहु (स०) । १४—सेवहि (स०) । १५—जाकी (स ) । १६—सेवा (स ) । १७—निदू (का ) । १८—कही (सा०) । १९—सरस (का०) । २०—सिहि (का ) २१—फिर सै कै धरी (स ) । २२—पावो (का ) । २३—काटी (स ) । २४—उरझावो (का०) । २५—पपीअऊ (स ) । २६—कर्म (का ) । २७—पीं (स ) । २८—सेवऊ (स०) । २९—गुन गुन (स ) । ३०—जु (का ) । ३१—पिय (का ) । ३२—बिरहै (का०) । ३३—गुन गुन काढी (स०) । ३४—पियगुन (स ) ।

नगर निकट फूलीं फुलवारी । बन माली बिन सींच सँवारी ।।
अनु[१] सब पुहुप पेम अनुरागी । बरागी[२] उपदेस[३] बिरागी[४] ।।
करना कहै अंत जो मरना । बिन हरि भजन पंथ सब करना ।।
कहै सिंगार हार तन धारा । का सिंगार भर[५] आवसि हारा ।।
बेला कहै समुझि[६] हो हूमा । कहीं[७] न अनबेले[८] कहि[९] बमा ।।
लाला कहै लास तन सूना[११] । पेम दाघ[१२] उर[१३] राम बिहूना ।।
सोसन कहै अबहूँ घर जीये[१४] । समुझि[१५] सोसनी सोसन कहिए[१६] ।।
कहै नेवारी सो[१७] पिउ[१८] प्यारी । बिन सबा नमि नींद निवारी ।।
सोई बात सुदरसन कही । सेवा सबन[१९] सा दरसन नहीं ।।

दोहा—चम्प चमली कमला कहै[२०] दूरि नाहि[२१] पीउ[२२] ।
ढूंढ़ि संउ[२३] हम बास ज्यों घट घट सोई आउ[२५] ।।४४।।

---

दोहा ४४—१—बिन (स०) । २—बैराग (का० ) । ३—उपदेसहि (का०) । ४—बैरागी (का०) । ५—पहिरावस (का०) । ६—समझ (का०) । ७—ही (म०) । ८—गहो (का०) । ९—अनबनी (का०) । १०—बहु (स०) । ११—सामा (स०) । १२—दाह (म०) । १३—और (का०) । १४—समझ (का०) । १५—कई (का०) । १६—स्याम चुरन छिर (का०) । १७—भई (का ) । १८—पु (का०) । १९—पीव (का०) । २०—सुबक पु (का ) । २१—कई कि (का०) । २२—न (का०) । २३—पीव (का०) । २४—महि (का ) । २५—पीव (का०) ।

पुनि[1] बहु[2] नगर दिस्टि महुँ[3] आवा । गुनहु नगा[4] जो नीक[5] सुहावा ॥
उ थे[6] ठौर आनु कैलासा । उ में मंदिर आनु प्रकासा ॥
ईट[8] गिलाव दिस्टि नहिं आवा । सब पर उज्जल चून लगावा ॥
सेत[9] सेत दीसहिं एक धारी । होइ मुन्हैया[10] मिसि अंधियारी ॥
मानो[11] रूपे गिरे[12] पहारी[13] । कोर कोर सब छोल उतारा ॥
तिहि[14] ऊपर चौबार[15] अटारी । दिस्टि पसार न जाहिं[16] निहारी ॥
नीक[17] झरोखा बने[18] चहुँ पासा । ईश धरे बैठन[19] की[20] आसा ॥
झलकै कनक कटाव सँवारा । जनु प्रकास झलकै निसि तारा ॥
ते मंदिर[22] दीसैं[23] इन[24] भेषा । जनु बैराग करै[25] उपदेसा ॥

दोहा—ऊँचे मंदिर देखि[26] जनु धनि[27] जिउ[28] करहु[29] गुमान ।
छार होइ ढरी परी, रहउ[30] थिर न[31] निदान ॥४५॥

भीतर जाइ नगर जो देखा । मानुस[1] सबहि विचित्र सो रेसा ॥
धवला[2] अति सोभी[3] उजियारी । सबी मैन साधे सब हारी ।
धरमी लोग[4] धरम[5] ब्यवहारू । नाहि अधरम[6] धरम अधिकारू ॥
घर घर प्रतिमा[7] सेवा पूजा । पूजा[8] प्रथम काज तब दूजा ।
सुचि सों सदा पवित्र रहाही । धरम काथि पाई मुख माहीं ॥
पुन्य दान बहुतै[11] पुन होई । घर घर सुखी दुखी नट कोई ॥
टोल टोल महँ[12] बने[13] मथाइ* । कम्कम लपटी[14] रहहिं सदाई[15] ॥
पंडित बैठ[16] कथहिं[17] पुरानू । बरनहि आतम रूप[18] गियानू ॥
बैठहि[19] जाइ पुरुष विग्यानी । समझे[20] सुनैं[21] उठै बस[22] बानी ॥

दोहा—राम सबन कै[23] सुमिरनी सदा भजन सों काम ।
सो जो[24] मिलै[25] ताको[26] कहै सुमिरो साधो[27] राम ॥४६॥

---

दोहा—४५—१—जो (स०) । २—बौ (का ) । ३—मैं (का ) । ४—बिसारो (स०) । ५—नीकु (का ) । ६—रूपी (का ) । ७—धाम (स ) । ८—ईट कसाई (स ) । ९—सेत सेत देखहि टकसारी (का ) । १०—पढ़ाई (का ) । ११—माहि (स ) । १२—गीरि (का ) । १३—पहारी (स०) । १४—तिन्ह (स ) । १५—चौ बार (स ) । १६—चाहै (स०) । १७—तिनहि (का) । १८—रखे (का०) । १९—बैठे (का०) । २०—कर (स ) । २१—निस झलकै (स०) । २२—मंद (का ) । २३—दीसत (स ) । २४—इहि (का ) । २५—करहु (स०) । २६—दिख (का०) । २७—धिन (का ) । २८—जीय (का ) । २९—करो (का०) । ३०—रहे (का ) । ३१—नाहि (का ) ।

दोहा—४६—१—मानसर्व (का ) । २—धवलो (का ) । ३—सोभी (का ) । ४—जनु (का ) । ५—लोक (का ) । ६—धर्म (का ) । ७—माहे (स ) । ८—अधर्म (का ) । ९—अधर्महि (स ) । १०—सेवा किय (स०) । ११—पुनि बहुतै (का ) । १२—मैं (का ) । १३—बने मठाही (स ) । १४—लीपी (का ) । १५—सदाई (का ) । १६—बैठिय (स ) । १७—पढ़ै (का०) । १८—रूप गयानू (स ) । १९—बैठे (का ) । २०—समुझि (स ) । २१—सुनहु (स ) । २२—जनु (का ) । २३—कह (स ) । २४—जु (का ) । २५—मिलै (का०) । २६—कासौं (स०) । २७—साधूनाम (स ) । * मथाई—बैठक ।

नपर छाँड़ि[1] बैठी[2] पुनि[3] बेसा। करि करि रुचिर सिंगारन भेसा ॥
सारी सुरंग हरी रंग[5] भीनी। अति भीनी[6] जागहु[7] उर मांगी ॥
प्रगट[8] कंवल[9] कुच देहि[10] दिखाई। निरखत[11] मन मधुकर ह्वै[12] जाई ॥
सुमन हार धर[13] सौंधे[14] भीनी[15]। भाव[16] भृकुटि[17] मुख परम प्रवीनी ॥
आभूषन पुनि बने बड़ाऊ[18]। अंग अंग प्रति भाव[19] दिखाऊ ॥
माया रूप धरे अति मीठी। मोहन मंत्र[20] बसै[21] तिन[22] दीठी ॥
जो चित दै चितवै[23] तन मांही। चितवत[24] चोर महि[25] तिहि पाहीं ॥
तिन सों उरझि[26] परे मंठ[27] लोभा। भौ[28] दै[29] लोभ हाथ पुनि[30] रोका ॥
जिनै मोहि[31] माया अधिकारी। हाथ झारि[32] होइ[33] चर[34] भिखारी[35] ॥

दोहा—नटी वेस्या[36] जनु यौं[37] कहहि माया[38] बड़ो न कोइ।
या बंधन[39] जिय बंधत है, भयो[40] चाव कहुँ खोइ ॥४०॥

दोहा ४०—१—छाँड़ि (स०)। २—बैठे (स०)। ३—सन (कां०)। ४—कर कर (स०)। ५—घर (कां०)। ६—भीनी (स०)। ७—जागो (स०)। ८—प्रगट (स०)। ९—कमल (कां०)। १०—दीन्ह (स०)। ११—देखत (कां०)। १२—होइ (स०)। १३—धो (स०)। १४—सौंह (स०)। १५—हिय पहरी (स०)। १६—गोर (स०)। १७—निरख (स०)। १८—बपाऊ (कां०)। १९—भया (स०)। २०—नैन (कां०)। २१—बसै (कां०)। २२—तन (कां०)। २३—देइ चतुर मह चाहा (स०)। २४—चित चितवत (स०) चितवित (कां०)। २५—चोरहि तिन्ह पाहा (स०)। २६—उरझा कीन्ह (कां०)। २७—चित (स०)। २८—भो (कां०)। २९—देइ (स०)। ३०—बहु (स०)। ३१—मोह (स०)। ३२—झार (कां०)। ३३—उठि (कां०)। ३४—चल (कां०)। ३५—भिखारी (कां०)। ३६—नट बेसा मनु (स०)। ३७—कहमि (स०)। ३८—माया बड़ो (स )। ३९—पाही बोधे जिय बंधत (स०)। ४०—भयो गय मंठ (स०)।

आगे चलि उसी पा हाटा । दुहुँ[1] दिसि हाट बीच बड़ बाटा[2] ॥
तिन्ही[3] बाट जग आवै जाई । हाटन होइ बिसाहु[5] बिकाई[6] ॥
एक बनौटा[7]* देखा आगें । एक धनी पर बार समागें ॥
जहाँ बनौटा[8] बैठ[9] हाटा । धनो बैठ[10] ऊपर कै[11] पाटा ॥
सौदा होइ सो[12] सब लिख लेई[13] । हाट उठै[14] लेखा कै[15] देई ॥
कोठ[16] बड़ै लाभ फल पावै । काऊ[17] प्रमाण[18] मूर गवावै ॥
जो आपहिं[19] बारे[20] परवारा । अपन सहित[21] करहिं[22] अखोहारा[23] ॥
तिन[24] कहँ पूछनहार न कोई । धनी बनौटा आपहु[25] सोई ॥
हाटन हेरि चढ़े अस[26] बहु । पावा ज्ञान करम[27] पति[28] बहु ॥

दोहा—धर्महिं[29] जानु बनौटा धनी[30] सु जानी मान ।
हाट[31] जगत घर[32] काया बाट सु[33] आवन जान ॥४८॥

हाटन साज दिरिट इमि आवै । ज्यों[1] अविगता जगत बनावै[2] ॥
प्रथम जो दीख[3] जौहरिन माहीं । जाति बिना एकौ नग नाहीं ॥
धर बैसी जो बैठि परखिया । रूपा[5] एक अनेक रूपैया ॥
तहाँ सुनारहटा[6] जा[7] देखा । कंचन एकौ[8] भिनेक[9] बिसेखा ॥
घर घर धरी[10] आभरन[11] बई । एकहि[12] कुंदन सब नग धरई ॥
पुनि जो पसरहट जाय निहारी । हाट हाट महँ[13] बैठ[14] पंसारी ॥
पुनि कंडसार[15] परो[16] जो[17] दीठी । एकै[18] ऊख हाट सब मीठी ॥
आये चलि[19] बजाज जो हेरी[20] । एक सूत बिच बरन घनेरे ॥
पुनि जो दिरिट गंधी[21] तिन[22] होई । बिन सुबासना[23] बसत[24] न कोई ॥

दोहा—देखि दरीबा फुलहटी[25] महँ[26] ज्ञान बिर[27] हाइ ।
प्रगटि[28] पुरा रंग बास ज्यों[29] घट घट एकै सोई ॥४९॥

---

दोहा ४८—१—दोहुँ (स ) । २—बाटा (का ) । ३—तिनहिं (स ) । ४—जावै (स ) । ५—बिसाहि (का ) । ६—बिकावै (स०) । ७—बनौटा (स ) । ८—बनौटा (स ) । ९—बनावहिं (का ) । १०—बैठि (स ) । ११—की बाटा (का ) । १२—सु दोहु लिखि (का०) । १३—लेऊ (स०) । १४—उठी (का ) । १५—कहि (स०) । १६—कोई पहुँ (का०) । १७—कोई (का ) । १८—प्रमाणी (का०) । १९—आपन (स ) । २०—बारे (स०) । २१—सहित (का ) । २२—करै (का ) । २३—अखोहारा (का०) । २४—तिहि कहि (का ) । २५—आपहि (का ) । २६—अस बैठू (का०) । २७—कर्म (का ) । २८—पट (का ) । २९—करमठ (स ) । ३०—धरी सा (स ) । ३१—हाथ (स ) । ३२—उर (स ) । ३३—सु (का०) । * बनौटा—वणिक्पुत्र

दोहा ४९—१—जगो हैं एकता (का ) । २—बनावै (का०) ३—देख (का ) । ४—सु बैठ परखिया (का ) । ५—रूप (का ) । ६—सुनारपता (स ) । ७—तिन (स ) । ८—एक (का ) । ९—भति (का ) । १० धरियन (स ) । ११—अभरन (स ) । १२—एकहु (स ) । १३—मैं (का ) । १४—बैठ (का०) । १५—कडसार (स ) । १६—पुरि (का ) । १७—जो (स की प्रति में नहीं है) । १—एकहि (का०) । १९—चल (स ) । २—हेरी (स ) । २१—गाढ़ (स ) । २२—तन (का ) । २३—सौ बासना (स ) । २४—बसत (स०) । २५—फुलती (स ) । २६—महीं (का०) । २७—बीय (का०) । २८—प्रगटि (स ) । २९—जु (का०) ।

मानिक[1] चौक जाइ[2] जो देखा । जहँ ओर कौतुक बहु[3] पेखा ॥
कतहूँ होइ[4] नट[5] उच्चारा । कतहूँ पखरिया पढ़ै[6] पवाँरा[7] ॥
कतहूँ नाद मृग गुन होई । कतहूँ स्वाँग बनावा[8] कोई ॥
कतहूँ बध बनावै[9] पूड़ी[10] । कतहूँ चड़िया[11] बनाहिं[12] बड़ी ॥
कतहूँ जुरे[13] गारस मंडी । कतहूँ पंच[14] बनावहिं पंडी ॥
कतहूँ साँप लिये सँपहेरा[15] । कतहूँ चित्र[16] लिय बैठ चितेरा ॥
कतहूँ मनहहिं[17] पच निकारी । कतहूँ पसवैया[18] पसवै हारी[19]* ॥
कतहूँ ठगनि ठगावै कोई । कतहूँ जनरहट[20] पारंड होई ।
कतहूँ चेटक मन हर लीन्हा । कतहूँ नट[21] नाटक गुन[22] कीन्हा ॥

दोहा—ते कौतुक जग[23] इमि कहूँ मन[24] तिन रंग न राँच ।
हमसौं भवही भरन[25] रवि उठा लगि महु[26] नाँच ॥१०॥

---

दोहा १०—१—मानक (का०) । २—जाय (स०) । ३—रहि (का) । ४—होवे (स०) । ५—नैहा चारा (म०) । ६—पड़ई (स०) । ७—पुवारा (का ) । ८—बनभावा (स०) । ९—बनाइहैं (म०) । १०—बरी (का०) । ११—बरैया (का०) । १२ बचे (का०) । १३—जड़े कार रस (म०) । १४—चित्र बनावै चिता (का०) १५—सांपेरा (स०) । १६—चित्रीकर (का०) । १७—कहत पुतरी (स ) । १८—पखिया पसवय (म ) । १९—हारी (म०) । २०—जनरहट (स०) । २१—नित (स०) । २२—मन (स ) । २३—जिमि (का०) । २४—[illegible] (का०) । २५—भवही भरत (का०) । २६—बहु नाच (का ) ।

* पसवैया—धानेव करने वाला [illegible] [illegible] भी कहते हैं । पसिया—धानेव मूल वाला । [illegible] उतार रहा था ।

भीतर नगर राजघर पावा[1] । जनु पहाड़ चहुं दिस गहि[2] काढ़ा ॥
मेंडं[3] पर थापि नाग सों पूरा । मै मकास पर धरे संपूरा ॥
सहँसर[4] मन की[5] सिमा समाई । धौ मड़पारि[6] सिंहि काड़ बड़ाई ॥
तरहर ग्रीव[7] खोह घन कीन्हा । धौ कपट[8] सर्व मनि न चीन्हा ॥
पन्थ पतार सोत खनि[10] काढ़ा । निकसि नीर ऊपर भौं बाढ़ा ।
चहुं दिसि चारी पंवरि दुवारा । तिन्हहिं लागि पुनि लोह किवारा ॥
कुंड धनसहिं[11] भरे मह माहीं । उमड़ि[13] नीर[?] तहं[14] नदी बहाहीं ॥
पसग सगाप कहूं[15] कछु माहीं । ज्यों पातम काया मह माहीं ॥
पा[16] तिन्ह भने[17] मप्प कर पोमा । पनी[18] मध्य पर साग पिसोला[19] ॥

दोहा—जनु[20] गढ़ कहै कि समभ्क[21] मर तु गढ़पति मढ़ नाहिं[22] ।
ज्यों मोसों गढ़पति समन[23] जदपि[24] मोही[25] माहीं ॥२१॥

---

दोहा २१–१—कामा (स ) । २—मढ़ (का०) । ३—नवन पुरा माग सौं पूरा (का ) । ४—मेंड़ (स०) । ५—सहसै (स०) । ६—कै (स ) । ७—चहुं (स०) । ८—मढ़ परि खंड माड़ (स ) । ९— गोह खोह मघ बना (स ) । १०—चहुं केतक बरखन बन बना (स ) । ११—बिन (का०) । १२—धमीयन (स०) । १३—प्रमाद (स०) । १४—न (का०) । १५—तिहि (का) १६—नही (स०) । १७—ज्यो (स ) । १८—तिहि (का ) । १९—नमी (का ) । २०—बिन (स ) । २१—कसोला (स ) । २२— जन (स ) । २३—समुझि (स ) । २४—नाहिं (स ) । २५—छपा (स ) । २६—आगत (का ) । २७—मोहिये (स०) ।

बड़ी[1] पंवरि पर ऊँच दुआरा[2] । तिहि[3] ऊपर बाजै घरियारा[4] ।
चेतन पुरुष बैठ[5] घरियारी । घरी घरी तिन[6] साज उतारी ।।
पल छिन[7] अंतर होन न पावै । जबहिं[8] भरै तबहि ठहकावै ।।
हार मार फिर सोई भरै । एकहि घरी माझ पुनि भरै ।।*
जब मारै घरियार[9] पुकारै । समुझहि[10] घरी फिरत[11] छिन मारै ।।
तौ लौं कुसल[12] जौं घरी न पूजी । जब पूजी तब बात न दूजी ।।
भावै भरी[13] घरी ज्यों पाऊ । मीत[14] चेत चेतो रे बटाऊ ।।
जिन जानों[15] कि घरी यह टरी । यह[16] जानहु अबलौं नहिं भरी ।।
का सों[17] घरी एक[18] पौ टरी । पै[19] निदान पूरै जब[20] भरी[21] ।।
जब यह सबै आइ नियरावै । सुमिरन बिन कछु काम न आवै ।।*

दोहा—जग सों[22] जम काया घरी[23] प्रौढ़[24] घरी[25] सो पाव ।
पूरन पावै छिनहि छिन चेत[26] न अगम पठाव ।।५२।।

---

दोहा ५२-१—बड़े पौर (का०) । २—दुआरा (का०) । ३—तिन्ह (स०) । ४—घरवारा (स०) । ५—बैठ घरवारी (स०) । ६—जन (स०) । ७—आधु (स०) । ८—तिल (का०) । ९—जबै (का०) । *यह चौपाई स० प्रति में नहीं है । १०—घरवार (स०) । ११—समुझी (स०) । १२—भरत (स०) । १३—कुसर (स०) । १४—भरत (का०) । १५—चेत चेत चितवु उर बटाऊ (स०) । १६—[illegible] (स०) । १७—तैसी छिन पूरै जब भरी (का०) । १८—[illegible] (स०) । १९—[illegible] (का०) । २०—पुनि (का०) । २१—सों (का०) । २२—[illegible] (का०) । *का० प्रति में यह चौपाई नहीं है । २३—बहु (स०) । २४—[illegible] (स०) । २५—[illegible] (स०) । २६—चेही (स०) । २७—[illegible]

राज दुवार[1] जाइ[2] जो देखा । बड़े भूप माहिन[3] कछु लेखा ॥
बंधे गयंद मेद हुत[5] भारे[6] । बरन स्याम काजर हुत कारे ॥
काया बड़ी[7] तबस बलवंता । कोउ न मत्त[8] कोउ मदमंता ॥
चारों ओर दिस्टि इमि धाई । जानी कारे[10] मेघ[11] उनाई ॥
जो बस करहिं[12] मेद मस डारहिं[13] । पइ पैसहिं[14] ही[15] गीव उपारहिं ॥
महि[15] तरवर[16] उ[17] मूर उखारे[18] । चूरहिं[19] डार मारि[21] मुन डारे[22] ॥
एक दादुर[23] मूषे एक[24] खोटे । माते रस[25] सौ होहिं न[26] मोटे ॥
जा[26] पुनि माते करहिं[27] हराई[28] । माथ कोस लौं मनुष[29] न जाई ॥
आंकुस दे[30] कछु आम[31] न मानहि । चरखी बेस[32] फूल कर जानहिं[33] ॥

दोहा—गाजहिं[34] चढ़े[35] गुमान सौं, मरे नेह[36] सो देह ।
मन[37] इमि कहै गुमान का जो निदान तन खेह[38] ॥२१॥

दोहा—२१-१—द्वार (का०) । २—जाय (स०) । ३—नाहि (स०) । ४—बड़े (स०) ५—हुत (स ) । ६—भारी (का०) । ७—वर्ष (का०) ८—बसी (स ) । ९—मंत (स०) । १०—कारी (स०) । ११—धरा (स ) । १२—करे (का०) । १३—नाएं (स०) । १४—गीलन्ह (स०) । १५—दीमन उपारहिं (का०) । १५—कहि (स ) । १६—तरवर (का०) । १७—मू (का०) । १८—उखाई (स०) । १९—चूरन्ह (स०) । २—डार (का ) । २१—डारहिं (स०) । २२—खावर (स०) । २३—एक (स०) । २४—रसहि (स०) । २५—नहिं (स ) । २६—घो (स०) । २७—करहिं (का ) । २८—हराई (स०) । २९—सम्मुख को जाई (स ) । ३ —की (का०) । ३१—अगहिं न मानहि (स ) । ३२—मुख बेल छूटे तब (का ) । ३३—जानहिं (स ) । ३४—गाजहिं (स०) । ३५—चढ़े (का०) । ३६—फिरत कहिमनी देह (स ) । ३७—मनु (का०) । ३८—खेहि (का०) ।

पुरी[1] पो समुंद तिरहिं[2] इक हंसा । महुअक[3] बाँध चलहिं[4] जनसा ॥
रस रस के नाना रंगा । [illegible] पुरुष सब संगा ॥
मोर तहाँ[5] पर मोर[6] बनावैं[7] । [illegible] ॥
मानहु अधर रची मुद्दे[8] गाढ़ै । [illegible] ॥
धोख नव नामो[9] छाड़ि[10] जाहीं[11] । [illegible] ॥
जिनहिं[12] दिखावे कौतुक चाही । [illegible] ॥
तहाँ चढ़ैया[13] मन बौराना । [illegible] ॥
जो चपल पुनि चाल चलाई । [illegible] ॥
नैक[17] निडोस[18] चाल[19] निरहु[20] [illegible] । [illegible] ॥

दोहा—चपल तुरै[23] [illegible] ।
भला नाहिं[24] [illegible] ॥ [illegible] ॥

---

दोहा ५८—[illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible]
(का०) । [illegible] (म०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) । [illegible]
निज न चाई [illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible] (का०) । [illegible]
(म०) । ११—[illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible]
(म०) । [illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible]
१८—[illegible] (म०) । [illegible] (म०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) ।
२२—[illegible] (का०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) ।
(का०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) । [illegible]
२८—[illegible] (का०) । [illegible] (म०) । [illegible] (का०) । [illegible] (का०) ।
चढ़े (का०) ।

नीके[1] नीति[2] बैठ जो राई । जुरी कचहरी[3] सिस्टि[4] उमाई ॥
धन कर भेद जोग[5] तहँ[6] होई । रहे संजुती[7] निबहु सोई ॥
राज[8] भेद जिमि जिउ[9] नर राखा । तिन्ह[10] को[11] भेद न काहु[12] भाखा ॥
ना[13] निरवार[14] बंदि[15] नहिं परा । सम कुमर[17] गा[18] अपने धरा ॥
निज मूरख कछु[19] कपट कीन्हा । बिकर[20] गर्व भरि पापु न कीन्हा ॥
राज काम बिन[21] दीन[22] बिसारा । भयो भूप मन आज्ञाकारी ॥
सो पछताइ रहा सिर नाई । इह[23] मठ[24] आपन[25] कहो[26] बंधाई ॥
बाँधा[27] बंदि बिपद महँ डारा । बेगा नर[28] लोह बरिआरा[29] ॥
दिन[30] दिन बंद होइ नहिं छूटा । गुनहि कीन नीक कै कूटा ॥
दोहा—देख कचहरी का चलन दह सिच्छा जिय होइ ।
जो मन बाँधे आपना ताहि न बाँधै कोइ ॥५५॥
देखी राज सभा उजियारी । इंद्र सभा जनु इंद्र सँवारी ॥
रहे बसाय अगर कस्तूरी । कै सुवास दसहूँ दिस पूरी ॥
नीचे पाट पटंबर डारा । बैठे तहाँ जुहारि जुहारा ॥
ऊँचे राज पाट रवि[1] छाजा । तहँ पर बैठ पुहुमपति[2] राजा ॥
पौ पुनि निकटवरत जु कहावै । मन बच कर्म सेवा मन[3] लावै ॥
भीतर जाइ जुहारहिं सोई[4] । बाहर रहे और जे[5] कोई ॥
सदा सन्मुख सोइ[6] पियारा । अंतहुँ[7] तहाँ नाहिं[8] पैसारा ॥
तिन्ह कर बिनती बिनवै करहीं । आयसु होइ सो उत्तर देहीं ॥
जो नृप होइ सो आयसु होई । बिन आयसु कर सकै न कोई ॥
दोहा—राज सभा गति देखि कै, मई ग्यान थिर होय ।
जो सेवक[10] सेवा सजग, सदा हजूरी[11] सोइ ॥५६॥

दोहा—५५—१—नेकी (का० ) । २—नीच (स०) । ३—कचहरी (का०) । ४—सृष्टि (का०) । ५—जोग (का०) । ६—तिहि (का० ) । ७—सचौतें (प०) । ८—राजा (स०) । ९—जी (का० ) । १०—तिहि (का०) । ११—कहि (का०) । १२—किमहू (स० ) । १३—भय (स० ) । १४—निरवारा (का० ) । १५—बंद (का०) । १६—निहि (का०) । १७—कुमर (का० ) । १८—गय (स० ) । १९—अपट मन कीना (का० ) । २०—हिय भर गरब का आगरे न कीन्हा (स०) । २१—बिन (स०) । २२—बैठ (स०) । २३—सुनि (का० ) । २४—आप (स० ) । २५—आपनु (स०) । २६—पही (का०) । २७—बाँध बाँध बर्म में डारा (का० ) । २८—करहि लोहि (का० )। २९—बरआरा(स०)। ३०—दंडन बंद (म०)। ३१—कहुँ(स० )।
दोहा—५६—१—रथ छाजा (स० ) । २—भीमपत (स०) । ३—थिर (स० ) । ४—होई (का०) । ५—जन (का० ) । ६—पही (का०) । ७—अटकहि (का०) । ८—कहाँ (स० ) । ९—नीक कराहीं (स० ) । १०—ते पावइ जे तप करई (स० ) । ११—राज मार्ग थिर सोइ (स० ) ।

बने राज मन्दिर पाँति सोने । चित्र कटाव कीन्ह छब सोने ।।
लाग कंचन खंभ बराऊ । कहि न जाइ छवहि कर नाऊ ।।
कतहूँ रतनदि सुरुज सुभारा । कतहूँ बने चाँद औ तारा ।।
तहाँ रैन का दिवा न होई । परगट दिवस कहै सब कोई ।।
इक मन्दिर आव दरपना । दरपन चाहि चमक चौगुना ।।
कोऊ बन कोऊ चौगना । कोऊ सतखन बहु बिधि बना ।।
नदी बाट[1] में सब महँ पानी । छाजहँ ऊपर फिरैं[2] सुए[3] पानी ।।
जो देखी तिन्ह कर असनाई । भरा हौं[4] फूली फुलवाई ।।
छिरकें[5] सुमन सुगंध सुबासा । जानों बिद्यमान कैलासा ।।

दोहा—ते मंदिर जनु इमि कहैं यै[6] कैलास निवास ।
व पावैं[7] न तर कर बट बसुँ बारह मास ।।५७।।

मंदिर दमयंती पटरानी । करवंत औ मति परवानी ।।
सेज सिंगार राज महँ[1] आई । तौज न धीर छाम जिहि हाई ।।
कहि न जाइ तिहिं[2] कर सिगराई । कबहू ते मुख जोति सुहाई[3] ।।
छवि रवि[4] बदन कमल जस फूले । भृकुटी भवर उड़त[5] मति भूले ।।
नैन सरूप मनोहर अहहीं[6] । नर नारि सरवर कस कहहीं[7] ।।
मति सुकुमार[8] हार उर साक । सुकुरवास कै[9] पान महाक ।।
मगर्या[10] सुमन देह[11] सो परी । बहु[12] बहु उठी[13] पग महँ[14] धरी[15] ।।
बहुनी कहीं सुमति जस धरी । बन गरेम परस सब[16] करे ।।
मी पतिबरता तिय महँ[17] औक । ताहू चाढ़[18] दद सुनि पीउ ।।

दोहा—देखि सुपतिता नारि की, इहि मति[19] पाई पीउ ।
पतिबरत[20] उर धारै जो धनि, तेहि उर धारै पीउ ।।५८।।

---

दोहा—५७—१—इहि (का०) । २—काहि (का०) । —करै (मु०) । ४—बस (म०) । ५—जिहि के (का०) । ६—कै (का०) । ७—पावहु न निरति करहु (मु ) । ८—राज मुदित वास (का०) ।

दोहा—५८—१—घर (का०) । २—तिन्ह (म०) । ३—दरसन (का०) । ४—सुराहीं (का ) । ५—करहीं (का०) । ६—सुकुमार (मु०) । ७—दर (का ) । ८—केसा (म ) । ९—करी (का०) । १०—बस बस (का०) । ११—उठै (का०) । १२—म (का ) । १३—करै (का०) । १४—बहु (म ) । १५—मैं (का०) । १६—ता सम कै सिर की तिय सीझ (म०) । १७—दइ (म०) । १८—दिन (म०) । १९—पतिबरता अपार बन (का०) ।

एक घाट सुपरी जब पाई । काहू नेमी[1] बात चलाई ॥
कहा कोस चार इक ठाऊँ । बन में जहाँ न मानुष जाऊँ ॥
नदी तीर इक मढ़ी बनाई । दमन रिषीश्वर तहाँ बसाई[2] ॥
प्यासा जाऊँ नदी के तीरा[3] । बजर जाइ बैठ्या तिहि[4] नीरा[5] ॥
ध्यान बिना तिन काज न कोई । जीतेसि पाँचो हारेसि दोई ॥
ध्यानहि ध्यान देह सुधि खोई । पाप हिराइ रहा होइ सोई ॥
मौनी रहै सदा घट चोर्सै । जो दार्सै सो ध्यान निधि खोर्सै ॥
जाचहुं दया दिस्टि कर हेरै । जनम जनम के दोष[8] निबेरै ॥
दरसन किए[9] पाप सब[10] जाहीं । पग[11] परसें संसार बिलाहीं ॥

दोहा—प्रगटे पाप करा करम[12], पाप करे पुनि[13] जाहि ।
पाप करें सत[14] पुरुष है, प्रगट न होहि बिलाहि ॥६३॥

राजहि मुनि यह बात सुहाई । कहा[1] चलो दरसन[2] कहँ[3] जाई ॥
ऐसो सिद्ध पुरुष जो सुनीजै । उनहि[4] सर्म जम दरसन कीजै ॥
तिनही[5] काल मन माहँ[6] जो[7] भाई । जमा छत्रपति कीन्ह चढ़ाई ॥
जस तिहि मढ़ी निमर[8] जब आवा । राजा सब चमर[9] बरजावा ॥
फ़ौज मोगऊ हट बैठारा । बाहन छाड़ि पाइ मन मारा ॥○
दोउ सेवक लीन्हेसि संग लाई । सनमुख[11] मढ़ी ठाड़ भा[12] जाई ॥
सिद्ध पुरुष तिहें बैठ अकेला । आपहि गुरु आपहि चेला ॥*
ठाढ़े लाइ रहा मन[13] माहीं । सुरत न कोऊ थोर[14] पुन नाहीं ॥
जब ठाड़ बीती घड़ि चारा । आँखि खोल तब सहज निहारा ॥†

दोहा—हेरत छिन[15] राजा लपकि[16] पाइ[17] गहे सिर नाइ ॥
सिद्ध पुरुष पुनि कृपा करि[18] माथ सीन[19] उठाइ ॥६४॥

---

दोहा ६३–१ मौनी (स ) । २—रहाई (का ) । ३—नीर (स०) । ४—पुर (का०) । ५—होइ (का ) । ६—तीरा (स ) । ७—होई (का ) । ८—दुष (का०) । ९—देख (का०) । १०—मिल (स०) । ११—पापहि के पर पाप हिराहि (का०) । १२—स० प्रति में इस स्थान पर कोई पाठ नहीं । १३—बिन (का ) । १४—प्रर न प्रगटै (का०) ।

दोहा ६४–१—कहा कि (का ) । २—दर्श (का०) । ३—कहि (का०) । ४—देर्ष (स०) । ५—तबतब तिन्हों (का ) । ६—तिहि (का ) । ७—मैं (का०) । ८—कछू (का ) । ९—तीर (स ) । १०—चोर परभावा (का०) । ११—जब सम्मुख (स०) । १२—भयाई (स ) । १३—तन (का०) । १४—आवै जाहीं (का ) । १५—छिन (का०) । १६—मुपक (का०) । १७—पाय (स ) । १८—कै (स०) । १९—मिये (स ) । ○—यह चौपाई का० में नहीं है । *यह चौपाई 'स' में नहीं है।—यह चौपाई 'स० में नहीं है ।

राजा कै अधीनता[1] देखैं। कीन्हसि मया[2] बिसेख बिसेखै ॥
कै आदर बैठक तिन दीनी[3]। औ मनुहार बहुत बिधि कीनी ॥
राजा रिखि[4] ध्यान जब जानी। बाला बिनय[5] बचन मुख आना ॥
नाथ कौन गति होइ हमारी। आई धौं नहिं नैकु[6] बिचारी[7] ॥
मैं[8] यह कौन पुरुष करतारु। जिन जिउ दीन्ह कीन्ह संसारु ॥
का तिहुँ रूप कहाँ तिहुँ बासा। हम सा दूर कि हम हीं[9] पासा ॥
सो पुनि कछु अपनी सुधि नाहीं। औ[10] हम कित आये कित जाहीं ॥
आदि[11] कहूँ हुते[12] कहँ अब भये। औरन[13] सुने कि उपजे गये ॥
कछु न समुझि परै जिव बाता[14]। झूठी माया सौं मन राता ॥
दोहा—हम है मूसा[15] मरजिया किव कम[16] जग माहिं।
माया ही के मद मगन, नाच नाच[17] मर जाहिं ॥६२॥

सिध कहा राजा सुनु[1] भाखौं। निज यह भरम कहीं हौं राखौं ॥
जो सुनि समुझि बात उर धारसि। अगम वस्तु[2] कहँ[3] सुगम निहारसि ॥
साईं एक अहै सब ठाऊँ। सुन ताके ताहि जिन्ह सुनाऊँ ॥
स्थिर निगुन गगन अभेषा। परम रिखि सौं जाइ न देखा ॥
सूक्ष्म[4] न बड़ महत परकासा। ज्यों देखसि[5] सब ठाँव प्रकासा ॥
घट औघट अन्तर कछु नाहीं। मिलि[6] समाइ रहा सब माहीं ॥
कोई सब लखन कर लेखा। औरु न दूजा धार अकेला ॥
मे बहु रस जो देहि दिखाई। गगन अब महँ[7] रहा समाई[8] ॥
ता[9] बिन करनी[10] कछू न होई। सुन औसन जिन्ह[11] भग न कोई[12] ॥
दोहा—एस[13] सब रंगन सुना पै[14] यह अपन रंग।
जो निज बाको निरंग रंग राखौ मया न भंग ॥६३॥

---

दोहा ६२-१—अधम्या (कां०)। २—माना (कां०)। ३—दीन्ही (मु०)। ४—हीं (म )। ५—निनय (कां०)। ६—निकु (कां०)। ७—निहुर (म०)। ८—हारी (कां०)। ९—धन माहिं (म०)। १०—सौं (म०)। ११—पुन (म०)। १२—धा (कां०)। १३—कहाँहि क (म०)। १४—मिजरत हासक (म०)। १५—पाजा (म०)। १६—मभे मरे कै (म०)। १७—धाज (म०)। १८—कौड़ (म०)।

दोहा ६३—१—यह (म )। २—मन (कां )। ३—गम (म०)। ४—हि एक (म०)। ५—गगन (कां), अविग (म०)। ६—निरूप न मध्य (कां०)। ७—दाप सों दहि सुख प्रकाश (कां )। ८—पुनि (म०)। ९—गगन सम समान (म०)। १०—मै (कां )। ११—तिन्ह (कां०)। १२—करै (कां )। १३—बाहु (कां )। १४—होमैं (म०)। १५—पद (म०)।

अब तोहि तारी[1] नहि समुझाऊं । समुझ देखि निज कहूं सुनाऊं ॥
जो यह एकै[2] सिमट[3] समाना । घट औघट ता बिन नहि पाना ॥
त्यों[4] तोरे[5] घट तू[6] पुनि सोई । निरखि देख निज और न कोई ॥
जो यह सो तू सिमट[8] समाया । मुआ न उपजा गया न आया ॥
जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन[9] उपाधि न मानहु कोई ॥
यहै उपाधि जो आप बिसारसि । मूल और को[10] और बिचारसि ॥
छाड़ि अमर पद मिरतक होई । तोर कुमत[11] काल में ठोही ॥
तोहि यह मिथ्या भरम था[12] भयऊ । औरहि ते औरहि ह्वै गयऊ ॥
ज्यौं[13] अनाह्य[14] माया अधिकारी । सपने महं[15] होइ जाइ भिखारी ॥
दोहा—माया मिथि सपना जगत मोह भरम अज्ञान ।
सोइ सांच[16] समझ[18] सवन, जाकै[19] कछु न निदान ॥१७॥

पै यह ज्ञान जाय[1] तोहि नाहीं । तू[2] उरम्यो[3] जाके तिन माहीं ॥
तोरे जिय परतीत न आवै । मन मलीन संका उपजावै ॥
मारन कै जस ज्यों गदराना । मारग जस ज्यों होइ ठहिराना ॥*
रतन बुरा[5] गहरे जल माहीं । बिना थिराये[6] सूझत नाहीं ॥
ताते जो तोरे यह इच्छया । सुन उरपार देउ तोहि सिच्छया ॥
प्रथम मांज मन दरपन काई । तब निरमल छबि[7] देइ दिखाई ॥
सोहं[8] स्वांस सबद अजकथा । सहजहि जाय रैन दिन पथा ॥
तासौं लाग छोड़ि मन मांजै । मांज[9] ध्यान चंचल थिर मांजै ॥
उपरे[10] मैन ध्यान थिर होई । रहै न द्वैत एकल होइ सोई ॥
मुक्त होइ अतल जब सूझै । सहजै अलख भरम तब बूझै ॥○
दोहा—सूखिमा पवन मथान मन तन मटकी दधि जीव ।
मथें[11] मही माया निकसि रह्यो[12] रह्यो होइ पीव ॥१८॥

दोहा १७—१—तोरी (का ) । २—एकौ (स ) । ३—समत (स०) । ४—तौ (स०) । ५—तैरे (का०) । ६—तै (स०) । ७—तासौं (का ) । ८—समत (स०) । ९—मध्य उपाय करत जिन (का०) । १०—मूल (स०) । ११—कुमति (का०) । १२—थिय (का ) । १३—जो (स ) । १४—अन्याय (स०) अंधा (का ) । १५—मैं (का ) । १६—सांच (का०) । १७—सपना (का०) । १८—समझ (का ) । १९—जाकह (स०) ।

दोहा १८—१—आय (का ) । २—तौ (स०) । ३—जाके उरम्यो (स ) । ४—तन (का ) । ५—बुरा कचरी (स०) । ६—ठरायें (का०) । ७—रूप (का ) । ८—सोहौं (स०) सोहं (का०) । ९—मांझ (का०) । १०—उपजई (स ) । ११—मथन (का ) । १२—होरई (स ) ।

*यह चौपाई केवल 'का०' में है । ○यह चौपाई केवल 'स० प्रति में है ।

मद[13] व्योहार करम सुन मोसौं । जानि सुराज कहौं[14] हौं तोसौं ॥
जेहि दयाल दीन्ह यह राजू । ताहि[15] सम ना बहुतन कर राजू ॥
चीन्हेउ[16] धर्मेहि धरम धप धारै । राज करेसि सत धर्म[17] बिचारै ॥
होइ न दुखी राज[18] महँ[19] कोई । राव रंक सुख मानहिं दोई ॥
राजा जब निसाफ पर आवै । सीष छाड़ि क सत्त दिखावै ॥
राव रंक बराबर कै जानै । समुझि दुख पावा तिन मानै ॥
राजहिं[20] मह दुख्खहि तहि[21] बारा । कब निसाफ[22] कीन्हहिं सम्भारा ॥
जा रंकहि बरियार सतावै । जिन्ह[23] पलटै राजा दुख पावै ॥
राव रंक जिन्ह कर उपराजा[24] । तिन्ह[25] क तेम रंक तस[26] राजा ॥

दोहा—राव रंक परजा भई राजा सब कर[27] छाह ।
यह सपन के राज पँ[28] गरब करौ जिन काई ॥६९॥

कहे[1] धर्माय[2] बचन सुनाई । पुनि कछु जिस पूरब मन भाई ॥
हुलसि हाथ मारि मैं[3] हारे । मार सुरक[4] कप मस्तक निकारे ॥
दीन्ह मणिदन एक गभीरे । मनि सुदर रंग भरे डरारे ॥
हारे गहनि गरब कै कोरे । कहु ईसा पूरा भइ थोरे ॥
नल कृपाल व अंतरजामी । दीन दयाल जगत कर स्वामी ॥*
ताहू तें परलोन निज भाखी[5] । बचन बिरस सीता सुनि[6] भाखा ॥
सो तस[7] फूल फरा फल पाके । पँ[8] कर ताहि मिलै न ताके ॥
दीन्ह दुख जोपा अमगारी । बाटी एक जगत उजियारी ॥
चालै सुदिवस यह माया । साधु सुनीन धरम अनुरागी ॥
दोहा—परमारथ स्वारथ महिमा सिद्ध सुपार[9] संवार ।
पहुनि नरेस बिग दिया[10], चल्यो सनेह[11] बिचार ॥७०॥

---

१३—पा (का०) । १४—कीन्ह हू (का०) । १५—जिहि मर (का०) । १६—जिहि (का०) । १७—मत (म०) । १८—देव (का०) । १९—मैं (का ) । २०—राजहि तोहि दुखै (का०) । २१—जिन्ह (म०) । २२—न न्याव कीन (का०) । २३—सुन (म०) । २४—उपराम (का०) । २५—उपरजा (म०) । २६—जिहि (का०) । २७—जिहु (का०) । २८—कौ (का०) । २९—पर (म०) ।

दोहा—७०—१—कहिग (म० का ) । २—धर्मी (म० का०) । ३—मु हू (म० ) । ४—मारक (म ) । ५—गहिम (का०) हनि (म०) । ६—सुरक (का०) । ७—सुर (का ) । ८—उगार (म०) । ९—भाई (का०) । १०—बने भाई (का०) । ११—जिहूर (का ) । १२—ते फिर (म०) । १३—जिनमारी (म०) । १४—निषार (म०) । १५—चला (म०) । १६— नेह (का०) ।

बाहर भयी निकसि[1] जब आवा । फटक[2] साथ सम्पुट[3] हूँ पावा ॥
फर फर महु फरहिरा उठाय । गज तुरंग सुख आसन लाये ॥
रहस तुरे पैरा[5] घर पाऊ । पठा निरख[6] बता पिय पाऊ ॥
पान[7] भरा न अंग समाई । दूना पग नहिं कीन्ह[8] कमाई ॥
रस प्रस प्रीति नगर कहँ पावा । औगुन कहे रूप छवि कमा ॥
आइ बार जब कीन्ह उतारा । मन धाम आइ मंदिर पगु धारा ॥
आवा जहाँ बैठि पटरानी । बिहँसा[9] दखि तहाँ बिहँसानी ॥
भारों कर झोरे महँ[10] लाए । पौ तिन[11] कै[12] गुन बरन सुनाए ॥
सुनि रानी बिलसी सुख सागर । रतन मिल सुख अस[13] उजागर ॥
दोहा—निज निहुच बिस्वास कर कीन्हसि रहस बढ़ाव[14] ।
ममा[15] सुख आवहि भवा पद बाढ़ा[16] पिय भाव ॥७१॥

जब रानी भा[1] सुख अधिकाई । उठि मंजन कै[2] कीन सिंगारू ॥
सजि बारह सोरह बनि बनी । सुघर अधिक रूप रंग सनी ॥
भई निस तमो केलि कर भयऊ । बिहँसत कंत सेज पर गयऊ ॥
भर अंकवन गह कंठ लगाई । रहस पसार मन खोज रिझाई ॥
उपजी काम घटा[3] दुहुँ भारा । मिल भए एक उठी घनघोरा ॥
घमकस[4] बूँद झमक महँ परी । पिय बैनी चातक रट करी ॥
मकर मोर ऊँच कुहकाहीं । सुघट[5] झींगुर झनकाहीं ॥
पौन हिलोर उठी झकझोरा । झूलहि दोउ केलि हिलोरा ॥
मानहुँ[6] प्रकट आव[7] चौमासा । कुमन छन[8] भए भाव अगासा ॥
दोहा—दस्ती योजन समुद महँ नाभि सीप तिहि भांत ।
स्वाति बूँद आवा नहीं हुलस[9] हिरदै भै सात ॥७२॥

---

दोहा—७१—१—निकस (स०) । २—फटक (स०) । ३—मोहित बैठावा (स ) । ४—फिर हर नीह फिरहरा (म०) । ५—पाग (स ) । ६—निरखत (स ) । ७—की (का ) । ८—क्रियस समाई (स०) । ९—बिहस (का ) । १०—मे (का ) । ११—तिहु (का०) । १२—कर (स०) । १३—सहित (का ) । १४—बताव (का ) । १५—भामहु (का ) । १६—बिम बाढा (का ) ।

दोहा—७२—१—भयो (म ) । २—'का' में नहीं है कर (स०) । ३—कीस (स०) । ४—तिस (का ) । ५—बीज (स०) । ६—कपार (स०) । ७—घमि बस झमक झमक तिहु परी (का ) । ८—पिय चावै बैनी चातग रट कर (का ) पय बैनी चातब रति करी (स ) । ९—सुघर कंठ (स०) । १०—मास (स०) । ११—भायो (म०) । १२—मिलहि भरी है (का ) बंधत पूर भए (स०) । १३—हंस (स ) ।

सीपी स्वाति बूँद जस पावा । बिधना अस मों माति जगावा ॥
रानी गर्भवंति भइ[1] सुनी । आनंद कीन्ह दुमनि[2] सब दुनी ॥
पुनि पूरन जब भए दस मासू । पुत्र जनम भा बड़ा हुलासू ॥
गावें नारि[3] मिलि सखी बधाई । वारहिं मानि निछावर पाई ॥
पनिक आइ सो[4] धरी बिचारी । कहँ[5] है राज पाट अधिकारी ॥
होइ लाग सुख रहस[6] बधावा । बरि[7] निसान महार दुन्दावा ॥
बंधु[8] हितु[9] टीका लै आए । जे पाट पहिराइ[10] पठाए ॥
भई पुनि छत्री चरावा नाऊ । तेहि[11] निरमल नाला मन काऊ[12] ॥
कनक थार सब लाग जिमाए । पुनि सो[13] थार नहार न माए ॥
दोहा—राज रह बंधु हितु[14] बिन जवा[15] ज्योंनार ।
पायसु[16] भा ती जावहीं[17] कनक बराऊ थार ॥७३॥

दुसरे बरष बहुरि[1] फिर राना । परमवंत भइ सबही जाना ॥
दसएँ मास पूजर मो[2] आगा । सो[3] तस रहस जो पहुम बजाना ॥
तिसरें पुत्र जन्म पुनि लीन्हा । तमोइ धामस तिम्हुपर[4] कीन्हा ॥
तीन पुतर हुत[5] जो होनें । तीनों सुन्दर सरस[6] सलोने ॥
बड़ा सा बाप पेवमी पाऊ । वर्ली देखि बाई[7] बिन काऊ ॥
दुसरी बात नहीं मति मीठी । हिया सराय बढ़ै सब पीठी ॥
मँझला[8] धरठ[9] पन्नू[10] भावे । सू[11] मो करै सुरस उपजावे ॥
मगहुना[12] परा पानमे मूर्ती । मानव हाइ देग मन पूप ॥
सहा पा पुन बिन पर मनियारा । कृपा कीन्ह प्रभ भा उजियारा ॥
दोहा—राज तिपद मुपमय[13] भया गया कलस सब[14] दूर ।
यह[15] धाम[16] पुष मह[17] दुनी बही बीन बिबि पूर ॥७४॥

---

दोहा—७३—१—भा (म) । २—देय महि (का०) । ३—निरमल (ग) । ४—मनकहि (का), मनाहं (म०) । ५—पु (का०) । ६—बपुहितु (का) । ६—गोबद (म०) । ७—रहिम (का०) । ८—उर (ख०) । १०—फिर माय (ख) । ११—तीरे (ग) । १२—गाऊ (का०) । १३—पु (का) । १४—हुता (म०) । १५—आशा (का०) । १६—पाइसमा (का) । १७—पावहीं (का० ग०) । १८—रतन (का) ।

दोहा—७४—१—पीर (का०) । २—पै (ग०) । ३—भ (ख) । ४—भय (का०) । ५—तिहि (का०) । ६—भय हुते सु (का०) । ७—रहै (का) । ८—जावै दिप (का) । ६—मजिआ (ग०) । १०—पसर (गा) । ११—परनिया (का) । १२—कौन नाम क[3] (म) । १३—नहा पर्र (का) । १४—ज्यहि (का) । १५—औ (का०) । १६—इग (म) । १७—रहीं (का०) । १८—मानिक (म) । १६—पै (का०) । २०—हत (म०) ।

भीजे गरमवत भइ रानी । भा[1] तन कनक दुवादस बानी ॥
मरम[2] ओट दीपक जनु[3] बारा । मा[4] इमि भांत गात उजियारा ॥
झीन पटा[5] ज्यों सुरज समाई । घटा सजोत देह दिखराई ॥
ठैठे मरम मोम मइ[8] बारो । मइ तिन्हि[9] जोति गात उजियारी ॥
ज्यों ज्यों चंद तिन्हहिं[10] छिन बाढ़ै । त्यों त्यों अंग जोतह[11] दुति काढ़ै ॥
जब दिन पूज जनम भा तासु । निस मह[12] भयो दिवस परकासु ॥
दिया जोति देखत सब गई । जनु रवि किरन प्रकासत भई ॥
मुहँ[13] पर चांद उवा जनु धाई । जोत प्रकास दीन्ह दिखराई ॥
दिस चोस पून्यौं ससि घटा । रूप मह चौर चार परगटा ॥

दोहा—कहि सोन सोभत मकरत[14] परा स्याम उर अंग ।
जनहुँ मयंद सो दाम हिय जग[15] जो कहै कलंक ॥७५॥

---

दोहा—७५—१—मय (स ) । २—बिस्तर उजत चोप (स०) । ३—जहँ बारू (का०) । ४—मय (स ) । ६—झीने पट (का ) । ७—ठैठे (स०) । ८—दिय (का ) । ९—तिन्ह (स ) । १०—छिनै (का ) । ११—जोति दिव्य (का ) । १२—मह (का०) । १३—भौं (स ) । १४—मुकुत (का०) । १५—जगत जु कहिय (का ) ।

बीती रैन सूर परभातें[1] । निकसा तबहिं[2] हुता रंग रातैं ॥
निरखत जिन बारी उजियारी । पीर[3] भयो तन पारस पारी ॥
तिहि की भटक भाव भी मानै । जब निकसैं[5] तब मो[6] गत ठानै ॥
पानी[7] महन कौम पुप परै[8] । रवि बह रूप पुरइ[9] अब[10] करै[11] ॥
देवत[12] स्याम केस तिहि[13] सीसा । कीन्ह कहै जनु तिहि[14] की रीसा ॥
तन[15] कारौंप[16] लगाइ दिखाव । कहै देख जय महन बतावैं[17] ॥
कर महन तैसौं[18] पुनि होइ[19] । राहु[20] रोम केतु जिन कोई ॥
मा[21] तिहि कर सदा तन[22] राहु । तबहिं ताप एक कहूँ ताहू ॥
कर केहु[23] कर जनु मीतरा[24] । रहै[25] न पंथ कर कै करा ॥
ताकी छवि कहुँ कौन बखानै । पोहि कहूँ जो दरसै सो जानै ॥*

दोहा—इहि मकर बारी भई रूप रूप तिहि रूप ।
कर कर कहूँ जगम बहु, या गुन रूप अनूप ॥७६॥

---

दोहा—७६—१—परभाती (का०) । २—बठ (का०) । ३—प्रम (का०) । ४—पटी उघारी (म०) । ५—निसरे (म ) । ६—निकसै (म०) । ७ – सोकय (ध०) । ८—भानहिं महन (म०) । ९—परी (का ) । १०—प्रम (ध०) । ११—चित (म ) । १२—कप (म०) । १३—दैगी (म ) । १४—तिन्ह (म ) । १५—तिनहैं (म०) । १६—तिहि (म०) । १७—कारयो लाप (ध०) । १८—कुनारी (का ) । १९—एमै (म ) । २०—मोर* (का०) । २१—राहहि (का०) । २२—मैं तिन्ह (म ) । २३—तिहि राहु (का०) । २४—हम (का०) । २५—परजारा (का०) । २६—कहै (का०) । २७—की काप (का ) ।
*यह चौपाई का० प्रति में नहीं है ।

घरी रैन भा[१] घड़ी बधावा । भोएँ[२] दिवस पुनि नावँ धरावा ॥
बरन रूप गुनि दामिनि करा । दम्यं[३] त नावँ दमंती धरा ।
सेवा रहैं धाइ बा धारी । सींचहिं नृप राज की[४] बारी ॥
ज्यों ज्यों बढ़ै चांद सों बारी । त्यों त्यों होइ अधिक उजियारी ॥
भई जब[५] पाय बरस महँ[६] बारी । सुदिन बिचार पढ़न बैसारी ॥
पंडित कवित बिनन[७] पढ़ावा । पुनि बिन पढ़ा अरथ सब[८] पावा ॥
पढ़[९] बिबिध पंडित हो आई । लागि गरंथ अपढ़[१०] सरकाई ॥
पुनि पंडित जिन्ह[११] अरथ न[१] पावै । खोल ज्ञान[१२] सो ताहि बतावै ॥
पंडित घटा[१३] भा[?८] घटमारी[१४] । गुरु[१५] हुइ उलट पढ़ावा नारी[१६] ॥
दोहा—अब ऐसी पंडित भई, ज पंडित तिहि देस ।
देखि बुद्धि ता नारि की सबन[१७] कीन्ह आदेस ॥७७॥
महाराज अब सोई बारी । नारंग फरी होइ रखवारी ॥
धी अस भाग लाग जिहि माथा[१] । ते नारंग आवै[२] जिन्ह[३] हाथा ॥
भई संजोग तरुनि हो आई । दुइज पून पूयो दिखराई ॥
पूरन भई सोरहो करा । अब कीन्ह गुनि मद निरमरा ॥
निरखत बदन नैन सियराही । सांप मुख[४] अमी सु अधरन माही ॥
पर ससि पहँ[५] सर काम न करी । वह तो कलंकी यह निरमरी ॥
वो ससि दिवस एक निस[६] होई । यह अब यहि अरबरा सोई ॥
पुनि वो राहु गसिकर दुखदाई । सो इन्ह[७] के नित सरन रहाई ॥
कीन्ह[८] अमावस हिय[९] ससि हरै । सो भ[१०] छांह पाय तर परै ॥
दोहा—यहाँ[११] नाव लगाइ मन[१२] मा[१३] पूज्यो ससि छीन ।
वे तारे गुरु दाम रिपु[१] ते याके[१] आधीन ॥७८॥

---

दोहा—७७-१—भ ((स) । २—दीई (का) । ३—दैसो नाम (का) । ४—परा (का) । ५—के (म०) । ६—न (का) । ७—मैं (का०) । ८—पैसारी (का०) । ९—सर्व (का) । १०—सो पावा (स) । ११—पुनि (स०) । १२—पढ़ी (का०) । १३—जिहि (का) । १४—सुताई (का०) १५—इहि अपना निजु लागि सुनाई (का) । १६—पिता (स) । १७—भया (स) । १८—पितमारे (स) । १९—दरहुह (ग) । २०—मारी (का) । २१—तिन्ह (स०) । २२—सबहिं (का) ।

दोहा -७८-१ ताता (स) । २—आवई (स) ३—जिहि (का) । ४—भई सु (का) । ५—एक भाँति मुख ससि (का) । ६—मनु (स) । ७—पै (का) । ८—एक पोख (का) । ९—तम (स) । १०—उपाउ मिससरन (का०) । ११—कीन (का) । १२—भये (का) । १३—इहि (का) । १४—इनहीं (स०) । १५—जनु (का) । १६—भयो (स) । १७—माल (का०) । १८—'का०' में नहीं है । १९—ताके (का०) ।

मेरे चान तिहूं पुर माहीं । ताके रूप और धनि माहीं ॥
दुतिय नास्ति[1] एकौ जग आमू । कहि न आय तिहि[2] रूप बखानू ॥
सुन्दर[3] आदि तिनके[4] अपछरा । सबको मन ताके मन हरा ॥
मैन समुद्र[5] रतन जिन हेरा । होइ मन मीन[6] भए तिन्ह फेरा ॥
जो पुनि मीर[7] मोर सौं हेरै । फटियो भरसि छूट किन्ह[8] फेर ॥
दिस्टि बड़ी सो दीर[10] पन दीन्हेसि[11] । रूपकत[12] पलक ठौर पुनि कीन्हेसि ॥
झापसि[13] बल्ली हरा बिहाई । बिथरु मुए पुनि छूट न बाई[14] ॥
तरफ तरफ जिउ दीन तवाना[16] । इन्ह बारा[17] पर कहीं छुटाना[18] ॥
को अस जीन हरि पुनि[19] हेरा । आप हिराना सो जिन हेरा ॥*

दोहा—जो पुनि कबहुं[20] अकाम तें[21] हरे मैन फिराइ ।
सबै देह होइ झिलमिला मिरा[22] पहे[1] तहँ राइ ॥७६॥

---

दोहा—७६–१—नामत (म०) । २—तिह (म०) । ३—इदलोर निहि की (का०) । ४—तिहि को (का०) । ५—समद्रहि बन जिन (का०) । ६—मैन बिहस तिहि (का०) । ७—मूर मूर (का०) । ८—तिन्हा (का०) । ९—बहु फेरा (का०) । १०—दो पन (का०) । ११—दीनस (का०) । १२—अबरत (का०) चमकत (स०) । १३—बाहिम (उ ) । १४—बरायन छाई (का०) । १५—पाई (का ) । १६—निबाना (म०) । १७—बारा (का०) । १८—छिनाना (स०) । १९—फिर माथा (का०) । *जिन हरा सो आप हिराना (का ) । २०—टिपी (का०) । २१—तिन (म०) । २२—करा (म ) । १—मध्य टहरा (का०) ।

तिहि[1] का रूप चितवहिं[2] पट व्यापा । भूला जगत देत मुख झापा ॥
जग न जीउ न जानी कोई । जग बिन जीउ जोउ एक सोई ॥
सभा सभा महँ[3] यहि कहानी । मुख मुख रही[4] प्रेम धुनि बानी ॥
जगत पतंग है जाहि परा । वही बचन दीपक यह[5] बरा ॥
जगत[6] मास राउ मन माहीं । धौं किहि[8] कै पूजै[10] किहि[11] माहीं ॥
पै निदान पावै[12] यह[13] कोई । जिहि[14] के लगन[15] लखै पुनि साई ॥
ताकै[16] हाथ प्रेम मद प्याला । धौं[17] केहि देइ करै मतवाला ॥
वाकी रीझ कही पै जानै । धौं[18] केहिका[19] आपन कर[20] मानै ॥
मिलवो[21] हाथ काहु के नाहीं । कोई मिलै नहि जिन[22] नाहीं ॥

दोहा—चरन कमल ताकर चढ़ै जापर होइ दयाल ।
समौ[23] परै आपन करै रीझ देइ जैमाल ॥८०॥

मालिन जब अचरज यह कहा । सुनि राजा मोहित होइ रहा ॥
धौ सुनि नारि रूप कर नाऊ । लागसि पेम बान उर घाऊ ॥
इहि[1] निज घटक चटक जिय परी । मन उर[2] नारि चोंप होइ भरी ॥
मन पंछी उरझा मोहि माला । तन[3] तजि जाइ रहा तिहि पासा ॥
सुना यहै निज रूप निकाई । मिल ही भिन फिर बात चलाई ॥
मालिन एक बात कहु मोसौं । चतुर जान बूझन[4] ही तोसौं ॥
है सो नारि पदमिनि क्यौं जानी । कौन कौन पंचनि[5] पहिचानी ॥
कहु नख सिख सिंगार सब[6] वाका । जिहि[7] मति जौन अंग तैं ताका ॥
जौनौं[8] निज दरस न सुनीजै । तौनौं[9] मन मरमक न पतीजै ॥

दोहा—नाम जो मनरस को रची[10], धौं[11] स्वारथि पुनि होइ ।
तऊ[12] सोच समझै बिना मन[13] परतीत न होइ ॥८१॥

---

दोहा—८०-१—झिझक (स ) । २—पट पट (का०) । ३—मैं (का०) । ४—रहै (स ) । ५—बहु (का ) । ६—जगत (स ) । ७—मस (का ) । ८—धुनि (स०) । ९—जिन्ह (म ) । १०—पहुँचै (का ) । ११—जिन्ह (स०) ।
१२—पावहि (का ) । १३—सो (का ) । १४—जिन्ह की (स ) । १५—जिव जिवनी (का ) । १६—लागे (स ) । १७—पुनि (स ) । १८—मुनि (स०) । १९—किहि का (का) का कहुं (म ) । २०—कै (का ) । २१—निमाय (का ) । २२—जिह (का ) । २३—समै (का ) ।

दोहा ८१-१—भय (स ) । २—यो (का०) । ३—मन तजि (का ) । ४—पूछौं (का०) । ५—मंजन (स ) । ६—जौं (का ) । ७—जिन्ह (स०) । ८—यो महि (का ) । ९—तीजहि (का ) । १०—रचै (का ) । ११—या (का ) । १२—तौ मुनिय (का ) । १३—पीय (का ) ।

महाराज हिय[1] संक मिटाऊँ । चारौं नारि बखान सुनाऊँ ॥
एक हस्तिनी एक सखना । एक चित्रनी एक पदमनी ॥
पहले कहौं हस्तिनी नारी । जा महँ[2] हस्तिन[3] कै गति सारी ।
मम मूमर[4] ग्रीवा अति खोटी । कुचा मो गिपट कहूँ[5] कटि[6] मोटी ॥
भावै तन मयद मद बासू । भो मन खोट धरै बिस्वासू ॥
मो महार बहुतै पुनि खाई । भद्दवाई गति जाइ न पाई ॥
गज पति काम डाम पुनि नाहीं । चमत दंप बिराई चहूं खाली ॥
पिउ रति[7] सुम संतोख न करै । पुरुष पराए पर चित[8] धरै ॥
डर भय लाज न मन महँ[9] आनै । बिन चाबुक कछु सब न मानै ॥

दोहा—जो हठी हठ तब तजै जब चाबुक सर खाइ ।
मोर मूरै न सुम बचन ए हस्तिनी सुभाइ ॥८२॥

दूज कहौं संखिनी नारी । सिप सुभाइन माग उतारी[1] ॥
उर कटि[2] मूमर कहुँ[3] कौमुनी । त दोऊ ताहूी दति धनी ।
धन बिसम जो अमप अहारी । चलै खिप ज्यौं बाम बराही ॥
राखै दिस्टि नमाइ तराहीं[6] । कज बदन हँसत मुख नाही ॥
भोजन मांस बहुत रुचि मानै । प्राम कुनई न भका बान ॥
मुख[9] मैं उठै बमायँद बासू । जैसे बहुत दिनन करि मांसू ॥
रोमा होहि जांघ[1] उर कैसी[1] । मैंक[11] न करै परब परबीती ॥
बचन न सहै रोस[12] भनि घना । अपने सिर पर धीर न धना ॥
पिउ[13] उर केलि सबै मद मावै । रमहूं मैं रिस रोस चलावै[15] ॥

दोहा—पर बिगार देखै खुसी बिमनि ज्यौं गुरराइ ।
मपन हो सुख सौं[17] ममन ए संखिनी सुभाइ ॥८३॥

---

दोहा—८२–१—हृदि (का ) । २—मै (का ) । ३—हस्ता की (का ) । ४—कर पग मवर मरौं (म०) । ५—थान (का ) । ६—कदु (म०) । ७—माही (का०) । ८—धरि सुखहि (रा०) । ९—मिठ (म०) । १०—मैं (का ) ।

दोहा ८३–१—सुभारि (का ) । २—पनि ममर (म ) । ३—तीन (का०) । ४—चारमी (म०) । ५—धराहीं (का ) । ६—नतराहीं (का०) । ७—पराये (का ) । ८—हमति (का०) । ९—मुख (म०) । १०—आ मुख (का ) । ११—कसी (का०) । १२—सग न करै मंदर भमी (का ) । १३—रोष (का०) । १४—कौना (का०) । १५—पाव उर मबै मप मावै (का०) । १६—मिरावै (म०) । १७—मैं (का०) ।

तीजी कहूँ चित्रनी[1] नारी । ससिम[2*] अंग सोभे जनु ढारी ॥
जे जे अंग जीन गत[3] गम । गये होंहि ताही बिध सनै[4] ॥
बदन चंद तन पाल्ह[5] निकाई । जैसी भउछ्ए दास भदवाई ॥
महा विचित्र रूप रंग भरी । कोमल रसना मीठी पारी ॥
देखि धा धाम मराम समाही । कोमे माइ कीमै[7] थाउ बाहीं ॥
चित्रावंत रिस रोस न जानै । हंसत[8] मुखी सवन मन मानै ॥
भोजन सकल वस्त दोह चाउ । पाउ पुहुप सोधें रचि राचै ॥
पतिब्रत राखि करै पिउ सेवा । पिउ परमेसर[11] करै नहि भेवा ॥
पदमिनि ज्यों दोह गुन घटि होई । चौर बनाव भाव सब सोई ॥
दोहा—चित्रनि[12] कुमुदिनि के चरम चरु[13] सवासना अंग ।
पदमिनि रानी[14] कवंल[15] ज्यों तन सुबास अलि संग ॥८४॥

चौथे कहूँ पदमिनि नारी । पदम सुगंध सूर[1] उजियारी ॥
कवंल[2] बरन ज्यों[3] कोमल अंगा । बास सुगंध होवहिं अलि संगा ॥
ना अति पातर ना[4] अति मोटी । मध्य भाव तुटि[5] सांब न छोटी ॥
बदन कांति जनु पून्यों चंदा । सरवर खिली[6] चंद दुति मंदा ॥
ससि ज्यों सोरह कला[7] संपूरी । पै[8] ससि माहि कलंक अधूरी ॥
ससि महँ[9] सोरह कला बखानी । पदमिन सोरह अंगनि जानी ॥
चार अंग दीरघ लघु[10] चारी । चार सुघर कहूँ[11] छीन[12] संवारी ॥
चलै हंस ज्यों चाल सुहाई । बोलै पिक की लियै मिठाई ॥
जो अति चतुर कंठ चित चोरै । शैभा सी मख[15] कबहुं न मोरै ॥
दोहा—मन मृगा[16] भृकुटी कुटिल मन चपल[17] गति मीन ।
हम अंगनि देखौ[18] सो बनि सो[19] पदमिनि परवीन ॥८५॥

---

दोहा ८४-१—चतरनी (का ) । २—ममल (का०) । ३—अंग (का ) । ४—सबहिं (स०) । ५—बने (स०) । ६—जोति ननाई (का०) । ७—जस (का०) । ८—तैसे (का) । ९—चोमहं (स ) । १०—हस्ता (का ) । ११—नराए (का०) । १२—चतुर (का ) । १३—प्रो निवासना (स०) । १४—रानी (का ) । १५ कोमल (का ) । * ससिम = सुकुमार ।

दोहा ८५-१ सोरह (का ) । २—कमल (का ) । ३—जो (का ) । ४—कोंवल (स ) । ५—होइ न (स ) । ६—सौं (का०) । ७—कीन्ह (का ) । ८—मुख (का ) । ९—कराल (का ) । १०—ऊ सतान हियै (स०) । ११—मै (का०) । १२—नवि (स ) । १३—ज्यों (का ) । १४—कहै (स०) । १५—मन मैक (का ) १६—सुवा (का ), सोवा (स ) । १७—चंचल (स ) । १८—जु (का०) । १९—मच (स०) ।

छोरहु मग कहूँ जो देऊ । कपौरा कही सुनौ नर देऊ ॥
प्रथम केस दीरघ अति भाषो । जो[1] दीरघ अंगुरि छबि हाथो ॥
दीरघ[2] रेख ग्रीव तर सोहै । दीरघ नैन मैन मन मोहै ॥
लघु लिलाट भृकुटिया ससि जोती । जो लघु दसन दिपहँ जस मोती ॥
पुनि लघु कुच अंभरि[3] उनमाना । लघु नासा मृग लोच समाना ॥
सुभर कपोल रूप रस भरे । सुभर भुजा छाँव जनु[4] भरे ॥
सुभर नितंब देख मन मोभा । सुभर जाँघ जिमि[5] कदली गोभा ॥
नाभिक छीन बदन परै[6] नाभा । छीन[7] अधर जनु कागर पीना[8] ॥
छीन[9] पेट पाखर जनु[10] पाना । छीन[11] लंक ज्यों सिंघ बखाना ॥
दोहा—पदमिनि पहिचानी छा[12] मैं इन अंगनहु[13] भूप ।
अब[14] बरनो तिहि[15] अंगनि[16] अंग अंग के रूप ॥८६॥
प्रथम केस नीरस घुंघरारे । ठाढ़े पाय[1] परैं अति कारे ॥
कोमल[2] कुटिल बरन सटकारे[3] । सटपटाहि जस नाग बिसारे ॥
मानो मलय अंग पर धरे । सुरहिं[5] चापु नहिं[6] लहरिन भरे[7] ॥
नाग[8] डसहिं छऊ मानि[9] न लहीं । इन्हें निहारि लोग[10] जो रहीं ॥
कालहु प्रेम फांद कै[11] धरे । तहि[12] उरझि नैनन[13] मन मरे ॥
अधर टारि केस जब झारे । तिन्हहि मथन अब दीपक बारे ॥
दीपक बदन बाग जनु धरा । सिमटि[14] अंधेरा पाछे परा ॥
पी[15] पूनी देखत अंधियारी । उपे[16] घटै तो करी पैसारी ॥
अब[17] यह मथट चंद नहिं भगा । तिहि[18] कुल रोह पुकारेसि[19] लटा[20] ॥
दोहा—बिथी[21] बदन बारिज पर भवर जुर कहै[22] भाइ ।
उनि[23] न सकत रस लिबि रहे रह सुभाइ सुभाइ ॥८७॥

---

दोहा ८६–१—प्रौढ़ पुरुष (स०) । २—अंभरई (म०) । ३—दीरघ कर धुन रेख तर (स ) । ४—छम (का ) । ५—जिम (स ) । ६—मनु (का०) । ७—कद (स०) । ८—प्रबीना (का ) । ९—रहै (स०) । १०—बीना (का०) । ११—कहै (स०) । १२—जस (म०) । १३—कहे (स०) । १४—जु (का०) । १५—अंगनजो (का०) । १६—अबर (का०) । १७—तिम (का०) । १८—टा (का०) । दोहा ८७–१ पाई नि परहि निसारे (का०) । २—कोमल (स०) । ३—घुठकारे (म०) । ४—सुनपटाहि (का०) । ५—मिले (म०) । ६—भरहि (का०) । ७—मैं (का०) । ८—छरे (ग ) । ९—आरा (म०) । १०—नरलहु कटही (म०) । ११—तक जीवन (ग ) । १२—मोहकर (म०) । १३—तिनहि (म०) निहु (का०) । १४—दीपक (का०) । १५—ममत (म०) । १६—चौहु (का०) । १७—यह भी पधी न फिरी बिमाथो (का०) । १८—जप (म०) । १९—तिन (म०) । २०—फिरायन (का०) । २१—मुटा (म०) । २२—कहहुं (म०) । २३—हैं (म०) । २४—उलथ बिमथ (म०) ।

ना बरनौं बरुनी अनियारी । बनी घनी भारी[1] कजरारी ॥
फूले कंवल होइ रखवारी । सिर[2] महुँ धार धार[3] भये बारी ॥
काम बधिक जनु खंजन घरे । लीला ठाठ कीन्ह पहुं फेरे ॥
भूलीं[4] घनी भूम जनु चोखा[5] । साधि बान ठाढे भय झोखा[6] ।
जो मन तहां जाइ सो भूझै । भूझ मुयें कोउ बान[7] न सूझै ॥
जाकर काम धाइ नियराई । ताकर दिस्टि बरुनि पर जाई ॥
कोउ[1] ■ जिया बरुनी जिन्ह पीठी । पर उर[11] बान उठें[12] बसि[13] पीठी ॥
सौंवै काढ लाग जो आना । ठ[1] धनि धरुड[15] कढ़ै न प्राना ॥
तन सों निकस[16] जाहिं पुनि प्राना । गड़ न[1] निकस प्रान तें बाना ॥

दोहा—देखे बीधत कवन[17] कौं[18], मुनि बीध्या[19] संसार ।
जौने सुना सो बिध रहा कहि न जाइ बिस्तार ॥१२॥

नासिक चीन[1] करम कै धारा । मन तिहि परत होइ दो फारा ॥
ससि पर जस कली जनु राखी । मधय[2] पुहुप चोंहु[3] का साखी ॥
जो पुनि पहरै फूल पराऊ । कहि न जाइ कछु तिहिकर भाऊ ॥
सुमटा अधर बिंब तजि छहा । ध्यान रूप रखवारी लगा ॥
सुवा ठोर ना बरनौं तासू । यह न[1] बास यह पुहुप सुबासू ॥
जदपि सुवा[5] ठोर अति सोनी । तऊ कठोर न तिहि सर होनी ॥
यह कोमल जनु पुहुप बनाई । पुहुपहु ते अति कोमलताई ॥
बन बन सुवा फिरै तप[6] साधै । मुंदि मुंदि आंखिन पलक अराधै ॥
नासिक बरन ठोर मधु[7] हाई । पीर आ[1] भयो काट दुख सोई ॥

दोहा—बनी प्रकासक बदन पर, इमि नासिक चित चोर ॥
मनी स्याम मनु[11] ससि कुतुर[12] कीर[13] निहारी ठौर ॥१३॥

दोहा १२-१—बनी (स) । २—सुरमों (का) । ३—बान (का) । ४—नारी (का) । ५—द्वितीय (का) । ६—मोखा (स) । ७—चोखा (का) चोखा (स) । ८—भूये (का) । ९—स्याम (स०) । १ —कोइ न बिधाइ परी तिहि (का) । ११—सर (का) । १२—भपे (स) । २१—बस (स) । १४—(का) । में नहीं है । १५—धाइ (स) । १६—यह अर्धाली (का०) । में नहीं है । १७—(का) । में नहीं है । १८—सो (का) । १९— कवन (का) । २ —मा (का) । २१—बीधा (का) बधा (स) ।

दोहा—१३-१—नहीं (स) । २—तिनकर (का), मधिम (स) । ३—न (स) । ४—तिनकर (स) । ५—हंसा मैन मारै जनु (स) । ६—निवास तिहि (का) । ७—सोह (स०) । ८—तप (स०) । ९—गम (का) । १०—बेसर मुकर पत दिखराई (का) । ११—मनु (का) । १२—गिय (का) । १३—सुवा (का०) ।

अधर सो अमी भरे रस[1] राते । बिन तँबोल रंग सुरंग सुहाते ॥
कुसुम रंग सर काम्ह न आई । कहाँ मजीठ चोप अस पाई ॥
बिब लजाइ जाइ बन[2] फरे[3] । बिद्रुम सकुचि समुद महँ दुरे ॥
अस रवि उदै[4] होइ परभाता । ताहू तें अधरन रंग राता ॥
पातर निपट पान दुहु कीन्हें । फूल होंहि पावन रस भीनें ॥
दुहुँ बिच रेख सु जाइ न पाई । मनों[5] काम सों चीरि बनाई ॥
जनु बिद्रुम महँ भई दरारा । औ जोरा[6] सो रही बिचधारा ॥
झीनी[7] लीक माझ अस[8] देखा । कमल[9] पत्र पर ईंगुर रेखा ॥
बोलत अधर जात चाइ जाहीं[10] । नाहिन बिधि[11] चारे[12] जनु नाहीं ॥

दोहा—अधर लाल बिधि[13] रचि छबि, परघा बिरह बस जाइ ।
भूमि भया[14] अधरन मनो, पीर न सकयो बनाइ ॥६४॥

बरनि न जाइ दसन दुति ताऊ । बिधि[1] धरिया जनु धरै धराऊ ॥
हीरा छोल छाम जनु मढ़े । रंगे तंबोल रतन मन चढ़े[2] ॥
चौहर[3] गुरग स्याम रच रेखा । बिच बिच सीप सो बने बिसेखा ॥
बिद्रुम बिताम[4] रतन जिमि पहुरे । काम जौहरी पातहिं धरै[5] ॥
बोलत नैकु जो देहिं दिखाई । बिबिध चमक चित माहिं चुराई ॥
बिहसत जगत होइ उजियारा । जनु ससि माह कौंध लहकारा ॥
जाकी दिस्टि परी यह चौंधा । नैनन लागि रहै तिन्ह[6] चौंधा ॥
पाहन रतन हाहिं सो[7] जाती । हाहिं सजोत न जोत जो मोती ॥
मेरे जान बिहँसि जब खोले । कहै चमक चपला हूँ[8] डोलै ॥

दोहा—दसन दसन दुति रतन धुरि पाहन रहै समाइ ।
तिन्हहिं[9] माझ चपला मनो निकसत[10] सो छपि जाइ ॥६५॥

---

दोहा—६४-१—रस (म०) । २—बिनु (स ) । ३—फहरे (स०) । ४—परे (बां०) । ५—मीराई (स ) । ६—जिन्ह (स०) । ७—औ यह सुरा मो हिये बिच धारा (स०) । ८—सुरही (बां) । ९—हमि (म०) । १०—बरलक (स०) । ११—नाहीं (का०) । १२—बिन (स ) । १३—बाइ (का०) । १४—बहु (म०) । १५—बियो (स ) ।

दोहा—६५-१—धइ (ग०) । २—चढ़े (बां०) । ३—चोपा (स०) । ४—सेत (म०) । ५—जना पर तनु भरे (का ) । ६—भरे (बां ) । ७—मासत (स०) । ८—तिनहं (का ) । ९—बहु (का ) । १०—नि (का ) । ११—मद (म०) । १२—तिहि (का०) । १३—निकस मैक (का०) ।

रसना बैन सरस की बीसी । पी बोलत धन मधुर रसीला ॥
बीन तार तिहि गुनहि न पूजा । उपमा जाग धीर को दूजा ॥
कहै जो बेद सरस सरसाई । सुरता सरवन सदा हूँ आई ॥
सरवन[1] बचन अमी ह्वाइ परही । राम रोम तन सीतल करही ॥
सुरभी बैन परयो जिमि[2] पानी । त्यों[3] तन पुलकि उठै सुनि बानी ॥
सुनत[4] आह[5] मधुर रस बैना[6] । निकट मिरग होइ उतरे मैना ॥
पिक सुनि बैन लाज भइ स्यामा । लीन्ह नगर तजि बन बिसरामा ॥
बसी बोल न तर्क सजानी । बन महँ कुहक सीख सा बानी ॥*
थकि थकि थकि हारी नहीं पाई । तब निसान लाजहि छपि जाई ॥
दोहा—स्वात बूंद तिय[10] बैन[11] सुन चातक मिटी पियास ।
सबन सीप हूँ अवतरे, जहाँ[12] पास तिहुँ मास ॥१६॥

कँवल कपोल गोल अति बने । बिमल[1] कुमर सोभा दुति सने ॥
चमकहि बदन[2] देह दिखराई । चित तहँ बसत रपट नै जाई ॥
दरपन सोभ साभ जनु भरे । तक आम[4] चमकत अति खरे ॥
मनौं कँवल दल मैंद बनाई । छुए न कोउ अछूत अप ताई[6] ॥
यों[7] को आसवंत दुनियाही । तिहु कारन अछूत अबताही ॥
हिय सुरंग प्रेम रस भरे । जनु दाडिम फलसो मिलि करे ॥
तिल कपोल आयें पुनि परा । तिन तिल बसत तिलम चित करा ॥
जिन तिल देख परा ललबेली । तिस तिल ललकत जाइ न झेली ॥
कहि न जाइ तिल रूप रिझौना । कँवल बधि उरझा अलि छौना ॥
दोहा—तिल कपोल पर कोटि छबि कहि न जाइ विस्तार ।
मदन दीप[9] छबि[10] पतंग मन देखि[11] जरा मैं धार ॥१७॥

---

दोहा—१६—१—सुरतन (स०) भवें (का०) । २—पनु (स०) । ३—यों (स०) । ४—फल (का०) पुलह (स०) । ५—सुन (का०) । ६—भस (का०) । ७—मीनी (का०) । ८—सुन अवतरे निकट्टय बीमा (का०) । ९—सवाद (स०) । * उत्तर पद 'का०' में नहीं है । १०—तिह (का०) । ११—मन (का०) । १२—दुही कूल तिन्ह (स०) ।

दोहा—१७—१—समल (स०) । २—सोभित (स०) । ३—चमक चमक दुति देह दिखाई (का०) । ४—चितवत (का०) । ५—पुन आहु त चीकम खरे (स०) । ६—बराई (का०) । ७—मुँह (स०) । ८—दुनिया अबताई (का०) । ९—सुदीप (का०) । १०—बरनत मनो (का०) । ११—परत पतंग (का०) ।

मरकत सीस जनु कनक कपाट । दिसहिं दीन स बाँधि बनाट ॥
ससि जनु दुहुँ हाथ मैं लिया । निज कूचें पूजन कहँ मन किया ॥
दुहुँ निधि मूँदे[1] कपाट करे[2] । बरबसहिं हिय डीठि कहँ परे[3] ॥
स्तनन अपरमपार हुआ रहा । जलजु कंचन[4] चंदहि गहा ॥
जो कुमार सँवार गहि कारें[5] । जनि दुहुँ चौर चोख बहुकारे[6] ॥
मनि परकास सीसीं उजियारीं[7] । बनी नग कंचन मनु कारी ॥
जो मन[8] तहाँ सिद्धि मिन मधुक । अथा सीं[10] नाम कान्ह बस मधुक ॥
मूक[11] छतीनर सकल सुहार । जनि सीं बार कनक मिलिन[12] मार ॥
ठीमहिं[13] से पखिकहि[14] हम मुख माठी । तू निर्मोह[15] हमार दस माठी ॥

दोहा—मुकुता[16] मूँदी नग करी कनक सीसिन्ह[17] माल ।
नग कनक[18] मनु[19] मेर ह मिले मैन[20] करे जाप ॥६८॥

---

दोहा—६८—१—सब पाँच सस कहि (कां॰) । २—बाट (मु॰) । ३—परी (कां॰) । ४—कोर (मु॰) । ५—संचाहि (कां॰) मक—पखाई (मु॰) । ६—तारा (कां॰) हरे (मु॰) । ७—नमकारे (मु॰) । ८—पुतरीं (कां॰) । ९—जनु भारि (मु॰) । १०—बस (कां॰) । ११—नाम (कां॰) । १२—छोक (मु॰) । १३—को (कां॰) । १४—सुन्ह सों (मु॰) सौं ताहि (कां॰) । १५—पखिक कि (मु॰) पखिक सिहि (कां॰) । १६—ती मकर न भया सिहु मोती (कां॰) । १७—ओरे (मु॰) । १८—स्यों करे (कां॰) । १९—सीप यह (कां॰) । २०—कंचन (मु॰) । २१—मनु (कां॰) । २२—अजन (मु॰) । २३—भाह (मु॰) ।

पुनि[१] का बरनौं चिबुक डिठौना। जिन मिस दीठ फेर नहिं मौना ॥*
चिन[२] बह देखि सो देखि हेराना। तजि आपा तिहिं माहिं समाना ॥
सहज सुभाइ मदन[३] बिनु[४] बना। ज्यौंहि[५] बस्या त्यौं जाइ न भना[६] ॥
एक अनेक रूप होइ रहा। बहु बानिक[७] कवि[८] जाइ न कहा ॥
जानहु बदन दीप उजियारा। तिहिं तर सिमटि[९] रहा अँधियारा ॥
कैधौं राहु[१०] रकत[११] ससि जाखा। काढ़ करेज पाइ तर राखा ॥
कैधौं कमल कँवला माहीं। अलि बसि सौंन परा सुधि नाहीं ॥
कैधौं रूप कूप[१२] रस जासा। पैम लगन मन बसा[१३] पियासा ॥
किधौं पैम पासा[१४] कर बाऊ। तिहिं बस पिउ हारै का दाऊ ॥
दोहा—चिबुक माझ[१५] छबि निधि सघन ससि पर तारन तोर।
तिन[१६] दा[१७] मास[१८] मनोज मन पस्यो[१९] रसिक चितचोर ॥९९॥

दीरघ चिब[१] आमन[२] अस काढ़ी। सुमर[३] पुखार गई बनु ठाढ़ी ॥
बनु कस[४] बाग तुरी नहिं लीन्हा। समपूर नहिं सबद अस कीन्हा ॥
हिया काढ़ बनु ठाढ़ परेवा। कै सुक रूपहिं[५] भयो कर सेवा ॥
जनौ प्रेम मद भरी सुराही। पहिं[६] नवाइ रस लै छौं[७] चाही ॥
सहुंगहिं करुवी सटक जो होई। मोट परै देखै जो कोई ॥
जनु[८] संपीत नाग मह परा। ग्रीव[९] मान माना मनहरा ॥
पुनि[१०] तिहि ग्रीव परी तर रेखा। घूँटत पीक प्रकट सब देखा ॥
जहां मुकत[११] लर छपा जो होई। तरक[१२] भरम राखै सब कोई ॥
जो हरि प्रसक ग्रीव पर आई। सो बनाव निज बरनि न जाई ॥
दोहा—जनु मयर पहि ग्रीहि मलक देख[१३] विसक[१४] हियपार।
परवत[१५] कुच पूजा करन चमा[१६] भेंट ली हार ॥१००॥

---

दोहा—९९—१—पुन बरनू चाह (का०)। * का० में उत्तर पद नहीं है।
२—जिहि जो (का०)। ३—मदन (का०)। ४—बिन (का०)। ५—ज्यौं (स०)।
६—हमा (स०)। ७—बान (का०)। ८—चिन (स०)। ९—समत (स०)।
१०—कँहन (स०) कहन (का०)। ११—चाह (का०)। १२—बरकत (का०)।
१३—कोप (स०)। १४—चमा (स०)। १५—बासा (का०)। १५/१—पी (का०)।
१६—पम (स०)। १७—तिहि (का०)। १८—बात (का०)। १९—बिहस (स०)।
२०—रस बोर (स०)।

दोहा—१००—१—करयौं (स०)। २—नाटा (का०)। ३—सँभर पखारि
(का०)। ४—कै बनु तुरी बाम (का०)। ५—चपक (स०)। ६—हार। ७—
चाही (का०)। ८—समभाहि ग्रीव (का०)। ९—पर ग्यो (स०)। १०—पुनि
(स०)। ११—मिकत पकरा (का०)। १२—पान (स०)। १३—रेख (स०)।
१४—मुकत (का०)। १५—टप टप (का०)। १६—चमें (का०)।

सुभर सुआ भांति मनु करी । कुन्न धार' मीन मनु पहरे ॥
कंचन दंड देहि मनि साभा । पाछन' इमि कदली बस मामा ॥
मुर' पोनार कनन जब मामा । दै कें' बहु मैंन हिय दामी ॥
तिहि पुष निधि दिम चमकु पुकारै । चापु पुकारै चापुन हारै ॥
मुरज कांति सुज मखंम हमारै । रातें मनो लहिर मों बोर ॥
मौं चंपूरी सब लहिर पुखाही । बैरिन लहिर न पिपउ चपाहीं ॥
पुनि पहरे सनि नखत चंपूनी । जनु' पावक राखमि पढ मूठी ॥
जा मिउ कड़ हाथ पर लई । सो तिन हाथन रिस्टि करेई' ॥
पहरैं बाहु टाड मनोन । टासउ बाहु दुर्व पवि मोन ॥

दोहा—रीकि समानी हलन गनि जा जोबन बाह'' दुलाहि ।
जो पहोम पा' पहिन बम डासहि'' पी हम जाहि ॥१०१

हिम सरवर दुच चंपुन करे । संपुट बंधे करेरै बर ॥
निकसत किरन कन्न मनि दई । निपट कठोर अद्दुच होर' गई ॥
ऊपर स्याम अविक छबि छाई । न पनि छीन बैठ जनु पाई ॥
मरे मैंन दोउ लन बिसौना । ऊपर स्याम मगाह ढिठौना ॥
क्यों मनोज पिटिया' पन नाम्मी । फिरी दुहाई सब तन सामी ॥
जोबन जार चढत हिम चावहि । चापु न नवहि चरन नई नावहि ॥
निरन पमीनि करे पन मार्गी । बांधे मैंन सीन्ह बर थांपी ॥
बालापने कीन्ह निरमाई । बोल गंभीर परे चौपाई ॥
मैंन' जा पानिर मींचे बारी । मारंग फरै भई निरमाटी ॥

दोहा—पनन्च पम चौगान मों' लिया' बन मैदान ।
दुच मनान साजे वहीं मनु मति' में निमान ॥१०२॥

दोहा—१०१—१—डारी (का०) । २—गरा व मानो मारि (का०) । ३—न (का०) । ४—करवी की सम (का०) । ५—गिर नुमाइ कर (का०) । ६—करई पीठ मैंन (का०) । ७—उरम्‍ह (का०) । ८—उभा मगर बन (मा०) । ९—मानो किरन चार की पजे (का०) । १०—हरई (का०) । ११—नाहि ) । १२—मग पविक नेउ (का०) । ११—डोलि हासि जर्व अगरि (का०) ।
दोहा—१०२—१—सीन (का०) । २—कीन (का०) । ३—बैठहि चम्पाई । ४—मार्ग (का०) । ५—पर गाने (का०) । ६—धर्मी पनी की सीधी । ७—पमार (का०) । ८—निर (म ) । ९—चाप (म०) । १ —मति

पैन पान पातर मुकुंवाम । भौं[1] पानी धन करै प्रहाम ॥
देपत सवन सचिककमि सोमा । मन बल रपट परै है सोमा ॥
रपटत थिर[2] सुभुवंगम भारी । रोमावली उसी[3] हरवारी ॥
ताके विप पुनि जिया न कोई । जो उग डसा बचा धन सोई ॥
पा कवाचि नागिन सौं बाचा । तौ ठक रूप दखि तिहि[4] नाचा ॥
पीने[5] ठांवहि त्रिवली बाठी[6] । ऊपर मद पयाधर पानी ॥
बैठि रहै तिहि ठाहि पियासी । सिप[7] चहु नागिन ममवासी[8] ॥
उदपन[9] मारि फांसी कै मार । नाभि कुआ गहिर[10] गहि डारै ॥
बहुत हनी[11] दुष सरस[12] न हारी । न्याव न कहीं[13] हाव बटपारी[14] ॥

दोहा—चालिरी रोमावली त्रिवली चौपट पाट ।
नाभि भंवर मन परयो तहं कहु निकस किहि बाट ॥१०३॥

कर[1] सु[2] बैठ पीठ पुनि पाछे । बैरिन[3] उसट चली जनु काछे ॥
बाक बीन परी [illegible] पीठी । फिरै पीठ दरसी तिन्ह दीठी ॥
जो देख सो पीठ कै जाने । पीठ सरूप दीठ जग मानै ॥
बेनी पुनि जो पीठ पै परी । कालिंदी गिर[4] सौं जनु[5] ढरी ॥
कै वन[6] मलय बास तिहि आसा । नाग आइ[7] लिपटे तिहि पासा ॥
मिले भूस[8] माया धन बासी । सदा सो नाप रहै फन काढी ॥
सदा कंज[9] ताके भुप[10] माही । भृगस[11] कंज तहा केलि कराही ॥
निरखि सो बेनी नाग लिकाई । नाग पतार दुरे सब जाई ॥
जदपि फनहि नाहि दिखरावै । पै ते कंज कंज कहं पावै ॥

दोहा—विप पमार[12] मोहन लिये मनि[13] मालहु[14] हरि बीन ।
महि बेनी के सूर सौं, राख सरन जनु दीन ॥१०४॥

---

दोहा—१०३—०—भौंपानी (स )। २—काढन सुभूजन (स )। ३—डसै (का०)। ४—थकि (का०)। ५—तिन्ह (स )। ६—जो (का )। ७—साहीं (स०)। ८—सेन (स०)। ९—नग बासी (का )। १०—ते पुन फुर फांसनी डारे (का०)। ११—चर चर कहु (स०)। १२—हठी (का०)। १३—सुध न सिधारी (का )। १४—बेद (का०)। १५— बपारी (का०)।

दोहा—१०४—१—बीर (का०)। २—गह पु (स )। ३—अपछरा (का )। ४—करै बैठि (स०)। ५—कर (स०)। ६—मनु (स०)। ७—की तिन मिसैं (स०)। ८—बसा सो बसा बिसवासी (स०)। ९—मोष माना मन बांधे (स )। १०—पंचत के (का०)। ११—मग (स )। १२—जो कुरा (स०)। १३—मकर (का )। १४—मग (का स०)। १५—माथे (का०)।

कहा लाइ तम जाइ न कहा । कहुर बनि बैठ बन[1] रहा ॥
कहा न पूज[2] निरर मना गाजा । सापनि बिरहु कीन्ह[3] पर छाजा ।
मसरि करि प्रहार निस रहै । बिन मु बच बिरह दुख दहै ॥
मन तन रोम रोम बिन कहा । निज मानन[4] मानुस[5] कहु रहा ॥
पनत मंद सबरे हिनि नामा । जनु दुइ धनु बीच[6] निरु नामा ॥
मध[7] लंक भूमि पर दिए । छदपंट मनकै करि[8] निर ॥
निरख बीन[9] कछु बरनि न जाई । मनि मूठी महँ रहा समाई ॥
मन लइ जात मीन इाइ जाई[10] । निज कटि की गति जाइ न पाई[11] ॥
बीने देख मंल भा मोई । बीखिम[12] जैसि सघन जिन्ह हाई ॥

दोहा—बिधि कछु बाँधी नहीं बरौं जुग मह मोर ।
मरी माझ यहँ[13] पीवर नाँक बार का सांढ ॥१०५॥

नाभि भी निरख माझ क ठाऊ । हौं पवना कहि भाँति बताऊँ ।
प जस कप माइ भई गरा । माथा नहीं नाइ कै परी ॥
मिरग गोभ जसा निज बीन । औ[1] कबहुँ कहिहै न बहोरैं ॥
जोबन मधुर मारि तिनि माँहीं । स्वाति बूँद रस पाइनि नाहीं ॥
जिन्ह[2] हुन निम स्वाति कर बूंदा । दिवस[3] न पबहु मधुर मूंदा ॥
कबंल कली कै सुरज न देखा । मुख बाँध निरखी जिन्ह देखा ॥
धौं का सुरज भाग का बसी । जाक किरन खिले सो कली ॥
धौं को भवंर बाँधि रस माने । जोबन जनम सुफल कै जाने ॥
मति सुबास[4] ग्यो पुहुप न बासा । पाइ बास भनि भये हैंमासी ॥

दोहा—यह[5] कमागी बहु मिलै जनम भंवर हार मूल ।
पी ताके भुग्ना पर, करंभ[6] कली क फूल ॥१०६॥

---

दोहा—१०५-१—नन (का०) । २—नरंग (म०) । ३—भेष (म०) । ४—मई (म ) । ५—दै (म०) । ६—पोपन (म०) । ७—मानमरि (का०) । ८—पद (म०) । ९—नहि (म०) । १०—नपी जुर्मक पुहुप (का ) । ११—गति (का०) । १२—मई (म०) । १३—पनपीन्ह पीन्ह मचम (का०) । १४—वही (का०) पहरि (म०) । १५—जाबन की (का०) ।

दोहा—१०६-१—नास नाम (का ) । २—जिह का हान खर ना कीजै (म०) । ३—निर्हि रति गई (का०) । ४—निरख (का०) । ५—सुबास (म०) । ६—दिन (म०) । ८—बहु (म०) । ९—मुचनन (का०) ।

सुभर नितंब सो कोमल परे[1] । मनियारिनि सौंरा करि धरे ।।
सोभित जांघ कनक गभि[3] थंभी । ऊपर सुभर कदारी[4] भमी ।।
तिन्ह न पूजियै करनी रामा[5] । जो मिर पाइ कीन्ह तो[6] का भा ।।
पात मराल देखि पराहूँसे । बसती छाड़ि सरोवर बसे ।
गज बन[7] परहिं बिसूरि बिसूरी । धुनहिं सीस भी डारहिं धूरी ।।
चरन कँवल कोमल अति बने । राते ज्यों मेंहदी रंग सने ।।
मंजन लगि जल महं जब धरे । जान सो जल पावक महं परे ।।
पहे पटम्बर[8] पर दिन राती । कै सो ध्यान राजन[9] की छाती ।।
चमकहि नूपुर अनवट सोनी । सुन बिधियभि[10] मुनि बोलहिं मौनी ।।

दोहा—तिन्ह चरनन उरझा अगत रहा भाख जिय लाइ ।
सो मुनि भी[11] भा पर धरे रोम न बानी[12] जाइ ।।१०७।।

मुख ससि रूप सूर मन लमा । प्रेम गहन लाई पर गया ।।
केस भुजंग साज छ परे । भ्रम फंद परि बहुरि[1] न टरे ।।
बेनी नाग कोप धरि आवा । भौंरर[2] अली गो मदर बतावा ।।
सुनि दुतिया ससि उमा लिलाटू । तिन्ह दरसन कारन भा मादू ।।
बांके नैन ज्यों गहे कटारा । लागि हियै महं[3] भम दुसारा ।।
नासिक चरण साज उर कीन्हा । भी मुख मोन लोभ तिहिं दीन्हा ।।
दसन[4] भाव बरना जस कीधा । नाई लाग रहा चित बींधा ।।*
पीउं लटक सोटन मन कीन्हा । भौंह अबाय[5] चाक चित दीन्हा ।।
कुच हिय भै कँवर[6] है परे । है जो कठोर कठिन हूँ[7] मरे ।।

दोहा—बरनि बान भृकुटी धनुक तिन बीधे सब देह ।
बिषमान दीसै[11] प्रगट रोम रोम महं[12] बेह ।।१०८।।

---

दो—१०७—१—धरे (स ) । २—मिले कार मूंदा कर (स ) । ३—कदलि (स०) । ४—बरारे (स ) । ५—सोभा (का ) ६—नौ गोभा (का ) । ७—मुनि (का ) । पिदम को पर (का०) । ९—रातहि (रा ) । १०—दीढी (स०) । ११—बह (स०) । १२—बानि नहिं (का ) ।

दो०—१०८—१—फूर मा तरे (स ) । २—भविरयव (स०) । ३—मनु (का०) । ४—हई (स०) । ५—दरसन (का ) । ६—रचहिं हि (का०) । *इस चौपाई के पश्चात् (स ) प्रति में १३ चौपाई और एक दोहा अधिक है । ये चौपाई और दोहा आगे पृष्ठ पर दिए हैं कृपया ठीक करलें । ७—मुखै (का०) । ८—मुखाद (का ) । ९—कम्बर (स ) । १०—भै परे । ११—यह दीसै (स०) । १२—तम (का०) ।

पेमा प्रबल प्रेम बस भयऊ । अस्थिर मन उदास होइ गयऊ ॥
राज काज दिन छिन न लागै । निसि निद्रा बिनु[1] पर्रै न जागै ॥
तार गिनत बितहि सब तारे । छिन न छिन पुतरी के तारे ॥
नींद[2] नास विरहुन[3] मन दागू । धाव दिहुसि घर भय बियासू ॥
जो मन राम रंग महं मातै । निसहु न सवै पम भरमातै ॥
कह न पर व्याकुल म गहै । काहु सा मन मरम न कहै ॥
सोचहं माथ भरे दिन राती । जैसु दियो दिया के बाती ॥
पुत्या[4] रही न दीमें आंसू[5] । छिन छिन घटै लाग मन मांसू ॥
मा तन निरर राम जो रहा[6] । सूरज बदन मदन मनु[7] गहा ॥

दोहा—जिन्ह[8] बट[9] बासा पम को तिन[10] बट रकत न मास ।
मलिन तन होइ उज्ज्वल[11] मुख[12] निरखै होइ मास ॥१०६॥

यद्यपि जीनी पार बसाई । नीनाँ राखसि अगिन दुराई ॥
पै निदान इक दिन अनयासा । सखी अगिन उर कीन्ह प्रकासा ॥
भइ[1] तन भार पग बैठा । भन मनोर टूट सोइ पैठा ॥
छिन न चैन तरपै अनयासी । जैस मीन तरै बिनु पानी ॥
धारै बिछु डोक जनु नाका । क बन[2] बिरस धान म आवा ॥
जनु इन्द बधिक परेवा डारा । कै सोटन गहि भुई उतारा ॥
अति व्याकुल छिन चल न पावै । पल पल पीर प्रबल होइ आवै ॥
मुख उदास निरखें इमि ताती । मनमुख होइ जरै जिन्ह बाती ॥
पसुवन पर भार उर आवै । मनों बूनमर पूल कुम्हलावै[3] ॥

दोहा—तन मन अति व्याकुल बिकल, छिन न[4] होइ बिसराम ।
मन[11] उदास तपन भई मन्दिर भयो हमाम[12] ॥११०॥

---

दो०—१०६—१—पुनि (का०) । २—निरहि (का०) । ३—शोक दुख (का०) । ४—व्याकुलता गहै (का०) । ५—पपिहा (म०) । ६—मरामु (म०) । ७—माटि मरा (म०) । ८—रहा (म०) । ९—मनु (का०) । १०—सिहु (का०) । ११—उन (म०) । १२ सिहु (का०) । १३—उजल (म०) घोन्कर (का०) । १४—कय मुख (म०) मुई (का०) ।

दोहा—११० —१—मरगामा (का०) । २—मय तनुतो मनु (का०) । ३—फूल मन फंदर फन (का०) । ४—तरफ (का०) । ५—भई (म०) । ६—धर्ने (का०) । ७—होहि (का०) । ८—जागो (का०) । ९—बिछावै (म०) । १०—बिन म (का०) । ११—पबट (का०) । १२—हमाम (म०) ।

कबहूं गिर[1] अचेत होइ जाई । मानो[1] महुर घरल कै खाई ॥
जैसें बहुत विसनि कर डसा । जापा बिख सो छूट परगसा ॥
गारुड़[2] बहु मंत्र पुहुरावहिं । मंत्र करहिं जो उतर न पावहिं ॥
जिन्ह मारे नागिन कर राखा । फकर न देइ फेन मुख भाखा ॥
जनु अवधूत रोक तन स्वामा । मन सें[3] भयो प्रान कै पासा ॥
काया गहुन[4] भाप सों न्यारी । रहा मगाय जिहि सो तारो ॥
मन तन सौं कछु रहा न माना । मन तन स्वाय मीत रंग राता ॥
जहाँ[5] लोग परान[1] सँभारा[7] । बहुं सुभ्र सब सरग पजारा ॥
जो माया तिन काया पूछी । इन[11] इहु[11] मरी[11] हरी[1] कै पूछो ॥

दोहा—मन जब राता मीत सों तब तन मों कछु नाहिं ।
माथे मोटो मुइ परा, माथे मग्या नाहिं ॥१११॥

पुनि जो कबहूं चेत महं आवा । जनि काहू गुरु[1] दै बौरावा[1] ॥
भइ जनु[1] घीन पावस[1] की करा । देव भूरग तें[1] धरती परा ॥
मड़[1] धम रहै टकटका लाई । जानहु मूरति[1] चित्र बनाई ॥
पुनि उठि बैठि तकै चहुं ओरी । बावर स्वांग जस जस[1] होरी ॥
चुवहिं[1] नैन जानो[11] पिचकारी[11] । रंग गुलाल मंच[11] रक्तारी[1] ॥
सपटे[11] उठहिं नाहि बल स्वासा । जनु होरी लाई चहुं पासा ॥
मूठी भरे धूर[11] महि मेले । विरही विरह धुरड्डी[1] खेल ॥
कबहूं सीस धुने पछिताहीं । मनहु नाम मनि बैठि गवाईं ॥
बूझहिं[14] लोग बाँह[11] गहि माथा । उतर न देइ पेम मदमाता ॥

दोहा—मन उरझा उत पेम फँद छूटे तो सब सुध भइ ।
तन[11] मूना बिन पीव पै कछु को ऊतर देइ ॥११२॥

---

दोहा—१११-१—कर (स०) । २—जानहु (का०) । ३—काक (स०) । ४—भये (का०) । ५—बर भावइ (स ) । ६—के (का०) । ७—समूच (स०) । ८—जानें (का०) । ९—परा (स०) । १०—सम्भारा (स ) । ११—घन (का०) । १२—हिय (स ) । १३—भरें (स०) । १४—भरो (स०) ।

दोहा—११२-१—गुरु (का०) । २—बुराबा (स०) । ३—मनौं (स०) । ४—कैइ (स०) । ५—सौं (का०) । ६—जिम (का०) । भरत (का०) । ८—उठै (का०) । ९—पौं (का०) । १ —जो नाहिं (स०) । ११—चाहिं (स०) । १२—पुचकारे (स०) । १३—मासोक (स ) । १४—कटारे (स ) । १५—पमटहिं(का०) । १६—धार (स ) । १७—धुरहंडी (का ) । १८—बूझे (का०) । १९—नाप कहु (का ) । २०—घट (का०) ।

प्रम पहुन गाइ रवि गया । जग महँ अंधकार भ राता ॥
भई बंधु मलन मुख नाहीं । मया निरग मुर पछिताहीं ॥
आवत पुर' मुरै सब धाई । दई पुरानिक बद बुलाई ॥
तावन माम्ध मुना मयान । जनक मगर हुन मब मान ॥
समुझ' समुन्द्र बिचारहु' राम् । किहिं मजाम मा मन बिमाग् ॥
दवी विन बींगह पछिताई । जिहि कारन मइ म्याकुलताई ॥
कै काहु करी मछु कीन्हा । दानव न्ह बस काउ कीन्हा ॥
क बनि पुरुष दवि मनि लागा । काहु मारि जाहू कछु टाना ॥
धाई मगन तजन' तन नारी । मा पाया' पी का बटपारी ॥

दोहा—नारी देखि बबाइ कर, दिया पार मम्हपाइ" ।
मर्मुम्नि बिया ठहराइ निम ताकर करतु उपाइ ॥११३॥

प्रथम बैद राजा पहुँ आवा । माम मवाइ बैठ मुस्काया ॥
पुनि गहि हाथ निहारसि नारी । बरम' घोर दूषन' मों म्यारी ॥
देखत बैद चकित होइ रहा । कठिन रोग कछु जाइ न कहा ॥
पूछें फिर नारी यम गही । मनत' मान राजा तब कहा ॥
प्रम पार कछु बैद मनारी । फिर फिर का बखानि कर नारी ॥
मन महं मन पीरा कै नारी । कहै निहार' मा जाइ' निहारी ॥
माहिन उठ का मर' मनजानि । बरती मदिन गम का नाथनि' ॥
यह पीरा बन उहै उपाया । जाई मरम बान कर पावा ॥

दोहा—नू फिर फिर मारा गरुमि मार उर मैं बाच ।
मुना न मबमी बाम का नारी दमि उपाव ॥११४॥

---

दो०—११३-१—रवि जो मन काहैं भर (मु०) । २—बिब (मु०) । ३—जानु मम्ब हुती सब जराई (मु०) । ४—आवत (मु०) । ५—देखहि (का०) । ६—समम्भ (का०) । ७—बिचारहि (का०) । ८—मींमुका (का०) । ९—मना (मु०) । १०—हारे (मु ) । ११—कहु जो (मु०) । १२—समुमाइ (मु०) ।

दोहा—११४-१—उपन्न (का०) । बुम्द (का०) मुपुन (मु०) । ३—पाम मल (मु०) । ४—मइ (मु०) । ५—निगरि (का०) । ६—जाह (मु ) । ७—बाब मन मुरुबामि (का ) । ८—समदावम (का ) ।

सखि यह परम भेद उठि आवा । पथ जनम कहँ[1] आन सुनावा ।।
राजा भय राम कछु नाहीं । बिरह बान लागहिं उर माहीं ।।
जिहि के पीर पान हरि लीन्हा । औसर[2] बस मन बावर कीन्हा ।।
काप बदनि बान जौ छूटे । रोम रोम लागे तन फूटे ।।
करहु उपाइ बिलंब न लावहु । राजा कहँ वह मीत मिलावहु ।।
साहिब कठिन पेम कै पीरा । बिन दाद में आति करै अधीरा ।।
पेम अगिनि जौलौं घट परै । तन मन जारि जीव[3] लौं मरै ।।
जौलौं आउ कहँ पिउ[4] न मिलावै । पिउ मुख पानिप पान न पावै ।।
जौलौं[5] बरत रहै न छिपाई । जी न घटै मित होइ सवाई ।।

दोहा—बेगि सँभारहु सुधि करहु राजा तन मन देहु ।
पल छिन अंगुरी नीर ज्यौं छीजत है तन मेहु[8] ।।११५।।

उत्तम महुत[1] छिन परवानू । आवा[2] तपत हुता जहँ भानू ।।
आइ नवाइ सीस भा ठाढा । उमै बिचारि बचन मुख काढा ।।
बड़ परताप अखंडित राजू । मन बांछित[3] पुरवै बिधि काजू ।।
तुम्हरे पीठ लगी हमारे । जप[4] जोति तुम्हरे[5] उजियारे ।।
जौं[6] है अधिमीपति नृप आवा । आँ[7] बस जाल नगर[8] महँ आवा ।।
तुम्हरी बिथा नगर कहँ[9] व्यापी । नगर कि मनु[10] सब दिवस संतापी ।।
जो देख तासो मन गहा । काहू कै मुख रकत न रहा ।।
जैसे गहन[11] सुरज जब होई । जगत[12] सियर[13] दैपै सब कोई ।।
काहू के तन महँ जीउ नाहीं । जिउ सबको तुम्ह जिय माहीं ।।

दोहा—ज्यौं बसुधा[14] सुत सुरति कहँ गोपी[15] भई अधीन ।
त्यौं तुम सुख सुख स्वाति लगि सीप भए जग[16] मीन ।।११६।।

---

दोहा—११५-१—कहि (का०) । २—आसु रैप (का ) । ३—पेम (स ) । ४—जौलहि (का०) जो लहँ (स ) । ५—पीन (का ) पथ (स०) । ६—जौलहि (का ) तौ लहँ (स०) । ७—अंपस (स०) । ८—मेहि (का०) ।

दोहा—११६-१—परहत (का ) परगट (स०) । २—आव (का०) उवा (स०) । ३—भाखउ (स०) । ४—आ सखो (स०) । ५—जपहु (का०) । ६—तुम राख (स ) । ७—अमर्दौ (स ) । ८—उपमा (का०) रूपमा (स ) । ९—जगत मे (का०) । १०—मैं (का ) । ११—मग (का०) । १२—सरजपन (स ) । १३—प्रगट जगत (स ) । १४—पीरो (स ) । १५—बसुधा सु सुरति कहि (का ) चंदा सत सरप कहँ (स०) । १६—कोपे भये (स ) । १७—नम झीन (स ) ।

बिना होइ सो परगट कीजै । धूरै रोग बाढ़ै तन छीजै ॥
मो पुनि रोग जो ममहि समाना । कहै बिना कछु जाइ न जाना ॥
कहौ मरम आपन जस आहो । सेवक सौं न दुराना चाहो ॥
जो कौन्यौं कामिनि चित परी । कहो मंगाइ दीजु इहि घरी ॥
महाराज आयसु जग जागी । कहैं जस जीव जो राखैं माम ॥
जो काहू राजा कै बारी । भौरें देस सुनी उजियारी ॥
ताकौ रूप सुनत चित गहा । कहो सुगम कुछ अपरि न रहा ॥
पाती लिखि अब बेगि पठाऊ । ज्यों के त्यों सुधि सोधि मंगाऊं ॥
जो अपछरा निष्टि महं आई । मतर सक्ति सौं देऊं मंगाई ॥

दोहा—माज राज परताप अस इन्द्र अखाड़ा माथ ।
जो चाहै सोई करौं अगत तुम्हारें हाथ ॥११७॥

तिहि उत्तर राजा तब दीना । बिरह मरम पोथा गर खीना ॥
सुन परधान कहौं तो पाहा । जैसी कछु बीती जिउ माहा ॥
यह जु एक साहिम तब आई । जिन पदमिनि कै कथा सुनाई ॥
सोई कथा मगिन होइ परी । तबसौं सुमग सुलम सब धरी ॥
जब लौं धीरज संग पहुंचावा । तौलौं तन यह बोझ उठावा ॥
अब यह धीरज टूटि भुइं परा । तन निरास निरबल होइ उरा ॥
तातें अब हौं कहौं हंकारी । मदा बिरह बारह माहि मारी ॥
जो अबै बगि होइ नाहि मेना । तो जीवन मति निपट दुहुना ॥
मई निदान आइ नियराना । देह जाइ कै होई मिलावा ॥

दोहा—मान बम चलि मीत यहं मिलन मात्र तन प्रान ।
जौं आसा जिहि छिन छूटै तिहि छिन मरन निदान ॥११८॥

---

दोहा—११७–१—मेत (स०) । २—राक्षस (म०) । ३—उई (का०) । ४—तिहि (का०) । ५—उहावा (का०) ।

दोहा—११८–१—चाहि (का०) । २—जब (म ) । ३—उर (का०) । ४—महावा (का०) । ५—निमम (का ) । ६—उरा (म०) । ७—हुंकारी (स०) । ८—रहि (का०) । ९—पुनि (का ) । १०—स्वांसा (म०) ।

प्रहुष[1] सेन बिनायो कर जोरै । प्रथमीपति बिनती सुन मोरै ॥
जिन बिषमा तनु बिथा उपाई । तिन ओषद पुनि प्रथम बनाई ॥
जिन जैसी भूख्या[2] उपजावै । तिन्ह तैसो भोजन पहुंचावै ॥
जब यह करी रैन[3] अंधियारा । तब बारै दीपक उजियारा ॥
दुख बियोग महं पीर परीजै । ता उपाय कह आस करीजै ॥
जो इह पेम दुख पंथ न जानहु । उतहु चाह भई पहुंचावहु ॥
पेम चाह ताहीं[5] पै चाहै । जाको पीड़ पिरीत हों[6] चाहै ॥
निज पिउ चाह पेम दुख जानहु । पेम दरद कछु और न मानहु ॥
जब मति प्रबल अवस्था[7] होई । तब बरसों[8] सम्हह न कोई ॥

दोहा—कहु कों[9] दुखी जो पेम दुख जिन[10] सुधि पिय ना देह ।
बैद जिये औखद निकट[11] पीर बिना कई बैद ॥११९॥

प्रहुषसेन अति बीच बंधावा । पै राजहि छिन चैन न आवा ॥
प्रेम प्रबल मन धरै न धीरा । बीच दिये बाढ़ै अति पीरा ॥
बिरहा ब्याल भयो जिउ खेला । तरफै जिउ[1] ज्यों[2] बझा परेवा ॥
जदपि नैन मेघ झर लावहिं । आंसु नीर उर नदी बहावहिं ॥
तदपि जिउ चातक न सिराई । जो[3] लिहि स्वाति बूंद लय नाई ॥
छिन ज्यों त्यों दुख पीर संवारी । बिरह रैन दूभर अति[4] भारी ॥
तपा सूर छिन आ निसि माहीं । नीरज नैन सूल न मुंदाहीं ॥
मन मा भंवर भरै बहु जोरा । पंक कमलनि ज्यों नहि मोरा ॥
चलै अस्वरात[5] तपत उस्वासा । बढ़ी पेम मन पीउ पियासा ॥

दोहा—राजा कै यह गत भई ज्यों बारी बिन मीन ।
तरफै तपै जपै जिये सुरत पीर आधीन ॥१२०॥

---

दोहा—११९–१—प्रहि (का०) । २—रूधिया (स०), भूखा (का०) । ३—अमत (का०) । ४—मनहु (स०) । ५—नहीं (का०) । ६—कर (का ) । ७—अनिस्था (स०) । ८—पुरवामि (का०) । ९—किहि (का०) । १०—ता (का०) । ११—बकठ (स०) ।

दोहा—१२०—१—ज्यों (का स ) । २—उरभाद (का०) जो बमा (स०) । ३—तिन (का०) । ४—भई (का०) । ५—जिहि कर भवन्त (का ) । ६—बिनसै (का०)=जैसी । ७—तरफ कहै तैसे कहै (का ) । ८—तीर्थ सुरत (का०) ।

मन[1] मति मूरे बके जो रोवै । पीरम सोवन वेय न सोवै ॥
तोहि[2] बियोग महु गति भइ मोरी । तन मन्तहिं[3] जिउ ता पहि गोरी ॥
मधुन राज तम मा दुख लागी । दुख दम्पन सुख रैन बिहानी ॥
मगर छाइं सूरज होइ तई । राज पाट मा पावक[4] भई ॥
ममिन समुद बिरह भा तोरा । तेहि परा बाहित तन मोरा ॥
लपटै[5] लपट महर चहु पासा । मनो जरै सब भुई अकासा ॥
पैसोइ चाव[6] पवन होइ बहै । पौन अगिन राखी क्यौं रहै ॥
मन उरमा लोकर महूं परा । उमस न सकौ जहाहीं[7] जरा ॥
पुनि पावै किहि काम समारा । जब[8] जर देह उहै होइ छारा ॥*

दोहा—देह जबहिं[9] जर जाऊ किन रह[10] माहि सोच न कोइ ।
हरी किवो[11] निकलंक मनि, ताहि[12] कलंक न होइ ॥१२१॥

सुनियत हुती एक पंथ प्रीती । सो दसा हमहीं पर बीती ॥
हौं चायों ताहि लागि समावत । ताहि मुख चैन नींद किउ[1] आवत ॥
हौं भै भंवर भव बैरागी । तू सरोज[2] मुख सर अनुरागी ॥
हौं चातक पिउ पिउ[3] रट मोरे । तू स्वाती माय नहिं तारे ॥
मो मन जिन चकार जिम देख । तू मा चन्द चोर नहिं सच ॥
मो मति ज्यों मछरी बिन पानी । तू अपने पानी अभिमानी ॥
कहिं[4] को पेम परस्पर लागै । जो जिहि लगै सो तिहि सग जाग ॥
सो न मांच यह झूठ कहानी । लोगन झूठ साच कै मानी[5] ॥
साच होइ ता पेम बिसाती । तोहु उपज हाइ तन बाती ॥

दोहा—कै जनु तोरे पेम दुख पेमो तोहि डराइ ।
मलक[6] फाइ फंदन फसौं, डर सा निकट न जाइ ॥१२२॥

---

दोहा—१२१—१—एकै (का०)। २—तू (म०)। ३—रितइ जीता यही (का०)। ४—दिन भिन (का०)। ५—सावर (म०)। ६—चपचाइं (स०)। ७—चमो (का०)। ८—गोहम (का०)। ९—जाइ (का०)। १०—जराही (स०) जराहू (का०)। ११—जब (म०)। * इस चौपाई के पश्चात् 'स० प्रति में यह दसवीं चौपाई और है — 'तन जर छार होइ जा जाई। दरसन चाव नित जिउ में रहै ॥' इसे प्रक्षिप्त समझना चाहिए। ग्रंथ में नियमत नो चौपाइयों के पश्चात दोहा आता है। १२—एह (का०)। १३—हिय (स०)। १४—कि [illegible] (का०)। १५—ताहि (का०) जाहि (म०)।

दोहा—१२२—१—क्यों (म०)। २—नीरज (म०)। ३—भरत (का०)। ४—चर (का०)। ५—नहि कर (का०)। ६—जानो (का०)। ७—अपज (म०)। ८—निठमी (स०)। ९—मलग बाच येरम (स०)।

मो सौं बिनती पै बन भावै । होइ सो वहै जो पिउ की भाव ॥
हौं पधीन बनि दीनता¹ करौं । जिउ लै हाथ पाइ तर धरौं ॥
पूँजी यहै प्रान हा मोर । सो कीन्हो न्यौछावर तोरें ॥
तोर पेम प्रान जो पाई । ता पासौं पुनि कहा गमाई ॥
मैं पापा² हारा त जीता । अब तोहिं³ बनै सो तू कर मीता ॥
जो कोऊ या लगि जिउ देई । ताकी सुधि सोउ⁴ पुन लेई ॥
मो पुनि यही बात कछु नाहीं । सब जग जीव देह तू⁵ माहीं ॥
जाकौं दया दृष्टि कर हेरसि । ताही कै दुख दाह निबेरसि ॥
तोरैं हाथ बात सब नाता । जहँ⁶ सो चाहि देह जैमाला ॥

दोहा—जब जानी बाउर भयो आप आप बतराइ ।
ए बातें सब मीत सौं कहा सुरति मति लाइ ॥१२३॥*

जब इहि भाँति बिकल भयो राजा । बोलै लाग¹ बचन तजि लाजा ॥
लोग कुटुंब मीत अनुरागें² । जहँ पास समझावन लागें ॥
राजा तुम सज्ञान³ सयान । बुधिवान पंडित जग जानें ॥
कौनै मति तुम कहँ सिख दीजै । पै अब⁴ जीव बरै का कीजै ॥
पेम पंथ जानहु न सुहेला । औरु बिचारत निपट दुहेला ॥
जिन पथि मरो राज सुख मानो । कौनै काज देह दुख सानो ॥
जहाँ पेम तहँ भूख न प्यासा । अमृत भोग सो करै उपासा⁵ ॥
पर्वे देस महँ दास कहानी । राजम मह होइ हौं अपमानी ॥
जीव बरौ मन जिन अरसानी । मन पठाइ पिउ⁶ खोप मंगानी ॥

दोहा—बिरह बान⁷ उर भूप के ताकी मिलन उपाय ।
जीव बचन क्यों ज्यों सुनै, घाये घाव पर घाव ॥१२४॥

---

दोहा—१२३—१—दीपा (स०) । २—माको (स०) । ३—ताहि (का०) । ४—सोइ प (का०) । ५—सब (का०) । ६—जिय (स०) । * इस दोहे की नीचे की पंक्ति 'का० प्रति में पहले है ।

दोहा—१२४—१—लाग (का०) । २—सर भाये (का०) । ३—सुजान (का०) । ४—अस कहँ कोई पै (का०) । ५—निरासा (का०) । ६—तिहि (का०) ।

सुनि राजा सिय बचन दुखारी । प्रेम पथिक बिनती[1] सुख भारी ॥
का मोंहि सिष्य सीख[2] सिखरावहिं । बरत पथिन तेल जिन नावहिं[3] ॥
पेम समुद्र अथाह अपारा । तहाँ परें को काढन हारा ॥
नदी समाइ जाइ इक ओरा । का मिल बूँद करै तिहि ओरा ॥
जब डर पेम अमल दी लाई । प्रेमसि मन छिरक न सिराई ॥
पेम पहार अकास उचाहीं । मिल सोना मा ऊपर ताहीं ॥
जौं[4] तुम पेम खोज नहिं खेमा । भए न अबहुं पेम कर नेमा ॥
पेम नस कर मरम न जानों । झूठे सीखें रहिर न आनों[5] ॥
पेमी मीच[6] सगर बिन माई । पथिन बरा मकें न मिटाई ॥

दोहा—मोरे मन[7] अब मिठ दाऊ मीत[8] सुरत कर मेह ।
मेह[9] स्वास तन पेम लग सो तुम काढे देहु ॥१२२॥

जे तुम नवें सीख मोहि देहू । बचन बचन कर ऊतर लेहू ॥ *
महूं तुम प्रथम कही हौ हेला । पम पंथ जानहु न सुहेला ॥
सो तो सूझत तुमहि दुहेला । जिनहूं न भया पेम कर मेला[1] ॥
जगम न हिरै बिरह बैरागू । नयो न अबबहू कै निद्धगागू ॥
तिन महं पंथ सुगम करि जाना । बिरह कर पेम पंथ मन[2] माना ॥
हौं सिख सीख चरन कर पाऊं । पेम[3] पंथ पग चाप बढाऊं ॥
बसौं न बाँध रैन दिन चलूं । तौ लगि जौ लगि पीउहिं मिलूं ॥
ज्यों ज्यों चलूं उमंग त्यों होई । पेम[4] पथ पर थक न कोई ॥
जो तन हार रहूं थकि जाऊं । मन पग पिउ मग सों न डिगाऊं[5] ॥

दोहा—पेम पंथ मोहि अति सुगम, सूझ ब्याम डर नाहिं ।
कसक करेवै काढहीं[6] नीर[7] सु नैनन[8] माहिं ॥१२३॥

---

दोहा—१२२—१—अपा (स०) । २—सिखवहिं (का०) सोता (म०) । ३—पावो (का०) । ४—जौ (म०) । ५—छिपरहि दपन उपरहि होई (का०) । ६—उमम (म०) । ७—रहर (का०) । ८—पामई (म०) । ९—मिराहि (का०) । १०—मन उरका या मीत के (का०) । ११—सुरति रहा नर (का०) । १२—निवग (म०) ।

दोहा—१२३—*जयपुर की प्रति में इस चौपाई के बाद छटवीं चौपाई है — 'हौं सिख सीख——' । १—मेला (का०) । २—पर्वहि की (का ) । ३—भई (स०) । ४—पेम पंथ कर (का ) । ५—पैग नाप चढि (म०) । ६—निधि पाऊं (म०) । ७—थाकै (स०) । ८—काढहीं (म०) । ९—हीन मों (म०) । १०—नयने तिन (स०) ।

पुनि तुम कहा पेम पथ हेला । और निबाहत निपट दुहेला ॥
पेम पंथ महँ और न कोई । उर पिउ[1] और छोर मन सोई ॥
पेमी पेमहि और न चाहै । यह पेम[2] महि और निबाहै ॥
पेम समुंद मांझ जो परै । पार छोर[3] कर आस न मरै ॥
चाहै छोर सो[4] आपन मारा । और आस तजि भजै[5] पिउ छोरा ॥
जाकहँ नेह देह सों होई । जनम पदारथ खोवै सोई ॥ *
जीतै एक और कै हारै । तब दई पार आइ पग धारै ॥ *
पेम खेल महँ आयें बाजी । जो खेलै जो दाह पर राजी ॥
यह देखो[8] पुनि अचरज[9] रीता । जो हारै जानहु[10] तिन जीता ।

दोहा—पेम समुद्र अपार अति नाहिं[11] ओर नहि छार ।
जे बूड़[12] साईं तिरै यहि पम तवि[13] पार ॥१२७॥

पुनि मोहि इह[1] सिच्छा यह आगहुं । जनि पथि अरा राज सुउ मानहु ॥
जिहि विधि होइ राज सुख भाई । जो न मिले पीतम सुखदाई[2] ॥
तुम्हरे दिस्टि राज जो[3] भावा । सो न राज यहँ[4] धरे धरावा ॥
दुख समूह तुम सुख कै माना । देखो का यह अजब भुलाना ॥
यह सम्पति जो सपन समाज । तिन्ह कहँ[5] भूल कहौ[6] जिन राजू ॥
बूझे बाजहि राज निमाना । का तिहि पर जिउ धरौ गुमाना ॥
हौं अस राज न मन मैं लाऊं । जिहि सुख उरझि मीत बिसराऊं ॥
जो जिउ[7] मांझ मिले पिउ सोई । तौ यह राज कुसल पै होई ॥
नाहित पेम अगिन तन जारी । झूठे राज जनम का हारी ॥

दोहा—हार जनम राजा चले गए उमाह निसान ।
[illegible] जीते जोहँ[8] पर बूझ पेम मैदान ॥१२८॥

---

दोहा—१२७-१—प्रेमी और दूर पुनि (का०), उर पिउ और छब (स०) । २—प्रेम कहि (का ) । ३—और छत की आस न (का ) । ४—चाही (स०) । ५—और सही छोरा (का०) ६—पहुँचे छोरा (का०) ।* (का०) । प्रति में यह चौपाई नहीं है । ७—उबही (का०) ।* (का०) । प्रति में इस चौपाई के पश्चात् यह चौपाई है—प्रेम ही और न मांगी कोई । मीसी का नर प्रेम न होई । ८—दुखो (स ) दुप (का०) । ९—अचरज है (का०) । १०—जानै तन (का०) । ११—नाहिंहि (का) । १२—बूडे (स०) । १३—बिधि (स०) ।

दोहा—१२८-१—मोह (स०) । २—सहि (का ) । ३—जो (का ) । ४—भामा (का०) । ५—महि (का ) । ६—कहौ (का ) । ७—जिहि (का०) । ८—जने (का०) । ९—मैदान (का ) ।

पुनि तुम यह सिप[1] बचन बखानीं । कीने काम[2] देह सुख सानीं ॥
का यह देह अमर तुम जानी । जा लगि भयो[3] पेम अपमानी ॥
देह निदान धा कहँ आई । भले जा पेम पथ महँ[4] जाई ॥
का जीवन जग[5] पेम बिहूना । अछत प्रान तन पंजर सूना ॥
इहि के सुख तुम कहँ का लाहा । कातिक[6] जनम तुमहि इन चाहा ॥
बार बार मर मर जीतरई । याही देह मोह के बरई ॥
अपनी जात देह तुम जानी । अजहूँ समझो रे अग्यानी ॥
जैसे घट पट भीतर न्यारा । ऐसे तुम यह घट मंझारा ॥
अपना मूल मोहि भुलावहु । पम छुड़ाइ देह महँ[7] लावहु ॥

दोहा—जा पीतम के पेम सों मीठी[11] होती देह ।
सती[12] पेम लगि देह कों बार न करती खेह ॥१२९॥

पुनि तुम मोहि मांझ महँ[1] भाखा । जहां पेम तहां भूख न व्यापा ॥
मोरे पेमहि[2] भूख पियासा । पम छांड़ि दूजी नहिं आसा ॥
भोजन भूख पियासहु पानी । ए नहिं मुक्ति[3] पेम रुचि मानी ॥
इहै भूख मोहि और न कोई । पेम भूख इहं भूख न होई ॥
चाएं मैं जो कहा तन मोनू । सो तन अंत होइ पुनि नापू ॥
मै मन मनसा सत कै मरा । तन सों निकस पेम जिउ परा ॥
एही भूख जगत कर[4] बाधा । पेम नेम सब कर बिसराधा ॥
का सुख होइ जो भूख न होई । भूख समान सत्रु नहिं कोई ॥
सा तुम भूख मार[5] के जानी । पेम कथा कछु मनहि न मानी ॥

दोहा—जो यह पेम बिनास सो, भूख मसी निधि होइ ।
पीन रोक अभ्यासमी भूख न[6] हारे खोइ ॥१३०॥

---

दोहा—१२९-१—मुख (स०) । २—राम (स०) । ३—बहै (स०) । ४—जाको (स०) । ५—पर (का०) । ६—बस (स०) । ७—नेह देह (स०) । ८—कौतुक (म०) । ९—भया (का०) । १०—मन (का०) । ११—मीठी (स०) । १२—सबने (म०) ।

दोहा—१३०-१—बहु (का०) । २—प्रम न भूख न प्यास (का०) । ३—मगति (म०) । ४—बहु इहि नामत (का०) मन धन नामत (म ) । ५—मन (का०) । ६—भूर (का०) । ७—निरापुई (स०) ।

पुनि पुनि कहा पेम महं बामा । अमृत भूख सों करै उपासा[1] ॥
बिन[2] संजोग भोग कत होई । दुख बियोग[3] महं सुखी न कोई ॥
जौ लहि मिलै न पीतम पीऊ । जीवन मूर जीउ कर पीऊ ॥
जौंलहि यह जो होइ तन[5] मागू । भोग न पलम पलम कर रोगू ॥
जब पिउ मिलि तन[6] मय होइ जाई । तिहि सुख पापा देइ हिराई ॥
तब सुख भोग बिहुत सुख नाहीं[7] । के सुख पीउ पेम सुख मांहीं ॥
जा महं मीत मिलन कै आसा । जो मन सदा[9] रहै पिउ पासा ॥
मीउ मिलन बिन रुचौ न पेमू । कैसे रुची कीन्ह मैं नेमू ॥
कै पीतम सम जीव गवाऊं । कै पिउ[10] का पिउ पीउ 'सी पाऊं ॥

दोहा—अमृत रोग[11] मय[12] भोग[13] जौ[1] जौ लग मिलै न[14] पीऊ ।
जौ लग हा पिउ पेम सौं नेन न टारौं जीऊ ॥१११॥

पुनि पुनि यह सिच्छा[1] मुख बानी । चलै देस महं हास कहानी ॥
नैन लाग जाहिं हंसै जो कोई । पोषा आइ पेम सुख होई ॥
ज्यौं ज्यौं लाज जेय महं हंसै । त्यौं त्यौं ताहि पेम परसै ॥
जैसे हंसै बहुत ही रोवै । पल भर पेम[2] मीत न बिसराई ॥
पेमहु जो रोए सुख पावै । तिहिं कारन रोवन मोहिं भावै ॥
जो छिन नैनहिं[3] नीर न ढरै । पेम मीत सों अंतर परै ॥
जिउ पिउ पहं पिउ पेम गो प्राना । यही आय अब मरन निदाना ॥
सपने सुनी हंसत मन माहीं । तिहि रोऊं सपने जग माहीं ॥
सपन सबन[5] सब जानम होई । जे रे हंसहिं रोवहिं पुनि सोई ॥*
दोहा—डरौं न हास कलंक सौं जा पेम रहै मन माहिं ।
इहि आंसू[7] परवाह जल, किय कलंक[8] ठहराहिं ॥११२॥

---

दोहा—१११-१—निरासा (का०) । २—पुन (का०) । ३—पीतम (स ) । ४—प्रीतम मिलै न पीऊ (का०) । ५—जो (स०) । ६—तन मई (का०) । ७—बहुत (का०) । ८—पाही (स०) । ९—पुनि रहै सदा तिहि (का ) । १०—जिहि पोमू (का०) । ११—जोग (का ) । १२—महं (स ) । १३—जीव (का०) । १४—पीउ (स०) । १५—सु (का ) ।

दोहा—११२-१—सच्छिया (स ) । २—पेम न मीत (स०) । ३—नैन (स०) । ४—ढरै (स ) । ५—सब (का ) । ६—रोए (स०) । *इसके पश्चात् 'स' प्रति में निम्नलिखित चौपाई है जो 'का' प्रति में नहीं है —

जन जो नैन पेस लग रोवहं । पसु जन मुक्ता माल पिरोवहं ॥ क्षेपक है ।

७—इहि स्वास (का०) यही जो प्रास (स ) । ८—राखै (स ) ।

पुनि तुम[1] यह बोले सिय बानी । राजहु महं होइ है अपमानी ॥
यह[2] है अपमानी म[3] मानी । यही अपठ मैं पठ कर जानी ॥
और न मान मान मोहि सोई । पेम मान अपमान न होई ॥
पेम मान नामा अपमानू । सो अपमान मार अभिमानू ॥
जासौं होइ पेम समाना । सो अपमान मान मैं माना ॥
श्री जिहि कर होवै[5] अपमानू । जिउ जिह कर[6] तिहि माह समानू ॥
भूली देह नेह कर हेरी[7] । तिहि कै मान कौन पत मेरी ॥
देह मान तिनही प मानो । जिन्ह मन पेम ग्यान नहि आनो ।
का इहि झूठे मान भुलावहु । पेम मान अपमान न पावहु ॥

दोहा—झूठ मान ए[8] मान सब काया के सनमान ।
मान कियो मैं मान सौं[9] रीझ पेम अपमान ॥११३॥

पुनि तुम मोहि यह बचन सुनावहु । पीय धरहु मन जिन अरगावहु ॥
यहै बचन फिर फिर मुख भाखो । कहा करहु छिन[1] जिम मस राखो ॥
पीय बचन मीठो मोहि लागै । याते पेम अगिन उर जागै ॥
ज्यौं ज्यौं अगिन होये महं बढ़ै । त्यौं त्यौं पेम लागि[2] मन रहै ॥
तिहि कारन माहि अगिन सोहाई । बरती अगिन पेम सियराई ॥
मैं तौ[3] जरौं पीय सुन बैना । तब सावन होइ बरखहि नैना ॥
तन[4] झुराइ ज्यौं आक[5] झुराहीं । रगम नदी जहं विधि उमड़ाहीं ॥
लपट उसास सो पवन हिलोरा । बाढ़ै मेह अगिन कर जोरा ॥
नौखिन लागी रहै घमासन । दामिन होइ हिय चमक दिखावत ॥

दोहा—पीय बचन मोहिं धनि रुचहिं सुनि हिय होइ हुलास ।
उमंगि पेम तन[6] नाउ[7] मन[8] लै पावै पिउ पास ॥११४॥

---

दोहा—११३-१—तुमहि (का॰) २—इहि (का॰) । ३—हौं अपमानी (का॰) ।
४—अपमानो (का॰) । ५—होइ है (का॰) । ६—जीओ तिहिं कर तहाँ समाना (का॰) ।
७—हेरी (का॰) । ८—मान सब मान ए (का॰) । ९—सें (स॰) ।

दोहा—११४-१—छिन धीम न (म॰) । २—मया (स॰) । ३—सावन बरं
(का॰) । ४—मादौ (का॰) । ५—मन (म॰) । ६—थाग (स॰) । ७—नाम (का॰) ।
८—मन (का॰) । ९—नाउ (स॰) । १०—तन (का॰) ।

पुनि तुम[1] यह बोले सिय बानी । राजहु महं होइ है अपमानी ॥
यह[3] है अपमानी मैं[4] मानी । यही अपत मैं पत कर जानी ॥
और न मान मान मोहि भाई । अस मान अपमान न होई ॥
पेम मान माना अपमानू । सो अपमान मोर अभिमानू ॥
जासौं होइ पेम सनमाना । सो अपमान मान मैं माना ॥
जो जिहि कर होवै[5] अपमानू । जिउ जिहं कर[6] तिहि माह समानू ॥
झूठी देह यह कर हरी । तिहि के मान कौन पत मेरी ॥
देह मान तिनहीं पै माना । जिन्ह मन पेम ध्यान नहिं जाना ॥
का इहि छूछे मान भुलावहु । अस मान अपमान न जानहु ॥

दोहा—झूठ मान ए[8] मान मद काया के सनमान ।
मान कियो मैं मान मों[9] रीझ पेम अपमान ॥११३॥

पुनि तुम मोहि यह बचन सुनावहु । बीज करहु मन जिन भरमावहु ॥
यहु बचन फिर फिर मुख भाखो । कहा करहु छिन[1] बिय अस राखो ॥
बीज बचन मीठो मोहि भावै । जागै पेम अगिन उर लागै ॥
ज्यों ज्यों अगिन होवै मह दहै । त्यों त्यों अस लागि[2] मन रहै ॥
तिहि कारन मोहि अगिन सोहाई । बरती अगिन पेम सियराई ॥
न दौं[3] बरौं बीज तुम बैना । तब सावन होइ बरसहिं नैना ॥
तन[4] फुराइ ज्यों थाक[5] फुरहीं । दगध नदी बहुं दिसि उमड़ाहीं ॥
सपट उसास सो पवन हिलोरा । बाढ़ै मेह अगिन कर जोरा ॥
दामिन जागौ रहै दमावत । दामिन होइ हिय चमक दिखावत ॥

दोहा—बीज बचन मोहिं भनि ज्यहिं सुनि हिय होइ हुलास ।
उमंगि पेम तन लाइ[6] मन सो राखै पिउ पास ॥११४॥

---

दोहा—११३-१—तुम्हहि (का०) २—रहि (का०) । ३—हौं अपमानी (का०) । ४—अपमाना (का ) । ५—होइ है (का ) । ६—जीउ तिहिं कर तहां समाना (का०) । ७—हेरी (का०) । ८—मान मद मान ए (का०) । ९—मों (म०) ।

दोहा—११४-१—छिन धीम न (म०) । २—सदा (स०) । ३—सावन जस (का०) । ४—मार्गे (का०) । ५—मन (म ) । ६—थाम (म०) । ७—ग्राम (का०) । ८—मन (का०) । ९—लाइ (म०) । १०—मन (का०) ।

पुनि पुनि चाहि उतरन चाहाए । जल बहाव सिर¹ लोचन अंगारा ॥
कहौ रजाई उभ दुवारा । सब कर नारी कहीं पैसारा ॥
कहहि हार पावक नहिं जाई । पावकु² बिना बरन न दुराई ॥
कै गो चाहि जो ज्वाला हाई । जिन⁴ यो गरजहि भए न हाई ॥
ज्वालहि जाय धनुक⁵ कहु लागी । का बरजें पावक का जाही ॥
दै गो चाहि जिहि धाय बनावै । पेम बसीठ⁷ होइ पहुंचावै ॥
जो बरहि पहुंचे उन कोई⁸ । सो पावक पुनि उबरि न होई ॥
हेरि मन बहु उपर हिराई । जिहि बिन पाता देह नसाई ॥
ए¹¹ बनिक गाथ¹² तिउ बैना । बाउ न फिरत जिन्हहि मुख देना¹³ ॥

दोहा—काहि बताउ पीउ पहुं को¹⁴ जा बिरह का होइ ।
एक¹⁴ जीउ कै दह सिनु पीउ¹ न पावै कोइ ॥११५॥

जबहि राजा कहं¹ समझावहिं । पेम गरद ताहि नहिं पावहिं ॥
तूद लगे राजा बन करे । अमवन महुर न रास रहे ॥
जाहा बिरहु प्रबल बेताला । मन भा भवर कवल मधुराला ॥
राजा पेम मरम गमाई । ना पाउ बारापड़ी पहारे ॥
वो सब बीन सिंहासन गए । मन कथा बनि पैमी भए ॥
मुन पैमी मत बचन उचारे । गरही पेम बासु नाउ हारे ॥
धरती बीन बिसर सब गई । उतरि पम सीच उन लई ॥
जहाँ कथा राजा करै बखानू । रोवहि सुनहिं लाइ मन ध्यानू ॥
पेम समूह सभा होइ रही । मसु प्रवाह नदी जल बही ॥

दोहा—राजहं समुझावन गए, चाए मधुम गवाइ ।
माग बुझावहिं पेम सौं पुनि तैसहि जरि जाइ ॥११६॥

---

दोहा—११५-१—कै (का०) । २—मकम (छ०) । ३—घराई (छ०) । ४—जिन्ह उर पाजहु (म०) । ५—जानहि (का०) । ६—बात मनक (म०) । ७—बिन् (का०) । ८—मन (छ०) । ९—रताही नयन (म०) । १०—सुख (छ०), सुख (का०) । ११—परा (का०) । १२—सुनी (का०) । १३—जौ पकै सुख देह पुनि (का०) । १४—पंच (का०) ।

दोहा—११६-१—नृपति (का०) । २—महुर उरि न रापी (का०) । ३—ऐसो (छ०), पंथु (का०) । ४—बिना पेज (म०) ।

रातहिं पवन अगिन मा नेमू । भूखा मरै देह हत भेमूँ ॥
रातहिं दिवस रहै बैरागा । यह तन सुरत पेम मन लागा ॥
राज काज सब दीन्ह बिसारी । लीन्ह पेम कहँ[1] भाग भारी ॥
जित देखै तित पीउ पियारा । ताही रूप तकै संसारा ॥
आपा बिसर मही[2] होइ रहा । ऐसे गहन[3] पेम मन गहा ॥
सोई[4] आप आपै हुर स्वामा । और छाड़ि दीन्हसि सब आसा ॥
जो कछु बात रहा[5] मुख जाहा । बात कहत [illegible] सुरत निबाहा ॥
बाँधी गुहौ[6] डोर जनु लाई । एकौ स्वांस अचेत न जाई ॥*
का मा कहै जो पेम कहानी । ऐसी पेम पगे[7] सब बानी[8] ॥

दोहा—मिला जो चाहै पीऊ सौं, तौ[9] पेम करो महँ[10] नेम ।
प्रेमी[11] प्रीतम[12] मिलन कौं, बीच बसीठ सो पेम ॥११७॥

जो कोऊ जाके रंग राते । सोऊ पुनि ताके मद माते ॥
जा जिहिं चहै चहै तिहिं सोऊ । एकहिं ताप तपै मिलि दोऊ ॥
पेम बसीठ एक दुहुँ ओरा । वहै सुरत डोरी कर जोरा ॥
सांची मीत न रहै दुरानो । जिन चाखौं जाई तिन जानी ॥
तन महँ चिति मान सौं[1] न्यारा । सा एकह जो बानस[2] हारा ॥
जौं[3] पुनि पवन प्रीत जब होई । तब तिनहुँ महँ भव न काई ॥
लैलें इहां जौं[4] रकत बहाया । वहां मजनूँ कै[5] नैनहिं पाया ॥
अंतर[6] दोनों देह दिखाई । जौलौं में तू बीच कपाई ॥
उनमें भए[7] न अन्तर कोई । तन औ प्रान सो एकै होई[8] ॥

दोहा—तन[9] मन ताहि[10] मदन महँ मदन भई तन माहँ ।
वहै मदन तन मैं[11] भयो मदन दुतिय पुनि[12] माहँ ॥११८॥

---

दोहा—११७-१—की (का०) । २—गेह (म०) । ३—गहन (स०) । ४—जोई (स०) । ५—कहा (का०) । ६—कही (स०) । ७—जिन (म०) । "का" प्रति में नीचे की चौपाई पहले है । ८—मापै जो प्रेम (का०) । ९—चले (का०) १०—भामी (स०) । ११—तू (का०) । १२—चाहिं (का ) । १३—प्रमे (स०) । १४—प्रेम (का०) ।

दोहा—११८-१—तौ (का०) । २—आविन (म०) । ३—और (म०) । ४—वहां लैन (का०) । ५—नै (का०) । ६—हीं क बाहि (का०) । ७—पन्थ (म०) । ८—नहीं (का ) । ९—सोई (म०) । १०—मन (का०) । ११—नाए (म०) । १२—मन (का०) । १३—दुतिय तन माहँ (म०) ।

पथ भनि रैन बरिद मन दया । नाहीं जोवा फिर दई[1] रखा ॥
गरट गरद निग रू[2] दमारा । मन गावै निग मन पावन ॥
मी धा निरा भइ टागी[3] । बाढ़ी रैन जाव निमि गागी ॥
नंगम मन चार जनु नरे । गुनन बम्द[4] गा तरनहिं नरे ॥
बरनि गभै मधुग दुवारा । माहि गनै निहिं पमन निवारा ॥
नोउ न उबरू[11] निरन्तर भी हरे । मामी[5] बरनी बोता परे ॥
नहीं[12] मरम बगन गव बाचा । माहिन निग[6] बाचा दह चोबा ॥
हियरें[13] हार चमा चविचारा । मारे निगै चार गविगारा ॥
हमही मानि जाण निग वाई । मन जानै दुग चोर न बाई ॥

दोहा—मम अविरल जोवा हा मन, हना चारि हिय माहिं ।
विसा भाव नाहीं[1] रक्त आवन कोऊ नाहिं ॥१३९॥

प्रथम पन मन बिन बनाना । गरज अमृत[1] ताके रंग[2] पाना ॥
रैनि गा मनग बरन उजियारा । परा हुना हियरें[3] बिनमारा ॥
मन मगि चीन गगन गा बागा । गुमना हिया वरन तन लामा ॥
कठिन बिया मन जाइ न काढ़ी । ज्यों ज्यों दुई अधिक त्यों[4] बाढ़ी[5] ॥
रातहिं राती घाइ मन जाहीं । उन मैं[6] मन न पिउ माहीं ॥
हाथ बिच गै टरी समावे । मन दहुँ मन[7] चहा मिगावैं ॥
गाइ सुरत टागी पुनि रोवै । मैंह न मैंमम[8] मीर बिछोवैं ॥
ताणि कहूं मरा सुरज का[9] ध्यानू । जाव रैन मित करैं बिहानू ॥
मीन जो गई गो फिर[10] ना आई । जावैं[11] उमिरु भोक[12] फिर[1] आई ॥

दोहा—मीर निराम[13] माइ कै कौन ठौर ठहराइ ।
मैन जो मंदर मीर कै तहं पिउ रहा समाइ ॥१४०॥

---

दोहा—१३९-१—कहा (च०) । २—माहि (म०) । ३—परै (का०) । ४—छानी (मां०) । ५—पावत (स०) । ६—ठाढ़ी (च०) । ७—मोतुम (स०) । ८—पसी (का८) । ९—का० प्रति में नहीं है। १०—मा नहि (का०) । ११—ऊबेड (का०) । १२—जानौं (का०) । १३—मानहिं (स०) । १४—दह (म०) । १५—हियरें (मां०) । १६—ठाढ़ी (स ) ।

दोहा—१४०-१—प्रथम (स०) । २—कर (स०) । ३—हुर (स०) । कमल (च०) । ५—सो (का०) । ६—काढ़ी (म०) । ७—तके (स०) । ८—मगहूं (मां०) । ९—पीतन मोचन देइ न मावै (ग ) । १०—फर (का०) । ११—बहुर (का०) । १२—रोई (का०) । १३—छांग (स०) । १४—भर (स०) । १५—मिसी पाई मह (का०) ।

निस दिन रहै पेम अनुरागी । सुधा बटी तिरखा मति जागी ॥
पेम सबद[1] (सबत) भा तन भा हीना । साग बाम्ह पीर मति भीना ॥
पठा कबम पिपर दिखरावा । मनु[2] पिउ पेम गहन मह पावा ॥
बैठि उठे[3] पुइ बनै पमऊ । मजहुं सखी न जानहिं भऊ ॥
रहम रहस बोनी तिन्ह पाहां । रोइ रोइ भुरवे मन माहां ॥
आंसू निसरि[4] नहिं बब बरा । मुख बावे देप[5] जल भरा ॥
रहि निस आंसु बार सब सेई[6] । रहुट बरी सू खी कै देई ॥
चीन तिन्हहिं अमुवा हर आई ।जौं[7] बारस निस मेह बंधाई ॥
देखो कौन परी मोहि बानी । मोहिन हरे अंमाइन पानी ॥

दोहा—बिरह दुरावें[8] बिरहिनी निस जानों कि अभाइ ।
दवी[9] अगिन सीपर[10] रहै, सुनै[11] चीन[12] हाइ जाइ ॥१४१॥

इक दिन मान गोर जहं परा । सखि यह मरम चीक भइ सुरा ।
महा बिचित्र बस बहु बोले । उरद मूग पापर सब बेले ॥
चीन बेस जो तिन्ह महिं थेना । गुष्म निसार कीन्ह वै बना ॥
बैठ इन्द्र बहुविध कम बारी । पूरी मढि पूनर उमियारी ॥
मधुहर[1] पीन कीन[2] यह कहा[3] । किरन प्रकाम राप मम रहा ॥
बरन दिसा चौबन मिउ[4] भरा । बारन का पूमर जिहिं बरा[5] ॥
साम न मबहु पम बौमासा । बिउ चातक जिहिं हाइ उमासा ॥
अमरस्त मेम मैन कम[6] भर । जिहिं बंधाम[7] प गुंजन परै[8] ॥
मोहि तुम दाह सिंह[9] इक माना । मौमों महा मरम मिल पाना[10] ॥

दोहा—मोहि तुम्हारे सुखमुख, मो तुम्हरे दुख दुखम ।
मैक[11] जो देखी अनमनी मी मन माही मुखम ॥१४२॥

---

दोहा—१४१-१—लागु (बा०) । २—पानी (म०) । ३—उहि चन (बा०) । ४—मीर (बा०) । ५—हिक मैं जम परा (म ) ६—देहैं (बा०) । ७—एवा नरो (म ) । ८—हुर (बा ) । ९—निबाई मीम (बा०) । १०—दराजे (म०) । ११—रामै (म०) । १२—मीटारी (बा ) । १३—मेन (स ) । १४—पिमन (बा०) ।

दोहा—१४२-१—पुर मुर (म ) । २—पीन (म०) । ३—भरा (बा०) । ४—सिर्म (बा ) । ५—नहिं (बा ) । ६—पग (बा ) । ७—जम (बा०) । ८—संपाम (बा०) । ९—पिरे (बा०) । १०—गर (म ) । ११—जाना (म ) । १२—नहीं (बा०) ।

जब मति पैम अधिक मस गहा[1] । उतहुं चौंधा हिय मह[2] रहा ।।
तरफ तरफ निस उठैं[3] दमावत । मस साल निद्रा कत आवत ।।
नींद ओट[4] चिन्ता भइ ठाटी[5] । काढी रैन जाम किमि काटी ।।
जयम नैन फांद जमु परे । नूतन[6] बझे[7] सो[8] तरफहिं खरे ।।
जदपि सूझे मजूस सुमारा । माहिं मनै तिहिं पलक किवारा ।।
तीठ[9] न उझक[11] निपट कै डरे । मानी[12] बझी कोपा घरे ।।
एही[13] भरम जगत सब बांधा । नाहित किस[14] बांधा मह बांधा ।।
हियरें[15] होत जता अंधियारा । तारै पिनै चाव उजियारा ।।
इनही मांहि जाम निस खोई । मन जागै दुख और न कोई ।।

दोहा—पेम अधिक चौंधा सो नम, हुआ ताकि हिय माहिं ।
मिला भाव ताहीं[16] रकत थानत फोऊ नाहि ।।१३९।।

प्रथम पत्र मत चित्र बनावा । सहज कुसुम[1] ताके रंग[2] आवा ।।
देखि सो अनम बरन उजियारा । परा हुआ हियरें[3] चितगारा ।।
अब लगि पौन पवन सो आया । सुलगा हिया बरन तन लागा ।।
कठिन बिथा मुख आइ न काढी । ज्यौं ज्यौं दुरै अधिक त्यौं[4] बाढी[5] ।।
रातहिं सखी सोइ जब जाहीं । उठ बैठे मन दै चित माहीं ।।
हाथ चित्र लै टकी लगावै । नैन तहाँ मन[6] जहां मिलावै ।।
लाइ सुरत रोती पुनि रोवै । नैक न नैनन[7] नीर बिछोवै ।।
ससि कहं सदा सुरज को[8] ध्यानू । जाग रैन नित करै बिहानू ।।
नींद जो गई सो फिर[9] ना आई । जागै[10] उझिक झांक[11] फिर[12] जाई ।।

दोहा—नींद निरासी[13] आइ कै कौन ठौर ठहराइ ।
नैन जो मदर नींद के तहं पिउ रहा समाइ ।।१४०।।

---

दोहा—१३९-१—कहा (स०) । २—गहि (स०) । ३—परी (का०) । ४—सानी (का०) । ५—आवत (स०) । ६—ताती (स०) । ७—मीतुम (स ) । ८—पखी (का०) । ९—का० प्रति में नहीं है । १०—ना बहि (का०) । ११—उझँस (का ) । १२—मानों (का ) । १३—आपहिं (स०) । १४—तह (स ) । १५—हियरे (का०) । १६—ताहीं (स०) ।

दोहा—१४०-१—कमल (स ) । २—कर (स०) । ३—हेरै (स०) । कमल (स०) । ५—सो (का०) । ६—काढी (स ) । ७—तके (स ) । ८—मनहुं (का०) । ९—मौरन मोमम देह न सावै (स०) । १ —कर (का०) । ११—बहुर (का०) । १२—रोई (का ) । १३—घान (स०) । १४—मर (स०) । १५—मिसी आई यह (का०) ।

निस दिन रहै पेम अनुरागी । सुआ घटी तिरखा अति जागी ॥
पेम सबर[1] (सबल) मा तन भा हीना । ताम बाघ चीर अति झीना ॥
पता कंवल पियर दिखरावा । मनु[2] पिउ पेम गहन महु आवा ॥
बैठि रहैं[3] दुइ चलै पलंऊ । अबहूं सखी न जानहिं भऊ ॥
रहस रहस बोली तिन्ह पाहां । रोइ रोइ झुरवै मन माहां ॥
आंसू निसरि[4] बहैं जब ढरा । मुख धोवै देप[5] जल भरा ॥
हरि हि मिस आंसु ढार सब लेई[6] । रहट बरी झूठी कै देई ॥
जौन तिन्हहिं[7] असुवा ढर जाई । जौ[8] धारस मिस सह संभाई ॥
देखो कौन परी मोहि बानी । पालिन ढरै अंभारन पानी ॥

दोहा—बिरह दुरावै[9] बिरहिनी जिन जानौं कि समाइ ।
दवी[10] अगिन झीपर[11] रहै जूमै[12] खीन[13] होइ जाइ ॥१४१॥

इक दिन धाय गोद जहं धरी । सखि यह मरम पांक भइ खरी ।
महा बिचित्र बास बहु बोलै । उरद भूप पावर सब बोलै ॥
कौन खेम जो तिन्ह नाहिं खेपा । धुक सिंगार कीन्ह दै चला ॥
बैठ इकन्त कहसि कम बारी । धूनी सखि भूपर उजियारी ॥
अधहर[1] पौन कीन[2] मह बहा[3] । किरन प्रकास राख मन रहा ॥
बदन दिया जोबन भित[4] भरा । कारन का भूपर जिहिं धरा[5] ॥
लाग न अबहू पेम भौभासा । बिन बाउरु जिहिं होइ उजासा ॥
अमरुत भेष भेन कम[6] भरै । किहिं बंधान[7] ए बजन परैं[8] ॥
मोहि तुम दोइ लिहे[9] इक प्राना । मानौं कहा मरम निज धाना[10] ॥

दोहा—मोहि तुम्हारे सुखनसुख, भी तुम्हरे दुख दुख्ख ।
भेद[11] जो देखौं मनमती भी मन माही सुख्ख ॥१४२॥

---

दोहा—१४१-१—धनु (बां ) । २—मानीं (म०) । ३—उहि चम (बां०) । ४—भीर (बां०) । ५—दिक में मन भरा (म ) ६—भेई (बां०) । ७—रसन गरी (म०) । ८—हुं (बां ) । ९—निसाई भीस (बां०) । १०—दरावे (म०) । ११—डाले (म०) । १२—सी टाटी (बां०) । १३—ग्रस (म ) । १४—चियन (बां०) ।

दोहा—१४२-१—सुर सुर (म०) । २—भीन (म०) । ३—मना (बां ) । ४—दिये (बां ) । ५—बहि (बां०) । ६—धरा (बां०) । ७—जम (बां०) । ८—पायान (बां ) । ९—दिरे (बां०) । १०—नर (म ) । ११—जाना (म०) । १२—कही (बां०) ।

जब दिन दुरे[1] रही दुम्हिमानी । जम नयंन बेन बिनु पानी ॥
सो परजिनी[2] मये है घूनी । आनद[3] मूर पेम सुख लूटी ॥
संग सखी सुख चोरन मार्गी । कारी कहें बियोग बैरागी ॥
है हो कछु तुम्हरे मन भावा । मा बसि म[4] यह मरम न पावा ॥
कछु तो यही बार मह कापा । मारे मगहु[5] परा जफकारा ॥
पहले लगा हँसी बिहसाहीं । अब[6] दुख तिन्ह तेन बहु नाही ॥
अब तो रहे दुरे दुख भरी । है कारन जिहि कापें बरी ॥
ना यह तेन न तेरें भोगा । हा[7] हु करत[8] सो कछु[9] जाता[10] ॥
परखे[11] पिय[12] हमके[13] न्योहारा । देखो तेम तैन कै बापा ॥
दोहा—दहिस[14] तुम्हार[15] बिछाल[16] कै[17] का मय[18] सीमहु का वृद ।
घोर पहुँचे जानिय जिहि घर बैठे ऊँट ॥१४६॥

निसि आयी ताकर इक सखी । तिन यह मरम बन्ध सब लखी ॥
का देखे बैठी मन मारें । अब[1] निसि घर दिया का बारें ॥
सोचहु[2] मीच रहे होइ बाती । निकट न प्रीतम तेन संघाती ॥
बिमल बदन धूमर होइ रहा । पलट जाति हियरा[3] पै दहा ॥
धाये पिय मित्र मन माहीं । आँसू[4] पेम प्रवाह बहाहीं ॥
चाहिन हैं[5] यह पिय न हारें । पिय भई सो पिय निहारें ॥
मन उठ जाइ रहा पिय पीऊ । जीव पिय महं तन बिन जीऊ ॥
तउलन सखि सों हँसी पुकारी[6] । काहि उठि बैठी सुम बारी ॥
भी यह कौन पिय सुम पाहा । पिय भई पिउबन जिहि[7] माहां ॥
दोहा—पिय तुम्हारो भगत पिय ना भो पिय निरयोठ[8] ।
दीन्ह पाप पर पापनौं पाप हरघु[9] बिन पीठ ॥१५०॥

---

दोहा—१४६—१—रैन (का०) । २—माहि करत जो ही मन पू३ (स०) ।
—आनन (स०) । ४—दूनी (का०) । ५—परछीं (का०) । ६—हियमहु (स०) ।
—ठा (का०) । ८—नाम (स०) । ९—मिन (का०) । १०—सुनाया (का०) ।
११—मनहिल (का०) । १२—दफकारा (स०) । १३—हुसी ही माही (म०) ।
१४—उन (म०), मन (का०) । १५—हानिहु (स०) । १६—करो (का०) । १७—
पु (म ) । १८—बाद (का०) । १९—बरदुबह (स०) । २ —कीन्ह (का०) ।
२१—एक (का०) । २२—माहिम (म०) । २३—सार (स०) । २४—बिमान (स०) ।
२५—का (स०) । २६—जिहि फामहि (का०) । २७—उर भी पंचे (म०) ।

दोहा—१५०—१—घर पिया जैमी दिन बारी (का०) । २—मा जिहि (का०) ।
३—हीरा (का०) । ४—एक (म ) । ५—मन (म०) । ६—पंमुवन (का०) ।
७—में (का०) । ८—हंसारी (न ) । १०—जिय (का०) । ११—परि जीव (का०) ।
१२—होहि (का०) ।

माता ना सपने मिलि करी । ना बिन देखि छराया सरी ॥
बर घर ताहि जो बोइ कर जाने । उर जामी सो अंतर ठाने ॥
मोहि ता[1] बिन जा हियें समाना । दिस्टि न परै कतहुं कछु माना ॥
जो सपने देखौ ता होई । आपर ता पुनि और न कोई ॥*
मन मोरा एकहिं रंग राता । बिन भरमक जानहु मोंहि माता ॥
पंथ बिथा पुनि जागि न जाई । काया जी[2] काहे पियराई ॥
होंहु यह कछु भरम न जानों । जो जानों तो कस न बखानों ॥
मोरे जान बिथा कछु[3] नाहीं । देखौं समझि बूझ मन माहीं ॥
जो पै[4] खुटक तुमहि जिउ होई । बूझौ गुनी गारुड़ कोई ॥

दोहा—प्रेमी पीतम को भरम कहै न काहु पाहि ।
जानै ताहि बताइये जोपन सो कछु नाहिं ॥१४७॥

माता पंडित बैद बुलाए । औ सब गुनी गारुड़ आए ॥
पीर द्वार बैठे सब आई । जोगि बैद नारी बिलखाई ॥
देख सो बैद नारी[1] कै नारी । कह[2] आरोग[3] उठि चला पनारी ॥
तावत बंध मत बर[4] आए । इक वर्त[5] परछन दिया बताए ॥
कहां[6] पछुन ओझा अगु[7]वाई । गुनी गारुड़ मंत्र पढ़ाई ॥
मौलाना[8] मियान जिन्ह ठानी । परे जिमा[9] बहि पढहि दुआएं ॥
सबै[10] गुनी आपन गुन कीन्हा । पै जिव मरम न काहु चीन्हा ॥
सबही कहा बिथा कछु नाहीं । जिन चिंता जानहु मन माहीं ॥
तिन्हि[11] सो बिथा जिहि कोउ न जाने । जौ लगि अपने मुख न बखाने ॥*

दोहा—ओझा करहिं उपाइ[12] मिलि मुल्ला पढ़ें दुआइ ।
ना गम[13] मिलै न कथ परै, कैसें पीर[14] हराइ ॥१४८॥

---

दोहा—१४७—१—माता जो (का०) । * का० प्रति में यह चौपाई नहीं है । २—एकै (का०) । ३—बहुं (स०) देहि (का०) । ४—मन की (का )। ५—मोहि (का०) । ६—पुनि (का०) ।

दोहा—१४८—१—नारि (स०) । २—कहा (का०) । ३—रोग (का०) । ४—मावत (स०) । ५—पर (स०) । ६—ऊपरस बिरछन (का०) । ७—ओझ वर्ष (का०) । ८—सब चाहीं (का )। ९—बत पितावें पढ़ें दुआइ (का०) । १०—पूछत रही बहुत पछताई (का०) । ११—सैई (स०) । १२—इहि (का )। * इसके पश्चात् स० प्रति में निम्नलिखित चौपाई है जो का० में नहीं है —

निज मन मरम जान पिउ प्यारा । जो जिउ सौं पल छिन नहीं न्यारा ।

९ से अधिक होने के कारण प्रक्षिप्त है ।

१३—दुआइ (का )। १४—मिल परी न प्रेति को (का )। १५—जु जाय मुंह अमगाइ (का०) ।

बहु दिन दुरे[1] रही कुम्हिलानी । जमी कवल बैम बिनु पाना ॥
मा परविनी[2] मर्म है पूर्ना । भानंद[3] मूर पेम सुख लूटा ॥
संग सखीं मुख बारन भामी । बारी बहु बिराग बैरागी ॥
है हो कछु तुम्हरे मन भावा । ना बनि म[8] यह मरम न पावा ॥
कछु हो यहै मार महं काया । मोरे मनहुं[11] धरा उफकारा ॥
पहुंचे सवा हंसी बिहसाहीं । मन[1] इन तिनन्ह हेम बहु नाहीं ॥
मन तो रहे दुरे दुख भरी । है कारन जिहि कायें बरी ॥
ना वह हेम न तेह मोजा । हां[2] हुं करउ[11] सबै कछु[1] काजा[11] ॥
परवें[18] तिन[19] इनके[20] ब्याहारा । देखों हेम नैन के पारा ॥

दोहा—दीन्ह[21] तुम्हार[2] बिमान[24] कै[25] ना मय[26] लीन्ह जो लूट ।
भोर[27] पहुंचे आगिन्ह जिहि कर बैठे ऊंट ॥१४६॥

निमि जामी तापर इक सखी । तिन यह मरम बात सब भखी ॥
का देखें बैठी मन मारे । मन[1] निमि बरै दिया आ बारे ॥
सोवहिं[2] नींद रही होइ बारीं । मिस्ट न मीतम हेम मभाती ॥
बिलस बदन धूसर होइ रहा । पलट जोति हियरा[3] दै दहा ॥
पावै चित मित मन माहीं । भांसु[5] पेम प्रवाह बहाहीं ॥
मांखिन तें[6] बह चित न टारै । चित भई सो चित निहारै ॥
मन उठ आर रहा चित पीड़ । कीन चित मई उम चित पीड़ ॥
उठचन लखि सों हंसी पुकारी[8] । काहे उठि बैठी तुम बारी ॥
की यह कौन चित तुम चाहा । चित भई चितवन जिहि[10] माहां ॥

दोहा—चित तुम्हारा मग्ग मिड ना सो चित निरखौत[11] ।
रीम धान पर मापनों भान हरखु[12] चित पाव ॥१५०॥

दोहा—१४६—१—रैन (मा॰) । २—भागि करन जाही मन धुं (स॰) ।
३—भानन (म॰) । ४—दुर्गा (बा॰) । ५—परहीं (बा॰) । ६—हियनहु (स॰) ।
७—जा (बा॰) । ८—गत (स॰) । ९—मिन (बा॰) । १०—सुजाना (बा॰) ।
११—मनहिय (बा॰) । १२—दफकारा (स॰) । १३—हुंसा ही माही (म॰) ।
१४—उन (म॰), मन (बा॰) । १५—हानिहु (स॰) । १६—करा (बा॰) । १७—
कछु (म॰) । १८—काज (बा॰) । १९—परहुबहु (म॰) । २०—कीन्ह (बा॰) ।
२१—एक (बा॰) । २२—माहिम (म॰) । २३—सार (म॰) । २४—बिमान (स॰) ।
२५—को (म॰) । २६—जिहि चालींहि (बा॰) । २७—उर भो पंथे (म॰) ।

दोहा—१५०—१—बर दिया जैमें चित बारी (बा॰) । २—मा जिहि (बा॰) ।
३—हीए (बा॰) । ४—एक (म॰) । ५—मंग (स॰) । ६—पंमुरन (बा॰) ।
७—न (बा॰) । ८—हिंसारी (म॰) । १०—जिय (बा॰) । ११—परि नींग (बा॰) ।
१२—हर्षि (बा॰) ।

पिउ है सघन दिसी सुख थोरी । तो बिन बसनि मुकनि मन मोरी ॥
मन मुई पर मन फिरै अकामा । जैस ज्यों सुरत डारि कै मामा ॥
मनि व्याकुल तन तरकै परा । ज्यों पंछी उड़ै जमु गिरा ॥
ना पिउ निकस जाइ न रहै । सीसा सीसी मर्‍ तन दहै ॥
जदपि तार पिय मो पाहीं । रात दिवस चितवौं तिहि माहा ॥
अँखियाँ तो तासौं बिरमाऊँ । मन चंचल मनु न उड़ाऊँ ॥
सो तारे पिय सूरत पाई । प्रान रहै मो मन कै दाहै ॥
जिय निज नत मन पर भुला । तिहि कर पिय दिखावन रूपा ॥
यह जानै यह पिय न मीऊ । जिय को मीउ प्रान मो पीऊ ॥

दोहा—पिउ व्याकुल प्रीतम बिनो मन दुख मन अकुलाइ ।
मो इन दुख दोनों मई पीड पिय फिर जाइ ॥१५७॥

प्रीतम दृष्टि अपार दुख तारा । उठै लहर पर लहर हिमारा ॥
तन बौहित भा बजर माना । गम राम दुख मीन समाना ॥
जदपि हिय छतियहि हाइ मीना । तऊ मो नीर हाइ नहिं रीना ॥
दम मगाइ डूबन पर माया । नहि ताहि बिन काउ तीर समाया ॥
जा दव लगि पौन होइ मावनि । महि पराम मैं नार सगावनि ॥
तौ बाँधे नाहिन तिहि मामा । पोर जमन उठवै न उकामा ॥
प्रीतम काठ परे सुख कारै । काटि काल सुख सौं महि मीरै ॥
पिउ तन मन जावन जिय तारा । या धन न कछु नाहिन मारा ॥*
परमो बस्तु पार किन मड़ू । काम पठा दीह दम दऊ ॥ †

दोहा—प्रीतम तू बिन तरनि नमि परी प्रम दधि माहि ।
मन उमटे डूबत ससी तरी हाइ हीं माहि ॥१५८॥

---

दोहा—१५७–१—निरट निकट मनि (बी ) । २—निम्म म (म॰) । ३—सबै (म ) । ४—प्रविमुन (न ) । ५—धामों (बी ) । ६—मरमाऊँ (म ) । ७—बहाऊँ (का॰) । ८—मन (स ) । ९—सौ (का॰) । १०—निम (बी ) । ११—बिद्याऊ (का॰) । १२—सौ कर जोबन (का॰) । १३—मन (बी ) । १४—मन (दा॰) । १५—तुम (का॰) । १६—जिहि नहि (बी ) । १७—नव (म॰) ।

दोहा—१५८–१—पिय (म ) । २—मन (का॰) । ३—मूरत (का॰) । ४—माहि (बी ) । ५—ताहि (स ) । ६—मीरै (म॰) । *यह चौपाई 'म॰ प्रति में नहीं है । † इसके पश्चात् 'म॰ प्रति में यह चौपाई है —"पिय बिन कौन पार पहुँचावै । मारा जोन सो कौन मिटावै ।" ७—सौ लेहि हो (का॰) ।

एक दिन बिरह दाह उर[1] गही । बैठ इकंत अकेला[2] रही ॥
आपहि आप और नहीं कोई । हियें जु दुख दूना[3] तब होई[4] ॥
हियरा[5] दूना उमंग होइ रहा । मन बैराग रहित[6] होइ बहा[7] ॥
सुरत भाव[8] अँखिया लेइ[9] भरी । कोटिक बार मरै[10] अरु डरी ॥
हुता जो हीय सीप सों भरा । फिर उर नीर किनारहि परा ॥
सुरत ध्यान पिउ सों अनुरागी । बातें करै बिरह बैरागी ॥
पीतम सुरत करसि क्यों[11] न मोरी । सब जग छांड़ि भई हौं तोरी ॥
अब लगि बिरह बान मैं सहे । रोमहि रोम पैठि[12] तन[13] रहे ॥
अब लागी सो बान पर लाग । पिउ अकुलाइ कहै तन त्याग ॥

दोहा—जदपि जीव तन त्यागि कै बेग[14] मिलै तोहि आइ[15] ।
पै मन भाव[16] कि तन अछत जीउ तो मांहि समाइ ॥१२५॥

पिउ बिउ तू तो[1] दुख कहा[2] नांही । मोहि जिउ को संसा[3] कछु नांही ॥
यह अब तब तोसों मिल रहा । अबहुं अलमिल जाइ न कहा ॥
निस दिन काम अतन तन तोरा । यहै[4] मन सूल कहै[5] पिउ[6] मोरा ॥
तिन कारन बिनती हौं करौं । हा हा खाइ सीस भुइं धरौं ॥
तन तोहि लागि बहुत दुख पावा । रूप रंग रस सबहि गवांवा ॥
बिरह अगिन तरनी तन जारा । सूख सूख रहा होइ छारा[7] ॥
रहा न रकत न मास न मनकी । हाड़ भुराइ रहे होइ किनकी ॥
मरौं सो ऐंठ ताउ होइ गई । तेऊ[8] अब टूट[9] कर[10] गई ॥
बिरह राग उर बहुत बढ़ावा । ताहू पै पिउ[11] करै सतावा ॥

दोहा—प्रीतम बिउ[12] तू[13] तन अधम रहा रहै दुख पास ।
बिरह नास[14] दुख तन सहै, सोइ जाइ निरास ॥१२६॥

---

दोहा—१२५—१—दुख (का ) । २—एक ठौ (का ) । ३—दूना (स०) । ४—होई (स०) । ५—हिय को दुख उमंग भर (स ) । ६—रहत (स ) । ७—भया (का०) । ८—भास (का०) । ९—लै भरी (का ) । १०—मरी (स ) ।* जयपुर की प्रति में यह चौपाई ऊपर की चौपाई (सुरतभाव अँखिया ) के पहले भी लिखी गई है और वहाँ इसका उत्तर पद इस प्रकार है—'भर भर नीर नदाधर परा' । ११—किन (स ) । १२—बहै (स०) । १३—होइ (स ) । १४—बेग (का०) । १५—आइ (स ) । १६—भाऊ (का) ।

दोहा—१२६—१—तोसों (का० स ) । २—सतबांही (का०) । ३—सांसा (स०) । ४—तिहि (का ) । ५—यहै (स०) । ६—मन (स०) । ७—तारा (का ) । ८—भारा (स ) । ९—तौ लोक (स ) । १०—गर (का ) । ११—प्रीति गरै सो भावा (का०) । १२—जौ (का०), क्यों (स०) । १३—जो (का०) । १४—निरास (स०) ।

पिउ है सघन बिनौ सुन मोरी । तो बिन गनति' मुकति कत मोरी ॥
तन' मुई पर मन फिरै' प्रकासा । जैसे ज्यों सुरग डोरि कै पासा ॥
मति व्याकुल तन तरसै परा । ज्यों पंछी उड़ई मनु पिरा ॥
ना जिउ निकस जाइ न रहै । जीवा जीवी मई तन दहै ॥
यदपि तोर बिन मो पाहीं । रात दिवस बितनी निहि माहा ॥
अंखियां तो तापों बिरमाऊँ । मन बंधन पावै न उहाऊँ ॥
सो तोरे बिन सूरत चाहै । आप रहै सो तम कै दाहै ॥
जिय' बिन तन' रूप कर सूना । जिहि कर बिन दिखावन रूना ॥
यह जानै यह बिन न' जीऊ । जिय' को जीउ प्रान तो पीऊ ॥

दोहा—जिउ' व्याकुल प्रीतम बिना, तन' दुख मन' अकुलाइ ।
सो' इन दुख दोनों नहीं पीउ मिलै फिर' जाइ ॥१२७॥

प्रीतम रवि अपार दुख तोरा । उठै लहर पर लहर हिलोरा ॥
तन बोहित सा जरजर आसा । राम राम दुख घोर समासा ॥
यदपि त्रिग' उलिचहि होइ भीरा । तऊ मो भोर' हार नहि रीता ॥
इन अगाह डूबन' पर आवा । नहि ताहि बिन काउ तीर लगावा ॥
जो पव लगि पीन होइ आवन्ति । नहि प्रकास भी तीर लगावति ॥
तौ जौं नाहिन तिहि' आसा । और जतन उद्यम न उसासा ॥
प्रीतम आइ परै सुख कीजै' । काहि कास सुख सों माहि सीजै ॥
पिउ तन मन जोबन जिय तारा । या मन में कछु नाहिन मोरा ॥*
धरनी वस्तु आप बिन लहूँ । काम पठाइ चीन्ह सम देऊ ॥ †

दोहा—प्रीतम तू मिल नारनि लगि परी प्रेम रवि माहि ।
अब उमटै डूबन भयी तरी हाइ ही नाहि ॥१२८॥

---

दोहा—१२७–१—निरट निरट मनि (का०) । २—निम्र में (म०) । ३—सबै (स ) । ४—प्रविमुत (म०) । ५—पायो (का०) । ६—परमाऊँ (म०) । ७—रहाऊँ (का०) । ८—मन (स ) । ९—जा (मा०) । १०—निम (का०) । ११—बिराऊ (का०) । १२—री कर नोवन (का०) । १३—मम (का०) । १४—मन (रा०) । १५—तन (का ) । १६—जिहि पहि (का०) । १७—मद (म०) ।

दोहा—१२८–१—प्रिय (म०) । २—नक (का०) । ३—कुसम (का०) । ४—मोहि (का०) । ५—तोहि (स०) । ६—नीर्थे (म ) । *यह चौपाई म० प्रति में नहीं है । † इसके पश्चात् म० प्रति में यह चौपाई है—"पिय बिन कौन पार पहुंचावै । पावक बीच को बीच मिटावै ।" ७—तो देती हौ (का०) ।